एम.ए. पूर्वार्द्ध
इतिहास, द्वितीय प्रश्नपत्र

विश्व का इतिहास
1776 ई. से 1890 ई. तक

(WORLD HISTORY FROM 1776 To 1890 A.D.)

मध्यप्रदेश भोज (मुक्त) विश्वविद्यालय – भोपाल
MADHYA PRADESH BHOJ (OPEN) UNIVERSITY – BHOPAL

Reviewer Committee

1. Dr. Ajay Khare
   Professor
   Institute for Excellence in Higher Education, Bhopal (M.P.)
2. Dr. Anjali Chourey
   Associate Professor
   Atal Bihari Vajpai Hindi Vishvavidhyalay, Bhopal (M.P.)
3. Dr. Mamta Chansoria
   Professor
   Govt. MLB College, Bhopal (M.P.)

Advisory Committee

1. Dr. Jayant Sonwalkar
   Hon'ble Vice Chancellor
   Madhya Pradesh Bhoj (Open) University, Bhopal
2. Dr. L.S. Solanki
   Registrar
   Madhya Pradesh Bhoj (Open) University, Bhopal
3. Dr. L.P. Jharia
   Director DME
   Madhya Pradesh Bhoj (Open) University, Bhopal
4. Dr. Ajay Khare
   Professor
   Institute for Excellence in Higher Education,
   Bhopal (M.P.)
5. Dr. Anjali Chourey
   Associate Professor
   Atal Bihari Vajpai Hindi Vishvavidhyalay,
   Bhopal (M.P.)
6. Dr. Mamta Chansoria
   Professor
   Govt.MLB College, Bhopal (M.P.)

COURSE WRITERS

Prof. Brajesh Kumar Shrivastava; Head, Department of History, In-charge Head, Department of Adult Education
Dr Harisingh Gour University, Sagar-M.P.
Units (1-5)

Copyright © Reserved, Madhya Pradesh Bhoj (Open) University, Bhopal

All rights reserved. No part of this publication which is material protected by this copyright notice may be reproduced or transmitted or utilized or stored in any form or by any means now known or hereinafter invented, electronic, digital or mechanical, including photocopying, scanning, recording or by any information storage or retrieval system, without prior written permission from the Registrar, Madhya Pradesh Bhoj (Open) University, Bhopal.

Information contained in this book has been published by VIKAS® Publishing House Pvt. Ltd. and has been obtained by its Authors from sources believed to be reliable and are correct to the best of their knowledge. However, the Madhya Pradesh Bhoj (Open) University, Bhopal, Publisher and its Authors shall in no event be liable for any errors, omissions or damages arising out of use of this information and specifically disclaim any implied warranties or merchantability or fitness for any particular use.

Published by Registrar, MP Bhoj (Open) University, Bhopal in 2020

Vikas® is the registered trademark of Vikas® Publishing House Pvt. Ltd.

VIKAS® PUBLISHING HOUSE PVT. LTD.
E-28, Sector-8, Noida - 201301 (UP)
Phone: 0120-4078900 • Fax: 0120-4078999
Regd. Office: A-27, 2nd Floor, Mohan Co-operative Industrial Estate, New Delhi 1100 44
• Website: www.vikaspublishing.com • Email: helpline@vikaspublishing.com

SYLLABI-BOOK MAPPING TABLE

विश्व का इतिहास 1776 ई. से 1890 ई. तक

Syllabi	Mapping in Book
इकाई–1 अमेरिका में प्रारंभिक बस्तियों का निर्माण; अमेरिकी स्वतंत्रता संग्राम (अमेरिका की क्रांति) 1776 ई. – अमेरिकी स्वतंत्रता संग्राम के कारण, घटनाक्रम, अमेरिका की क्रांति के प्रभाव, इग्लैण्ड की पराजय के कारण; सन् 1789 की फ्रांसीसी क्रांति के कारण – फ्रांसीसी क्रांति का घटनाक्रम, फ्रांस की क्रांति के प्रभाव; नेशनल असेंबली एवं डायरेक्टरी	**इकाई 1** : अमेरिका का स्वाधीनता संग्राम, फ्रांस की क्रांति, नेशनल असेंबली एवं डायरेक्टरी **(पृष्ठ 3–36)**
इकाई–2 नेपोलियन बोनापार्ट का युग; वियना कांग्रेस और यूरोप की संयुक्त व्यवस्था – वियना कांग्रेस और इसके प्रमुख उद्देश्य, यूरोप की संयुक्त व्यवस्था; मेटरनिखः प्रतिक्रियावादी युग (1815–1848 ई.)	**इकाई 2** : नेपोलियन बोनापार्ट का युग, वियना कांग्रेस, यूरोप की संयुक्त व्यवस्था, मेटरनिख : प्रतिक्रियावादी युग **(पृष्ठ 37–74)**
इकाई–3 क्रीमिया युद्ध तथा बर्लिन कांग्रेस के विशेष संदर्भ में पूर्वी समस्या (1815–1890) – क्रीमिया का युद्ध 1854–56 ई., बर्लिन सम्मेलन 13 जून–13 जुलाई, 1878; इंग्लैंड में उदारवाद का उदय एवं विकास : 1832, 1867 एवं 1884 ई. के सुधार अधिनियम एवं चार्टिस्ट आन्दोलन; रूस (1815 से 1890 ई. तक) : अलेक्जेंडर प्रथम एवं निकोलस प्रथम के विशेष संदर्भ में	**इकाई 3** : क्रीमिया युद्ध एवं बर्लिन कांग्रेस के विशेष संदर्भ में पूर्वी समस्या (1815–1890), इंग्लैंड में उदारवाद, सुधार अधिनियम, चार्टिस्ट आंदोलन एवं अलेक्जेंडर व निकोलस के संदर्भ में रूस **(पृष्ठ 75–116)**
इकाई–4 अमेरिका का गृहयुद्ध; इटली का एकीकरण तथा जर्मनी का एकीकरण – इटली का एकीकरण, जर्मनी का एकीकरण; बिस्मार्क युग : गृहनीति एवं विदेश नीति – बिस्मार्क की गृह नीति, बिस्मार्क की विदेश नीति	**इकाई 4** : अमेरिकी गृह युद्ध, इटली का एकीकरण, जर्मनी का एकीकरण, बिस्मार्क युग : बिस्मार्क की गृहनीति एवं विदेश नीति **(पृष्ठ 117–153)**
इकाई–5 मध्यपूर्व का महत्व, मध्यपूर्व में यूरोपीय शक्तियों की महत्वाकांक्षाएं एवं प्रतिद्वंद्विता 1800 से 1890 ई. तक; जापान में उपनिवेशवाद एवं साम्राज्यवाद – मेइजी पुनर्स्थापना एवं आधुनिकीकरण की प्रक्रिया; चीन में उपनिवेशवाद एवं साम्राज्यवादः प्रथम एवं द्वितीय अफीम युद्ध, प्रथम चीन जापान युद्ध एवं ताइपिंग विद्रोह	**इकाई 5** : मध्यपूर्व का महत्व, यूरोपीय शक्तियों की प्रतिद्वंद्विता, जापान व चीन में उपनिवेशवाद व साम्राज्यवाद, प्रथम चीन–जापान युद्ध और ताइपिंग तथा अन्य विद्रोह **(पृष्ठ 155–197)**

विषय–सूची

परिचय 1

इकाई 1 अमेरिका का स्वाधीनता संग्राम, फ्रांस की क्रांति, नेशनल असेंबली एवं डायरेक्टरी 3–36

1.0 परिचय
1.1 उद्देश्य
1.2 अमेरिका में प्रारंभिक बस्तियों का निर्माण
1.3 अमेरिकी स्वतंत्रता संग्राम (अमेरिका की क्रांति) 1776 ई.
  1.3.1 अमेरिकी स्वतंत्रता संग्राम के कारण एवं घटनाक्रम
  1.3.2 अमेरिका की क्रांति के प्रभाव
  1.3.3 इग्लैण्ड की पराजय के कारण
1.4 सन् 1789 की फ्रांसीसी क्रांति के कारण
  1.4.1 फ्रांसीसी क्रांति का घटनाक्रम
  1.4.2 फ्रांस की क्रांति के प्रभाव
1.5 नेशनल असेंबली एवं डायरेक्टरी
1.6 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
1.7 सारांश
1.8 मुख्य शब्दावली
1.9 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
1.10 सहायक पाठ्य सामग्री

इकाई 2 नेपोलियन बोनापार्ट का युग, वियना कांग्रेस, यूरोप की संयुक्त व्यवस्था, मेटरनिख : प्रतिक्रियावादी युग 37–74

2.0 परिचय
2.1 उद्देश्य
2.2 नेपोलियन बोनापार्ट का युग
2.3 वियना कांग्रेस और यूरोप की संयुक्त व्यवस्था
  2.3.1 वियना कांग्रेस और इसके प्रमुख उद्देश्य
  2.3.2 यूरोप की संयुक्त व्यवस्था
2.4 मेटरनिख : प्रतिक्रियावादी युग (1815–1848 ई.)
2.5 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
2.6 सारांश
2.7 मुख्य शब्दावली
2.8 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
2.9 सहायक पाठ्य सामग्री

इकाई 3 क्रीमिया युद्ध एवं बर्लिन कांग्रेस के विशेष संदर्भ में पूर्वी समस्या (1815–1890), इंग्लैंड में उदारवाद, सुधार अधिनियम, चार्टिस्ट आंदोलन एवं अलेक्जेंडर व निकोलस के संदर्भ में रूस 75–116

3.0 परिचय
3.1 उद्देश्य
3.2 क्रीमिया युद्ध तथा बर्लिन कांग्रेस के विशेष संदर्भ में पूर्वी समस्या (1815–1890)
  3.2.1 क्रीमिया का युद्ध 1854–56 ई.
  3.2.2 बर्लिन सम्मेलन 13 जून–13 जुलाई, 1878

3.3 इंग्लैंड में उदारवाद का उदय एवं विकास : 1832, 1867 एवं 1884 ई. के सुधार अधिनियम एवं चार्टिस्ट आन्दोलन
3.4 रूस (1815 से 1890 ई. तक) : अलेक्जेंडर प्रथम एवं निकोलस प्रथम के विशेष संदर्भ में
3.5 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
3.6 सारांश
3.7 मुख्य शब्दावली
3.8 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
3.9 सहायक पाठ्य सामग्री

इकाई 4 अमेरिकी गृह युद्ध, इटली का एकीकरण, जर्मनी का एकीकरण, बिस्मार्क युग : बिस्मार्क की गृहनीति एवं विदेश नीति 117–153

4.0 परिचय
4.1 उद्देश्य
4.2 अमेरिका का गृह युद्ध
4.3 इटली का एकीकरण तथा जर्मनी का एकीकरण
4.3.1 इटली का एकीकरण
4.3.2 जर्मनी का एकीकरण
4.4 बिस्मार्क युग : गृहनीति एवं विदेश नीति
4.4.1 बिस्मार्क की गृह नीति
4.4.2 बिस्मार्क की विदेश नीति
4.5 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
4.6 सारांश
4.7 मुख्य शब्दावली
4.8 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
4.9 सहायक पाठ्य सामग्री

इकाई 5 मध्यपूर्व का महत्व, यूरोपीय शक्तियों की प्रतिद्वंद्विता, जापान व चीन में उपनिवेशवाद व साम्राज्यवाद, प्रथम चीन–जापान युद्ध और ताइपिंग तथा अन्य विद्रोह 155–197

5.0 परिचय
5.1 उद्देश्य
5.2 मध्यपूर्व का महत्व, मध्यपूर्व में यूरोपीय शक्तियों की महत्वाकांक्षाएं एवं प्रतिद्वंद्विता (1800 से 1890 ई. तक)
5.3 जापान में उपनिवेशवाद एवं साम्राज्यवाद – मेइजी पुनर्स्थापना एवं आधुनिकीकरण की प्रक्रिया
5.4 चीन में उपनिवेशवाद एवं साम्राज्यवाद : प्रथम एवं द्वितीय अफीम युद्ध, प्रथम चीन जापान युद्ध एवं ताइपिंग विद्रोह
5.5 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
5.6 सारांश
5.7 मुख्य शब्दावली
5.8 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
5.9 सहायक पाठ्य सामग्री

परिचय

टिप्पणी

प्रस्तुत पुस्तक 'विश्व का इतिहास 1776 ई. से 1890 ई. तक' विश्वविद्यालय द्वारा निर्धारित एम.ए. (इतिहास) पूर्वार्द्ध के पाठ्यक्रम के अनुरूप लिखी गई है। आधुनिक विश्व के उदय के साथ–साथ विश्व में प्रत्येक विषय–वस्तु आधुनिकता की ओर बढ़ती गई। इस आधुनिकता में नवीन विचारों, कार्य प्रणालियों, कार्य पद्धतियों, नई राजनीतिक शासन प्रणालियों एवं संगठनों का प्रादुर्भाव शामिल है। इन सबने मानव जीवन के प्रत्येक पक्ष को प्रभावित किया चाहे वह सामाजिक हो या राजनीतिक, आर्थिक हो या औद्योगिक। 1776 ई. से 1890 ई. तक का काल आज के आधुनिक विश्व की आधारशिला माना जा सकता है।

इस काल में हुए राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक परिवर्तन पर अमेरिकी स्वतंत्रता संग्राम, फ्रांस की क्रांति, यूरोप की राजनीतिक उथल–पुथल, इंग्लैंड के उदारवाद, रूस के प्रभुत्व के साथ ही इटली तथा जर्मनी के एकीकरण और यूरोपीय देशों के उपनिवेशवाद तथा मध्यपूर्व क्षेत्र में इनके हस्तक्षेप से उत्पन्न स्थितियों का प्रभाव स्पष्ट नजर आता है। भारतीय संस्कृति में जैसे समुद्र मंथन से अमृत और विष निकला था उसी प्रकार इस काल की उथल–पुथल से आधुनिक विश्व व्यवस्था का मार्ग प्रशस्त हुआ। हालांकि उसमें कुछ कमियां भी रही हैं।

प्रस्तुत पुस्तक में 1776 ई. से 1890 ई. तक के विश्व के इतिहास से संबद्ध विषयों का वर्णन प्रस्तुत किया गया है। प्रत्येक इकाई के आरंभ में विषय विश्लेषण से पूर्व, उसके निहित उद्देश्यों को स्पष्ट कर दिया गया है। इकाई के बीच–बीच में 'अपनी प्रगति जांचिए' के माध्यम से विद्यार्थियों की योग्यता परखने हेतु प्रश्न दिए गए हैं। प्रस्तुत पुस्तक में 1776 ई. से 1890 ई. तक के विश्व के इतिहास से संदर्भित अहम विषयों का सांगोपांग समायोजन किया गया है।

अध्ययन की सुविधा के लिए पुस्तक में पांच इकाइयों को समायोजित किया गया है जिनका विवरण इस प्रकार है–

पहली इकाई में अमेरिका की स्वतंत्रता का युद्ध तथा फ्रांस की क्रांति के कारणों, घटनाओं और इनके प्रभावों के साथ ही फ्रांस की राष्ट्रीय सभा और डायरेक्टरी का वर्णन किया गया है जिसे छात्र उपयोगी पाएंगे।

दूसरी इकाई में नेपोलियन के युग, वियना कांग्रेस, यूरोप की सभा, मेटरनिख के प्रतिक्रियावादी युग का अध्ययन किया गया है। यूरोप में फ्रांस की स्थिति को समझने हेतु छात्र इसे उपयोगी पाएंगे।

तीसरी इकाई में क्रीमिया के युद्ध तथा बर्लिन कांग्रेस के विशेष संदर्भ में पूर्वी समस्या (पूर्वी यूरोप की समस्या) के साथ ही इंग्लैंड में उदारवाद के उदय तथा विकास, विभिन्न सुधार अधिनियमों, चार्टिस्ट आंदोलन तथा अलेक्जेंडर I और निकोलस I के विशेष संदर्भ में रूस के 1815 ई. से 1890 ई. काल का अध्ययन कर पाएंगे। यह छात्रों को यूरोप की उथल–पुथल को बेहतर समझने में लाभदायक होगा।

चौथी इकाई में छात्र अमेरिका के गृहयुद्ध, इटली के एकीकरण, जर्मनी के एकीकरण, बिस्मार्क के युग तथा बिस्मार्क की गृहनीति और विदेश नीति का समुचित अध्ययन कर पाएंगे।

टिप्पणी

पांचवीं इकाई में मध्यपूर्व के महत्व, मध्यपूर्व में यूरोपीय शक्तियों की महत्वाकांक्षाओं व प्रतिद्वंद्विता के साथ ही जापान के उपनिवेशवाद तथा साम्राज्यवाद, मेइजी पुनर्स्थापना एवं आधुनिकीकरण तथा चीन में उपनिवेशवाद एवं साम्राज्यवाद के चलते हुए प्रथम एवं द्वितीय अफीम युद्ध, प्रथम चीन जापान युद्ध एवं ताइपिंग विद्रोह का अध्ययन किया गया है।

पाठ्यपुस्तक की भाषा को सरलतम रखते हुए यह ध्यान रखा गया है कि छात्रों को उक्त विषयों का सम्यक ज्ञान हो सके। इन इकाइयों के अध्ययन से विद्यार्थी इन विषयों से भली–भांति अवगत हो सकेंगे। हमें पूर्ण विश्वास है कि यह पुस्तक छात्र–छात्राओं की जिज्ञासा को शांत कर उनका ज्ञानवर्धन करने में सफल होगी।

इकाई 1 अमेरिका का स्वाधीनता संग्राम, फ्रांस की क्रांति, नेशनल असेंबली एवं डायरेक्टरी

संरचना

1.0 परिचय
1.1 उद्देश्य
1.2 अमेरिका में प्रारंभिक बस्तियों का निर्माण
1.3 अमेरिकी स्वतंत्रता संग्राम (अमेरिका की क्रांति) 1776 ई.
  1.3.1 अमेरिकी स्वतंत्रता संग्राम के कारण एवं घटनाक्रम
  1.3.2 अमेरिका की क्रांति के प्रभाव
  1.3.3 इग्लैंड की पराजय के कारण
1.4 सन् 1789 की फ्रांसीसी क्रांति के कारण
  1.4.1 फ्रांसीसी क्रांति का घटनाक्रम
  1.4.2 फ्रांस की क्रांति के प्रभाव
1.5 नेशनल असेंबली एवं डायरेक्टरी
1.6 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
1.7 सारांश
1.8 मुख्य शब्दावली
1.9 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
1.10 सहायक पाठ्य सामग्री

1.0 परिचय

अमेरिका की 1776 ई. की क्रांति विश्व इतिहास की एक महत्वपूर्ण घटना थी। 14वीं शताब्दी तक अमेरिका महाद्वीप विश्व मानचित्र पर नहीं था। 1492 ई. में कोलम्बस ने सर्वप्रथम अमेरिका की खोज की। इंग्लैंड के प्यूरिटनों ने अमेरिका पहुँच कर न्यू इंग्लैंड नामक उपनिवेश की स्थापना की। धीरे–धीरे यहाँ उपनिवेशों की सख्या 13 तक पहुँच गयी। इन उपनिवेशवासियों ने इंग्लैंड से अपनी स्वतंत्रता के लिये जो संघर्ष किया वह अमेरिका की क्रांति कहलाता है।

फ्रांस की राज्य क्रांति न केवल यूरोप अपितु समस्त विश्व की एक महत्वपूर्ण घटना थी। फ्रांस की राज्य क्रांति के कारण वहाँ की पुरातन व्यवस्थाओं में विद्यमान थे। 1789 ई. में क्रांति के पूर्व फ्रांस की राजनीतिक, सामाजिक एवं आर्थिक दशा काफी दयनीय थी। किसी भी क्रांति के लिए न तो कोई घटना विशेष जिम्मेदार होती है और न ही अनेक महत्वहीन घटनाएँ क्रांति को जन्म दे सकती हैं। वस्तुतः प्रत्येक क्रांति के पीछे कई महत्वपूर्ण घटनाओं का संयुक्त योगदान होता है। फ्रांस की 1789 ई. की क्रांति के पीछे भी अनेक महत्वपूर्ण कारण विद्यमान थे। उस समय के प्रखर बुद्धिवादी विचारकों ने क्रांति के लिए जिम्मेदार सभी प्रमुख कारणों पर से पर्दा हटाकर लोगों में बौद्धिक जागृति उत्पन्न की। लुई मादलें के अनुसार, ''फ्रांस की राज्य क्रांति फ्रांस की पुरातन व्यवस्था में निहित बुराइयों का ही परिणाम थी, किन्तु इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता है कि बौद्धिक जागृति के बगैर इसका उदय सम्भवतः न हुआ होता।''

1789 की क्रांति के पूर्व फ्रांस में हेनरी IV (1589–1610 ई.) ने शक्तिशाली बूर्बो राजवंश की स्थापना की थी। लुई तेरहवें (1610–1643 ई.) ने अपने मन्त्री रिश्लू की सहायता से फ्रांस को यूरोप में एक शक्तिशाली राष्ट्र बनाया। लुई चौदहवाँ (1643–1715 ई.) सर्वशक्तिशाली शासक प्रमाणित हुआ। वह राजा के दैवीय अधिकारों का प्रबल समर्थक था तथा फ्रांस का एक महान निरंकुश शासक था। जिसका कहना था कि मैं ही राज्य हूँ। 1715 ई. में जब लुई पन्द्रहवें ने सत्ता सँभाली, तब वह अल्प वयस्क था अतः 1715 से 1723 ई. तक उसने अपने चाचा तथा 1723 से 1743 ई. तक कार्डिनल फ्लेदि के संरक्षण में एवं 1743 से 1774 ई. तक स्वयं शासन किया। वस्तुतः उसके अयोग्यता एवं विलासतापूर्ण शासनकाल में ही फ्रांस की राज्य क्रांति का बीजारोपण आरम्भ हो गया था और इसी क्रांति के बीज 1789 ई. में लुई सोलहवें (1774–1793 ई.) के शासन काल में, प्रस्फुटित एवं पल्लवित हुए। लुई सोलहवें का निरंकुश व्यवहार एवं विलासितापूर्ण जीवन भी क्रांति का एक कारण बना।

इस प्रकार फ्रांस के शासकों की निरंकुशता, सामाजिक असमानता एवं शोचनीय आर्थिक दशा एवं पुरातन व्यवस्था में निहित बुराइयाँ क्रांति का प्रमुख कारण थीं जिन्हें दार्शनिकों ने उजागर किया था।

इस इकाई में हम अमेरिकी क्रांति तथा फ्रांस की क्रांति के कारण, प्रकृति एवं प्रभावों की तथ्यपरक विवेचना प्रस्तुत करेंगे।

1.1 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप–

- अमेरिका की प्रारंभिक बस्तियों एवं उनकी समस्याओं के बारे में जान पाएंगे;
- अमेरिकी स्वतंत्रता संग्राम एवं फ्रांस की क्रांति का विस्तृत अध्ययन कर पाएंगे;
- अमेरिका के स्वाधीनता संघर्ष एवं फ्रांस की क्रांति के कारणों की व्याख्या कर पाएंगे;
- अमेरिका के स्वाधीनता संघर्ष एवं फ्रांस की क्रांति के प्रभावों के बारे में जान पाएंगे;
- इंग्लैंड की पराजय के कारणों के बारे में जान पाएंगे;
- फ्रांस की क्रांति के बाद नई व्यवस्था के रूप में सामने आई नेशनल असेंबली एवं डायरेक्टरी का अध्ययन कर पाएंगे।

1.2 अमेरिका में प्रारंभिक बस्तियों का निर्माण

समुद्री खोजों के पश्चात् विभिन्न यूरोपीय देशों ने विश्व के विभिन्न भागों में उपनिवेशों की स्थापना का कार्य आरम्भ किया। यूरोप के विभिन्न देशों का क्षेत्रफल अत्यंत कम था एवं जनसंख्या अधिक थी। यूरोप के कई देश तो भारत के राज्यों से भी छोटे थे। यूरोप की जनता कृषि एवं व्यापार में पैसा कमाना चाहती थी। यूरोप में जनसंख्या के दबाव के कारण कृषि योग्य भूमि अत्यंत कम थी। जब अमेरिका की 1492 ई. में

खोज हुई तो यूरोपवासियों को यहाँ की सोने–चाँदी की खदानों एवं अन्य प्राकृतिक संसाधनों का ज्ञान हुआ। अतः अब यूरोप वासियों ने धीरे–धीरे अपना घरबार छोड़कर अमेरिका के विभिन्न क्षेत्रों में बसना आरम्भ किया। जब यूरोपीय लोग अमेरिका में आये तो उन्होंने स्थानीय इण्डियन लोगों का गुलामों एवं भूदासों के रूप में उपयोग किया। उनसे अपने आर्थिक फायदों के लिए बेगार कराई। बेगार करने से इन्कार करने वालों का सामूहिक रूप से कत्लेआम कराया। इस प्रकार अमेरिका के मूल निवासियों की एक बड़ी आबादी मौत के घाट उतार दी गई। जो कुछ बाकी बचे, उन्हें गुलामों एवं भूदासों में परिणत कर दिया गया। इस प्रकार स्थानीय लोगों को विस्थापित कर अमेरिका में यूरोपीय गोरे लोगों की बस्तियाँ स्थापित हो गयी।

इस प्रकार अमेरिका ही नहीं, आस्ट्रेलिया आदि में भी श्वेत बस्तियाँ स्थापित हुई एवं श्वेत समाजों का निर्माण हुआ। यहाँ बसकर गोरे लोगों की कृषि व व्यापार भी यूरोपियों के अनुकूल थी एवं यहाँ प्राकृतिक संसाधनों का भी बाहुल्य था, अतः यहाँ यूरोपीय श्वेत बस्तियाँ काफी तेजी से स्थापित हुई।

इस प्रकार जो श्वेत समाज यहाँ बसा, उसने अमेरिका में प्राकृतिक संसाधनों, उद्योग एवं कृषि द्वारा अत्यधिक लाभ प्राप्त किया। यहाँ से प्राप्त होने वाले लाभ ने अधिक से अधिक यूरोपीय लोगों को यहाँ आकर बसने के लिए लालायित किया। 17वीं शताब्दी के प्रारम्भ में, अमेरिका के पूर्वी तट पर श्वेत लोगों की बस्तियाँ स्थापित होने लगी थीं। इस श्वेत आबादी में 90 प्रतिशत अंग्रेज एवं 10 प्रतिशत पुर्तगाली, फ्रांसीसी, डच व जर्मन लोग थे। 1607 ई. में अमेरिका में सबसे पहली अंग्रेज बस्ती जेम्सटाउन में स्थापित की गई। जेम्सटाउन वर्जीनिया का एक बन्दरगाह था। सर्वप्रथम इसी बंदरगाह से 1614 ई. में तम्बाकू से लदा हुआ जहाज रवाना हुआ था। 17वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में श्वेत लोगों की बस्तियाँ बड़ी तेजी के साथ बढ़ने लगी। 1775 ई. तक अमेरिका में 13 उपनिवेश बसाये जा चुके थे। ये 13 उपनिवेश जिनकी कुल जनसंख्या 50 लाख से अधिक थी निम्न थे–

1. न्यू हैम्पशायर (New Hampshire)
2. मेसाचूसेट्स (Masschusetts)
3. रोड द्वीप (Rhode Island)
4. कनेक्टिकट (Connecticut)
5. न्यूयार्क (New York)
6. न्यूजर्सी (New Jerssey)
7. पेंसिलवेनिया (Pennsylvania)
8. डेलावेयर (Delaware)
9. मेरीलैंड (Maryland)
10. वर्जीनिया (Virginia)
11. उत्तरी केरोलिना (North Carolina)
12. दक्षिणी केरोलिना (South Carolina)
13. जार्जिया (Georgia)

अमेरिका की प्रारंभिक बस्तियों की समस्याएं

अमेरिका की स्थानीय आबादी को विस्थापित कर यूरोप के श्वेत समाज ने अमेरिका में अपनी बस्तियाँ तो स्थापित कर लीं मगर इनके समक्ष कई प्रकार की समस्याएं थी। सर्वप्रथम तो इन्हें इंग्लैंड से स्वतंत्र होने के लिये संघर्ष करना पड़ा। फलतः अमेरिकन क्रांति 1776 ई. में सम्पन्न हुई। अमेरिका स्वतंत्र तो हो गया मगर इसके बाद उसे दास प्रथा की समस्या का सामना करना पड़ा जिसके कारण अमेरिका में गृह युद्ध छिड़ गया। इन समस्याओं से उबरने के पश्चात् ही अमेरिका प्रगति के पथ पर अग्रसर हो सका।

अमेरिका में जिन श्वेत बस्तियों की स्थापना हुई एंव जो श्वेत समाज अस्तित्व में आया, उसकी संस्कृति एक मिश्रित संस्कृति थी। चूँकि यहाँ के निवासी, विभिन्न यूरोपीय देशों से, विभिन्न कारणों से एवं विभिन्न स्वार्थो से प्रेरित होकर आये थे। इन सभी की अपनी अलग–अलग संस्कृति थी जिनका समन्वय अमेरिका में हुआ और परिणामस्वरूप एक मिश्रित संस्कृति अस्तित्व में आई। धर्म, अर्थ एवं समाज का योग संस्कृति कहलाता है। इस दृष्टि से भी अमेरिका के श्वेत समाज के लोग, विभिन्न यूरोपीय समाजों से सम्बद्व थे, विभिन्न धर्मावलम्बी थे एवं विभिन्न आर्थिक हितों की वजह से यहाँ आये थे।

धार्मिक दृष्टि से हम पाते हैं कि अमेरिका के श्वेत समाज में एंग्लिकन, प्यूरिटन, लूथरवादी, क्वेकर एवं प्रेसबीटेरियन आदि सभी सम्प्रदायों के लोग थे। इतनी विभिन्नताओं के बावजूद भी इस समस्त श्वेत समाज के सामने एक ही प्रकार की समस्याएँ थीं जिनका सामना इन्हें मिल–जुलकर करने हेतु एकजुट होना पड़ा। अतः अमेरिका में बसे इस यूरोपीय समाज की अपनी एक विशिष्ट संसकृति सामने आई।

अमेरिका में यूरोपियन श्वेत समाज की स्थापना से अमेरिका ने प्रायः सभी क्षेत्रों में उन्नति की। कई महत्वपूर्ण नगरों की स्थापना हुई। बोस्टन, न्यूयार्क, जेम्स टाउन, चार्ल्स टाउन, फिलाडेल्फिया एवं सवानाह आदि कई नगरों का विकास हुआ। जैसे–जैसे नवागन्तुक यूरोपीय लोग अमेरिका में नये– नये नगर बसाते गये, वैसे–वैसे वे अपनी सामाजिक व्यवस्था के सुचारू संचालन के लिए स्थानीय जनतंत्रीय शासन व्यवस्था भी स्थापित करते जाते थे। तटीय नगरों पर अधिकांशतः इंग्लैंडवासी बसे तथा आन्तरिक स्थानों पर प्रायः फ्रांसीसी बस्तियाँ स्थापित हुई। इन श्वेत लोगों ने अपने किले भी स्थापित किये। सप्तवर्षीय युद्ध (1756–1763ई.) के पश्चात् अमेरिका की सभी फ्रांसीसी बस्तियाँ अंग्रेजों की अधीनता में आ गई।

अमेरिका में आने वाला श्वेत समाज अपने को इंग्लैंड के सम्राट की प्रजा समझता था। इंग्लैंड का सम्राट भी इन पर अपना शासनाधिकार मानता था। इंग्लैंड ने ऐसे कानून बनाये थे कि अमेरिकावासी इंग्लैंड के साथ ही व्यापार करें। यहाँ एक अंग्रेज वायसराय की भी नियुक्ति की गई। अमेरिका में रहने वाला श्वेत समाज स्वतंत्रता चाहता था, वह अब अपने आपको इंग्लैंड़ के शिकंजे से मुक्त करना चाहता था फलतः यहाँ स्वतंत्रता संग्राम छिड़ गया। इसे अमेरिकी क्रांति भी कहा गया है।

अपनी प्रगति जांचिए

1. अमेरिका की खोज कब हुई?

(क) 1492 (ख) 1498

(ग) 1496 (घ) 1499

2. अमेरिका में सबसे पहली अंग्रेज बस्ती कहां स्थापित हुई?

(क) वांशिग्टन (ख) जेम्सटाउन

(ग) न्यूयार्क (घ) फिलाडेल्फिया

1.3 अमेरिकी स्वतंत्रता संग्राम (अमेरिका की क्रांति) 1776 ई.

संयुक्त राज्य अमेरिका आज विश्व का सर्वाधिक शक्ति सम्पन्न राष्ट्र है। उत्तरी अमेरिका में इंग्लैंड का सर्वप्रथम उपनिवेश जेम्स प्रथम (1603–1625 ई.) के काल में स्थापित किया गया था। 1620 ई. में जेम्स प्रथम की धार्मिक नीतियों एवं अत्याचारों से तंग आकर अनेक प्यूरिटनों ने अमेरिका पहुँचकर न्यू इंग्लैंड नामक उपनिवेश की स्थापना की थी। चार्ल्स प्रथम (1625–1649ई.) के शासन काल में इंग्लैंड के प्यूरिटनों ने अमेरिका में कई उपनिवेश स्थापित किये। सप्तवर्षीय युद्ध (1756–1763 ई.) के पश्चात् अमेरिका में इंग्लैंड के उपनिवेशों की संख्या 13 तक पहुँच गयी। ये 13 उपनिवेश अमेरिका के पूर्वी भाग में अटलाण्टिक तट पर स्थित थे।

इन अमेरिकी उपनिवेशों का शासन ब्रिटिश पार्लियामेंट द्वारा चलाया जाता था। प्रत्येक उपनिवेश के शासन के संचालन हेतु एक गवर्नर नियुक्त था जो ब्रिटिश सरकार के प्रति उत्तरदायी था। गवर्नर को परामर्श हेतु प्रत्येक उपनिवेश में एक निर्वाचित विधानसभा थी, परन्तु इन विधानसभाओं का न तो गर्वनर पर कोई नियंत्रण था और न ही ये कानून बना सकती थी। अतः ब्रिटिश सरकार के प्रति उत्तरदायी गर्वनर एवं उपनिवेश की विधान सभाओं में निरन्तर संघर्ष होता रहता था। वस्तुतः प्रत्येक उपनिवेश की बहुसंख्यक जनता अंग्रेज ही थी और वह इंग्लैंड की तरह ही व्यक्तिगत स्वतंत्रता के आदर्शो से प्रेरित थी। प्यूरिटन धर्म के अनुयायी तो अपनी स्वतंत्रता हेतु और अधिक जागरूक थे। अतः इन उपनिवेशों ने अपनी स्वतंत्रता के लिए जो संघर्ष किया, वही अमेरिका की क्रांति कहलाता है।

1.3.1 अमेरिकी स्वतंत्रता संग्राम के कारण एवं घटनाक्रम

15वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध से पूर्व अमेरिका महाद्वीप विश्व के मानचित्र पर नहीं था। 1453 ई. में उस्मानी तुर्को द्वारा पूर्वी रोमन साम्राज्य पर आधिपत्य के पश्चात् उत्पन्न परिस्थितियों के कारण नये समुदी मार्गो की खोज आवश्यक हो गयी। इन्हीं प्रयासों के चलते 1492 ई. में कोलम्बस द्वारा एक नई दुनिया की खोज हुई। 17वीं शताब्दी में इंग्लैंड तथा अन्य यूरोपीय देशों के उपनिवेश अमेरिका में स्थापित हुए। उत्तरी अमेरिका के पूर्वी तट पर जो बस्तियाँ स्थापित हुई, उन्हें न्यू इंग्लैंड कहा जाने लगा। इन बस्तियों की सख्या 13 थी।

टिप्पणी

1776 से 1783 ई. तक अमेरिका की 13 बस्तियों ने इंग्लैंड से स्वतंत्रता–प्राप्ति हेतु संघर्ष किया। इसे अमेरिकी क्रांति अथवा स्वतंत्रता संघर्ष कहा जाता है। इसके निम्नलिखित कारण थे–

1. उपनिवेशवासियों का इंग्लैंड के प्रति दृष्टिकोण–सर्वप्रथम वाल्टर रेले ने अमेरिका में वर्जीनिया उपनिवेश की स्थापना की। इंग्लैंड के स्टुअर्ट राजाओं के शासन काल में इंग्लैंड के हजारों लोग अपनी मातृभूमि को छोड़कर अमेरिका जा बसे–

(i) इंग्लैंड के वे प्यूरिटन्स जो स्टुअर्ट शासक जेम्स प्रथम की धार्मिक नीति से असन्तुष्ट थे व उसके उत्पीड़न से बचना चाहते थे।

(ii) कुछ यूरोपियन्स व्यापारिक रुचि के कारण वहाँ जाकर बसे।

(iii) कुछ ऐसे आपराधिक प्रवृत्ति के लोग भी थे जिन्हें इंग्लैंड सरकार द्वारा बलपूवर्क न्यू इंग्लैंड भेजा गया।

इन सभी लोगों को इंग्लैंड से कोई प्रेम नहीं था। "इनके लिए इंग्लैंड स्वेच्छाचारी तथा क्रूर माँ थी और बहुतों के लिए वह कभी माँ थी ही नहीं।"

2. उपनिवेशों की असन्तोषजनक शासन व्यवस्था–अमेरिकन बस्तियों में इंग्लैंड की सरकार द्वारा नियुक्त गवर्नरों का शासन था। जो इंग्लैंड के राजा के प्रति उत्तरदायी था तथा उपनिवेशों की विधानसभाओं की अवहेलना करता था। इंग्लैंड की संसद को उपनिवेशों के लिए कानून बनाने व उन पर कर लगाने का अधिकार था, जबकि विधानसभा इसके लिए तैयार नहीं थी।

3. सप्तवर्षीय युद्ध के परिणाम–इंग्लैंड व फ्रांस के मध्य 1756 से 1763 ई. तक सप्तवर्षीय युद्ध हुआ जिसमें फ्रांस पराजित हुआ। अतः अब अमेरिकी उपनिवेशों को फ्रांसीसी आक्रमण का भय नहीं रहा। एक इतिहासकार के अनुसार, ''इब्राहम के पहाड़ पर वुल्फ की विजय के साथ संयुक्त राज्य का इतिहास आरम्भ हुआ।''

4. उपनिवेशों के प्रति ब्रिटिश दृष्टिकोण–इंग्लैंड के राजनीतिज्ञों का विचार था कि इंग्लैंड में सप्तवर्षीय युद्ध अमेरिकन उपनिवेशों की रक्षार्थ लड़ा गया था, अतः इंग्लैंड को उपनिवेशों पर कर लगाने का अधिकार है। उन्होंने कई दमनकारी कानून लागू किये जिससे अमेरिकनों में असन्तोष व्याप्त हुआ।

5. इंग्लैंड के प्रतिबन्ध–इंग्लैंड की संसद द्वारा पारित विभिन्न जहाजरानी कानूनों ने उपनिवेशीय व्यवसायों पर प्रतिकूल प्रभाव डाला। जैसे–

(i) उपनिवेशों को इंग्लैंड के अतिरिक्त किसी और क्षेत्र से व्यापार का अधिकार नहीं था।

(ii) उननिवेशों को केवल अंग्रेज जहाजों द्वारा व्यापार अनिवार्य था।

(iii) उपनिवेश इंग्लैंड में उत्पादित वस्तुओं का निर्माण नहीं कर सकते थे।

(iv) उपनिवेशों में आने वाले माल पर इंग्लैंड ने कर $2\frac{1}{2}$ से 5 प्रतिशत लगा दिया।

इस प्रकार इंग्लैंड ने उपनिवेशों की व्यवस्था करते समय इस सिद्वांत को ध्यान में रखा कि " The colonies exist for the mother country.

6. धार्मिक कारण–अमेरिका में बसने वाले अंग्रेज कैथोलिक तथा प्रोटेस्टेण्ट दोनों ही थे और इनमें भी प्यूरिटन मत के अनुयायी ज्यादा थे। ये लोग एग्लिकन चर्च के कटु आलोचक थे और उपनिवेशों के इंग्लैंड समर्थित चर्चो को धार्मिक कर नहीं देना चाहते थे।

7. ग्रेनविल की नीतियाँ–इंग्लैंड के प्रधानमन्त्री ग्रेनविल ने आर्थिक कठिनाइयों को दूर करने के लिए जो निम्न प्रयास किये, उनसे असन्तोष फैला–

(1) एडमिरल्टी कोर्ट की स्थापना

(2) मोलासेज एक्ट (शीरा कानून) को लागू किया

(3) मिसीसिपी नदी क्षेत्र के विस्तृत भाग रेड इंडियंस के लिए सुरक्षित किये।

8. उपनिवेशों में स्थायी सेना रखने का प्रावधान–अमेरिका के मूल निवासियों ने कई उपनिवेशों में विद्रोह किये। ग्रेनविल इन उपनिवेशों में स्थायी सेना रखने का समर्थक था और इस पर होने वाले खर्च 1/3 भाग उपनिवेशों से वसूल करना चाहता था, जबकि उपनिवेशवासी कोई आर्थिक सहायता देने को तैयार न थे।

9. स्टाम्प एक्ट–मार्च 1765 ई. में ग्रेनविल सरकार ने आय बढ़ाने हेतु स्टाम्प एक्ट पारित किया। इसके अनुसार कागजों पर उनके महत्व के अनुसार 2 पेंस से लेकर 6 पौण्ड तक स्टाम्प एक्ट लगाना अनिवार्य कर दिया। इसकी आय का उपयोग उपनिवेशों की रक्षार्थ रखी स्थायी सेना के लिए होना था। इसका प्रबल विरोध हुआ। सभी उपनिवेशों का यह मानना था कि प्रतिनिधित्व नहीं तो कर भी नहीं। विरोध इतना बढ़ा कि अन्ततः 1766 ई. में स्टाम्प एक्ट को रद्द करना पड़ा।

10. टाउनशैंड अधिनियम–स्टाम्प एक्ट को रद्द करने के उपरांत संसद ने एक घोषणात्मक अधिनियम पारित किया कि संसद को प्रत्येक स्थिति में उपनिवेशों पर कर लगाने व कानून बनाने का अधिकार है। टाउनशैंड का यह दृष्टिकोण अमेरिकन क्रांति का कारण बना।

11. बोस्टन नरसंहार–5 मार्च, 1770 को मेसाचूसेट्स की राजधानी बोस्टन में जनता और सैनिकों के मध्य मुठभेड़ में कुछ लोग मारे गये। उपनिवेशवासियों ने इसे बोस्टन नरसंहार का नाम देकर प्रचारित किया।

12. चाय अधिनियम–1773 ई. में ब्रिटिश संसद ने चाय अधिनियम पारित किया। इसके निम्न उद्देश्य थे–

(1) ईस्ट इण्डिया कम्पनी को चाय का बाजार उपलब्ध कराना।

(2) चाय के क्षेत्रों में डचों के बाजार को समाप्त करना।

(3) तस्करी को रोकना।

13. बोस्टन टी पार्टी–अमेरिकी उपनिवेशों ने ईस्ट इण्डिया कम्पनी के चाय बेचने के एकाधिकार को अपनी स्वतंत्रता पर आघात मानते हुए 16 दिसम्बर 1773 को बोस्टन बन्दरगाह में चाय से लदे हुए इंग्लैंड के जहाजों पर से 343 चाय की पेटियाँ उठाकर समुद्र में फेंक दीं। इस घटना से दोनों पक्षों में भारी उत्तेजना फैली।

14. असहनीय नियम, 1774–बोस्टन की घटना से क्रोधित होकर ब्रिटिश सरकार ने मैसाचूसेट्स के विरूद्व 5 असहनीय नियम लागू किये जिससे जनता आंदोलित हो

उठी। परिणामस्वरूप सभी उपनिवेश एक हो गये। वाशिंगटन व जेफरसन के नेतृत्व में सभी उपनिवेशों ने इंग्लैंड के साथ कोई सम्पर्क न रखने का समझौता किया।

15. फिलाडेल्फिया काँग्रेस–दीर्घकाल तक एक–दूसरे से अलग रहे उपनिवेशों में इंग्लैंड की नीतियों के कारण एकता स्थापित हुई।

5 सितम्बर, 1774 को फिलाडेल्फिया में सभी उपनिवेशों का एक अधिवेशन हुआ। इसमें प्रतिनिधियों ने कहा कि उपनिवेशों को कानून बनाने का पूर्ण अधिकार होना चाहिए। काँग्रेस ने मेसाचूसेट्स के विरूद्व किये गये अन्याय का सामूहिक प्रतिकार करने की घोषणा की।

10 मई, 1775 को फिलाडेल्फिया की काँग्रेस में सभी 13 उपनिवेशों ने क्रांतिकारी सरकारों की स्थापना की और जार्ज वाशिंगठन को सम्मिलित सेना का प्रधान सेनापति नियुक्त किया गया। मार्च 1776 में वाशिंगठन ने बोस्टन पर अधिकार कर लिया।

स्वतंत्रता की घोषणा–4 जुलाई, 1776 ई. को फिलाडेल्फिया के तृतीय अधिवेशन में स्वतंत्रता की घोषणा कर दी और एक नये राष्ट्र का जन्म हुआ। इस प्रकार, स्वाधीनता और सुख की खोज के अधिकारों के लिए अन्तिम क्षण तक लड़ने का संकल्प व्यक्त किया गया। इस घोषणा पत्र का मसौदा जेफरसन ने तैयार किया था।

1776 से 1783 ई. तक अमेरिकी उपनिवेशवासियों ने साधनों की कमी के बावजूद बड़े मनोबल एवं उत्साह से संघर्ष किया। फ्रांस, स्पेन, हालैंड ने भी निहित स्वार्थवश उपनिवेशवासियों को सैनिक एवं आर्थिक मदद की। परिणामस्वरूप इंग्लैंड की पराजय हुई और अन्ततोगत्वा 1783 ई. की वर्साय सन्धि के द्वारा संयुक्त राज्य अमेरिका की स्वतंत्रता को स्वीकार कर लिया गया।

1.3.2 अमेरिका की क्रांति के प्रभाव

एच.डब्ल्यू. एल्सन के अनुसार, अमेरिकन क्रांति परिणामों की दृष्टि से मानव इतिहास की महत्वपूर्ण घटना थी। उसके परिणाम निम्न हैं–

(1) संयुक्त राज्य अमेरिका का निर्माण–अमेरिकियों ने अपने संविधान में स्वतंत्रता के अधिकार के सिद्धांत की रक्षा के लिए ऐसी व्यवस्थाएँ कीं जिससे संघीय राज्यों की स्वतंत्रता अक्षुण्ण बनी रहे।

अमेरिका की अध्यक्षात्मक सरकार ने संसद अर्थात् जनता की प्रभुसत्ता को मान्यता दी। अमेरिकी संविधान निर्माताओं ने माण्टेस्क्यू के शक्ति पृथक्करण के सिद्धांत को स्वीकार किया।

दासता को धीरे–धीरे समाप्त करने के प्रयास प्रारम्भ हुए तथा उत्तराधिकार के नियमों में सुधार हुआ।

(2) इंग्लैंड में जार्ज तृतीय के व्यक्तिगत शासन का अन्त–इस युद्ध की असफलता के कारण ही 1782 ई. में लार्ड नार्थ को प्रधानमंत्री पद से त्यागपत्र देना पड़ा। उसके साथ ही जार्ज तृतीय का व्यक्तिगत शासन समाप्त हो गया। 1783 ई. पिट द यंग ने जिस मन्त्रिमण्डल का निर्माण किया, वह राजा की कृपा पर नहीं वरन् लोकसभा में बहुमत के आधार पर स्थापित हुआ।

(3) पुरानी औपनिवेशक नीति का अन्त–पुरानी औपनिवेशिक नीति का सिद्धांत "That the Colony exists for their Mother Country" का अंत हुआ अर्थात् उपनिवेशों को ब्रिटेन की व्यापारिक प्रगति का एक साधन मात्र मानना समाप्त हुआ।

अपनी उपनिवेश नीति में क्रांतिकारी परिवर्तन करते हुए गोरे उपनिवेशों– कनाडा, आस्ट्रेलिया एवं न्यूजीलैंड को औपनिवेशिक स्वराज्य प्रदान किया गया।

(4) इंग्लैंड की प्रतिष्ठा को आघात– इंग्लैंड द्वारा पश्चिमी फ्लोरिडा स्पेन को सौंपना पड़ा। टोबेगो, सेनेगल, सेन्ट लुइस, मिनोर्का तथा भारत में अधिकृत फ्रांसीसी क्षेत्र इंग्लैंड द्वारा फ्रांस को देना पड़ा।

(5) धार्मिक स्वतंत्रता–स्वतंत्रता संग्राम के प्रभाव में अंग्रेजी चर्च की पुरानी व्यवस्थाओं का अंत हुआ तथा पूर्ण धार्मिक स्वतंत्रता के सिद्धान्त की स्थापना हुई।

(6) ब्रिटेन के व्यापार पर प्रभाव–अमेरिका की 13 बस्तियों के स्वतंत्र हो जाने से ब्रिटेन की आर्थिक समृद्धि के स्रोत कट गये और उद्योग व व्यापार–वाणिज्य का नुकसान हुआ। ऐसे में इंग्लैंड ने कच्चे माल व तैयार माल की खपत हेतु नवीन उपनिवेशों की खोज आरंभ की।

(7) कनाडा तथा आस्ट्रेलिया पर प्रभाव–स्वतंत्रता युद्ध में ब्रिटेन का साथ देने वाले अनेक लोगों ने कनाडा प्रस्थान किया और नवीन कनाडा का निर्माण हुआ। ब्रिटेन से निकाले गये अपराधियों को अमेरिका नहीं भेजा जा सकता था, अतः ऐसे लोगों को आस्ट्रेलिया भेजा जाना आरम्भ हुआ।

(8) आयरलैंड का प्रभाव–'प्रतिनिधित्व नहीं तो कर नहीं का नारा आयरलैंड में भी लोकप्रिय हुआ। डून गेनन में आयरलैंड के प्रतिनिधियों का सम्मेलन हुआ जिसमें पृथक संसद और व्यापारिक सुविधाओं की माँग स्वीकृत हुई। 1782 में आयरलैंड की पृथक संसद की माँग स्वीकार हुई।

(9) फ्रांस पर प्रभाव–अमेरिकी स्वतंत्रता संग्राम ने फ्रांस को मुख्यतः 2 प्रकार से प्रभावित किया–

(i) युद्ध में भाग लेने के कारण फ्रांस की आर्थिक स्थिति अत्यंत खराब हुई और यह फ्रांस की राज्य क्रांति का तात्कालिक कारण बनी।

(ii) लफायेत व अन्य फ्रांसीसी सेनानायक अमेरिका से लौटकर स्वतंत्रता का जो संदेश लाये, उसका फ्रांस के जनमानस पर गहरा प्रभाव पड़ा।

(10) भारत पर प्रभाव–डॉ.प्लम्ब का विचार है कि कि अमेरिका के युद्ध ने अंग्रेजों का साम्राज्य के प्रति दृष्टिकोण बदल डाला। भारत में प्रशासनिक और वैधानिक सुधार प्रक्रिया तीव्र हुई। 1784 ई. में पिट का इण्डिया एक्ट इसी का एक परिणाम था।

इस प्रकार अमेरिकी स्वतंत्रता संग्राम ने यूरोप की राजनीति को एक नया आयाम दिया। कार्ल एल.बेकर के अनुसार, ''अमेरिकी क्रांति एक नहीं अपितु दो क्रांतियों का सम्मिलन थी। प्रथम 'बाह्य क्रांति' थी जिसके अन्तर्गत उपनिवेशों में ब्रिटेन के विरूद्व विद्रोह किया गया तथा जिसका कारण उपनिवेशों व ब्रिटेन मे मध्य आर्थिक हितों का संघर्ष था। द्वितीय 'आंतरिक क्रांति' थी जिसका प्रयोजन स्वतंत्रता के पश्चात् अमेरिका के भविष्य की रूपरेखा तैयार करना था''

1.3.3 इंग्लैंड की पराजय के कारण

अमेरिकी स्वतंत्रता की घोषणा के समय परिस्थितियाँ कुछ ऐसी थी जिनमें अंग्रेजों का पलड़ा भारी था क्योंकि उपनिवेशों और इंग्लैंड के साधनों में कोई समानता नहीं थी। स्वयं वाशिंगटन के अनुसार हमारे पास कपड़ों रसद एवं शास्त्रों का अभाव था। अमेरिका में अनेक लोग ऐसे थे जिनकी राजभक्ति इंग्लैंड के प्रति थी। उसके बावजूद अमेरिकन स्वतंत्रता युद्ध में इंग्लैंड को पराजय का मुँह देखना पड़ा। इसके लिए निम्न परिस्थितियाँ उत्तरदायी थी–

(1) भौगोलिक परिस्थितियाँ–अमेरिका ब्रिटेन से 3,000 मील की दूरी पर स्थित था एवं लगभग 1,000 मील के विस्तृत क्षेत्र में फैला हुआ था। यहाँ के निवासियों ने समूचे क्षेत्र को जो घने वनों से आच्छादित था, युद्ध क्षेत्र में परिवर्तित कर दिया। अंग्रेज न तो भौगोलिक स्थिति से परिचित थे और न ही उनके पास यातायात व संचार के साधन थे। इसके अतिरिक्त 3,000 मील की दूरी से युद्ध संचालन करना और लम्बी समुद्र यात्रा एवं व्यय के बाद ब्रिटिश सेना का अमेरिकियों से लड़ना अत्यंत कठिन कार्य था।

(2) उपनिवेशों की शक्ति का गलत आकलन–मार्टिन तथा रेम्जे म्योर के अनुसार ब्रिटेन ने उपनिवेशों की वास्तविक शक्ति का अनुमान लगाने में गलती की। एक विशेषज्ञ ने कहा था,''अमेरिका को जीतने के लिए 4 रेजीमेण्ट काफी होंगी, परन्तु यह अनुमान मिथ्या धारणाओं, गलत सूचनाओं और जार्ज 3 के मन्त्रियों के झूठे आत्मविश्वास पर आधारित था। संभवतः इसी कारण ब्रिटेन ने यह मानते हुए कि युद्ध लम्बा नहीं चलेगा, युद्ध की पूर्ण तैयार नहीं की।''

(3) अयोग्य सैन्य नेतृत्व–युद्ध में इंग्लैंड की असफलता का एक महत्वपूर्ण कारण अंग्रेज सेनापतियों की अयोग्यता थी। क्लैटिण्टन हालांकि योग्य था परन्तु राजनीतिक कारणों से हटा दिया गया। उसका स्थान लेने वाला ब्रिटिश जनरल वुटगोइन कलह–प्रिय था। जार्ज सेकविल और विलियम हाब डरपोक व अकर्मण्य थे। सारगोटा युद्ध के बाद हाब ने उपनिवेशवासियों की कठिनाइयों का लाभ नहीं लिया। उसने फिलाडेल्फिया में समय बर्बाद कर वाशिंगटन को संगठित होने का अवसर दिया। विलयम ने सही लिखा है, ''अंग्रेजी हार राजा के शत्रुओं के कारण नहीं अपितु मित्रों के कारण हुई।

(4) इंग्लैंड की नौसैनिक दुर्बलता–सप्तवर्षीय युद्ध के पश्चात् इंग्लैंड ने नौसैनिक कुशलता को बढ़ाने का प्रयत्न नहीं किया, जबकि फ्रांस व हालैंड ने इसमें सुधार किया। इंग्लैंड फ्रांस की नाकेबन्दी करने व उसे उपनिवेशों को सहायता देने से रोक नहीं पाया।

(5) फ्रांस, स्पेन, हालैंड द्वारा उपनिवेशों को सहायता–इंग्लैंड से पुरानी शत्रुता का बदला लेने के लिए फ्रांस, स्पेन, हालैंड ने अमेरिकी उपनिवेशों को मूल्यवान भौतिक व सैनिक मदद की। स्वीडन, रूस व डेनमार्क ने तटस्थता के द्वारा उपनिवेशों की मदद की। इसीलिए फिशर ने लिखा है–

> ''अमेरिकी युद्ध अब एक घरेलू झगड़ा न रहकर एक अन्तर्राष्ट्रीय संघर्ष बन गया।''

(6) जार्ज तृतीय व नार्थ का उत्तरदायित्व–इंग्लैंड की पराजय का उत्तरदायित्व वस्तुतः इंग्लैंड के शासक जार्ज तृतीय व प्रधानमंत्री नार्थ का था। नार्थ शान्ति समझौता करना चाहता था एवं जार्ज तृतीय अपने व्यक्तिगत शासन के आधार पर उपनिवेशों

का आर्थिक शोषण करना चाहता था। अशान्ति के समय शोषण की नीति अपनाकर जार्ज ने उपनिवेशवासियों की सद्भावना खो दी।

इंग्लैंड के निवासियों का दृष्टिकोण भी अमेरिकी पक्ष में था। वर्क ने कहा था, ''मै अमेरिका के विरोध से सन्तुष्ट हूँ। अन्याय एवं अत्याचार के कारण अमेरिकी पागल हो उठे हैं। क्या अंग्रेज इस पागलपन के लिए उन्हें सजा देंगे जिसको बीजारोपण स्वयं उन्हीं ने किया है।''

(7) ब्रिटिश शक्ति का विभाजन–आयरलैंड में विद्रोह की आग फैली थी। फ्रांस व स्पेन के आक्रमण का भय था। भारत में मराठे व हैदरअली अंग्रेजों से युद्ध की तैयारी कर रहे थे। अतः ब्रिटेन अपनी संपूर्ण सैन्य शक्ति उपनिवेशों के विरूद्व न लगा सका।

(8) उपनिवेशवासियों की स्वतंत्रता की उत्कट इच्छा–उपनिवेशवासियों ने एकता, दृढता, उत्साह एवं स्वतंत्र होने की उत्कट इच्छा व पवित्र भावना के साथ लड़ा। उनमें जातीय समानता भी थी। पराजय में भी निराश न होकर वे पुनः युद्ध के लिए तैयार हो जाते थे।

(9) वाशिंगटन का कुशल नेतृत्व–वाशिंटन एक योग्य, साहसी सक्षम और दूरदर्शी सेनापति था। उसने अपने देशवासियों में स्वतंत्रता–प्राप्ति हेतु अदम्य उत्साह तथा बलिदान की भावना भर दी।

अपनी प्रगति जांचिए

3. सप्तवर्षीय युद्ध (1756–1763 ई.) के पश्चात अमेरिका में इंग्लैंड के उपनिवेशों की संख्या कितनी हो गई थी?

   (क) 10 (ख) 12

   (ग) 13 (घ) 15

4. अमेरिकी क्रांति के प्रभाव के फलस्वरूप अंग्रेजों ने भारत में कौन सा एक्ट लागू किया?

   (क) पिट्स इंडिया एक्ट 1784 (ख) चार्टर एक्ट 1853

   (ग) रेगुलेटिंग एक्ट 1773 (घ) इलबर्ट बिल 1883

1.4 सन् 1789 की फ्रांसीसी क्रांति के कारण

1789 की फ्रांसीसी क्रांति को रेम्जेम्योर ने 'World Revolution' कहकर पुकारा है क्योंकि इस क्रांति के द्वारा प्रेरित समानता, स्वतंत्रता और बंधुत्व के नारों ने न केवल फ्रांस बल्कि अन्य देशों के विचार एवं राजनीति को भी प्रभावित किया।

यह क्रांति कोई आकस्मिक घटना नहीं थी, उसके लिए क्रांति के पूर्व की फ्रांसीसी राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक एवं धार्मिक परिस्थितियाँ उत्तरदायी थीं।

(क) राजनीतिक कारण

(1) फ्रांस के बूर्बो वंशीय राजा पूर्ण निरंकुश राजतंत्र में विश्वास करते थे। वे राजा के दैवीय अधिकारों के समर्थक थे तथा स्वयं को एकमात्र ईश्वर के प्रति उत्तरदायी

मानते थे। लुई 14वें की मान्यता थी कि "I am the state and words are law" लुई 14वें के उत्तराधिकारी लुई 15वाँ और लुई 16वाँ भी इसी प्रकार की मान्यता रखते थे। लुई 16वाँ कहा करता था, ''यह कानून है क्योंकि मेरी ऐसी इच्छा है।'' इस नीति में विश्वास रखने के कारण ही वे किसी की सलाह नहीं लेते थे।

(2) फ्रांस में व्यक्तिगत स्वतंत्रता का अभाव था। भाषण, लेखन, संघ बनाने, धार्मिक क्रियाकलापों आदि को अपनी आस्था के अनुसार सम्पन्न करने की किसी को स्वतंत्रता नहीं थी।

(3) राजा तथा उसके कृपापात्र अपने विरोधियों को मुद्रित पत्रों (Latters de cachect) के माध्यम से किसी भी व्यक्ति को बिना मुकदमा चलाये बंदीगृह में डाल सकते थे। वाल्तेयर और मिराव्यू जैसे राजनीनिक विचारक इन्हीं पत्रों के माध्यम से बंदी बनाये गये थे।

(4) राजा की निरंकुशता पर अंकुश लगाने वाली दो संस्थाएँ थीं। जिनमें एक स्टेट्स जनरल (States General) एवं द्वितीय पार्लमेंट (Parliament) थी। इनमें से स्टेट्स जनरल अस्तित्वहीन थी और पार्लमां जिसका कार्य न्याय के अलावा राजा के आदेशों को पंजीबद्ध करना था, का नियंत्रण भी न के बराबर था।

(5) बूर्बो राजाओं की विलासिता एवं अयोग्यता के कारण राजतंत्र की स्थिति नाजुक थी। राजा वर्साय की शान–शौकत तथा अपनी प्रेमिकाओं व कृपापात्रों में रहने के आदी थे। लुई 15वाँ स्वयं कहता था, ''मेरे बाद प्रलय होगी।'' लुई 16वें को वसीयत में एक कुशासित, असंतुष्ट तथा निराशाग्रस्त शासन प्राप्त हुआ था, उसने अपनी अयोग्यता, विलासिता व दुर्बल चरित्र के कारण लड़खड़ाती भ्रष्ट राजनीतिक संस्था को और अधिक कमजोर किया। रानी मैरी आन्त्वानेत (Marine Antoninette) और दरबारी सामंतों ने लुई 16वें के राजनीतिक एवं प्रशासनिक निर्णयों को अनुचित रूप से प्रभावित किया।

(6) फ्रांस की प्रशासनिक व्यवस्था अत्यंत दोषपूर्ण थी। प्रांतों में संसद तथा गवर्नर थे परन्तु शासन के वास्तविक कार्य इनके हाथ में नहीं थे। इन्टेडेण्सीज (जिलों) के अध्यक्षों की शक्तियाँ असीमित थीं और प्रजा में ये लोकप्रिय नहीं थे। न्याय, चर्च और शिक्षा व नगर परिषदों की कार्यप्रणाली असंगत और अव्यवस्थित थी।

(7) राज्य में लालफीताशाही का बोलबाला था। नियुक्तियाँ योग्यता के आधार पर नहीं बल्कि भ्रष्टाचार के माध्यम से प्राप्त की जाती थीं।

(8) सम्पूर्ण फ्रांस में लगभग 400 प्रकार के कानून प्रचलित थे। वाल्तेयर ने लिखा है, ''कानून इतनी दूरी पर बदल जाते थे। जितनी दूरी पर गाड़ी के घोड़े बदल जाते थे।'' इनके अलावा कानूनों में निम्न कमियाँ थीं–

(अ) कानून जन भाषा में न होकर लैटिन भाषा में लिखे हुए थे।

(ब) कानून आवश्यकता से अधिक कठोर थे।

(स) कुलीन दण्डों से मुक्त थे।

(द) न्यायालय कई प्रकार के थे व उनके कार्य क्षेत्र भी अनिश्चित थे।

(य) Nobility of the Robe के पद खरीदे जाते थे।

(र) न्यायाधीश धन कमाने के लिए अधिक से अधिक जुर्माना करते थे।

(9) फ्रांस की सेना जो बूर्बो राजाओं की निरंकुशता का आधार थी, राजा से असंतुष्ट थी। संपूर्ण राजनीतिक स्थिति की दयनीयता का अंदाज लुई 16वें के द्वारा कहे गये इस एक वाक्य में समाहित है–

"It seems as if universe is falling on me. God ! what a burden is mine and they have taught me nothing." (ऐसा लगता है जैसे ब्रह्माण्ड मुझ पर गिर रहा है, हे ईश्वर! यह मुझ पर कैसा बोझ है और उन्होंने मुझे कुछ नहीं सिखाया)।

(ख) सामाजिक कारण

एम. फागे के अनुसार, ''1789 ई. की क्रांति निरंकुशता की अपेक्षा असमानता के विरुद्ध विद्रोह थी।''

1. फ्रांसीसी क्रांति के समय समाज पुरातन सामंत व्यवस्था पर आधारित था और वह दो वर्गों में विभाजित था। जिनमें एक विशेषाधिकार युक्त एवं द्वितीय विशेषाधिकारविहीन वर्ग था।
2. विशेषाधिकारयुक्त वर्ग में पादरी एवं सामंत आते थे। विशेषाधिकारयुक्त एवं विशेषाधिकारविहीन वर्ग में जीवन के प्रत्येक पहलू में असमानता व्याप्त थी।
3. विशेषाधिकारयुक्त वर्ग में पादरियों का स्थान बहुत महत्वपूर्ण था। इसे प्रथम एस्टेट (Estate) कहते थे। इनके कुछ विशेषाधिकार इस प्रकार थे–
   (अ) चर्च को किसानों से अनेक सामंतीय कर एवं उपज का 1/10 टाइथ कर (धार्मिक कर) के रूप में प्राप्त होता था।
   (ब) फ्रांस की समस्त भूमि का 5वाँ भाग इनके पास था।
   (स) चर्च को राजनीतिक, वित्तीय, न्यायिक तथा शैक्षणिक विषयों में व्यापक अधिकार प्राप्त थे। चर्च की स्थिति फ्रांस में राज्य के अन्दर राज्य (State under the State) जैसी थी।
   (द) चर्च के बड़े पादरी अपने को ईश्वर का प्रतिनिधि बताते थे और समस्त महत्वपूर्ण पद उनके हाथ में थे।
   (य) पादरी करों से मुक्त थे और बिना कार्य के इनकी आय बहुत अधिक थी।
   (र) बड़े पादरी जीवन, सम्पत्ति और सत्ता का उपयोग करते हुए अनैतिक और विलासितापूर्ण जीवन व्यतीत करते थे।
   (ल) पादरी अपने धार्मिक कर्तव्यों का पालन नहीं करते थे अतः समाज में वे प्रबल विरोध का पात्र बन गये थे।
4. विशेषाधिकारयुक्त वर्ग में सामंतों या कुलीनों को IInd स्टेट कहा जाता था।
   (अ) सेना व शासन के समस्त उच्च पद सामंतों के अधिकार में थे।
   (ब) फ्रांस की कुल भूमि का चौथा भाग सामंतीय अधिकार में था।

(स) सामंतों को भूमिकर (टेली) देना पड़ता था परन्तु वे इसे कभी नहीं चुकाते थे।

(द) किसानों से उपज तथा अन्य करों के रूप में सामंत उनकी आय का 80 प्रतिशत वसूल करते थे।

(य) सामंतों को अनेक विशेषाधिकार प्राप्त थे जैसे– (बेनालिटीज) शराब की भट्टी, आटा चक्की तथा तंदूर का विशेषाधिकार, ड्रोइटस डि कोल्वियर स्टडी चेस (कपोत पालने व शिकार खेलने), पीजेज (सड़क, नाव, पुल) इत्यादि का विशेषाधिकार।

(र) सामंतों को आयात पर चुंगी वसूल करने, विशेष फसलों पर कर लगाने आदि के भी विशेषाधिकार थे।

(ल) सामंत विलासिता एवं षड्यंत्र में व्यस्त रहते थे और आय–व्यय के बारे में बात करना भी अपनी प्रतिष्ठा के प्रतिकूल समझते थे।

5. विशेषाधिकारविहीन वर्ग थर्ड स्टेट कहलाता था। इसमें कृषक, भूमिहीन श्रमिक, अर्धदास, शिल्पी तथा मध्यम वर्ग के लोग आते थे।

(अ) तृतीय वर्ग में किसान सर्वाधिक थे। कुल भूमि का 1/3 इनके पास था, किन्तु राज्य के सभी करों का भार इन पर था।

(ब) टेली, टाइथ, गावेल (नमक कर) आदि करों को देने के बाद उनके पास जीवन निर्वाह हेतु मुश्किल से ही कुछ बच पाता था।

(स) किसानों को बेगार भी करनी पड़ती थी और उनकी स्थिति अर्धदासों जैसी थी।

(द) किसानों को उत्तराधिकार में जमीन प्राप्त करते समय, विवाह, मृत्यु आदि अवसरों पर भेंट देनी पड़ती थी।

(य) सामंतों के विशेषाधिकारों के कारण किसान शोषित थे। किसानों की स्थिति का आंकलन करते हुए एक इतिहासकार ने सत्य ही लिखा है–

''फ्रांस में जनता का 9/10 भाग भूख से मरता था और 1/10 वाँ भाग अजीर्ण से मरता था।''

6. फ्रांस में शिल्पियों की दशा काफी दयनीय थी। वे कारखाना मालिकों की कृपा पर आश्रित थे।

7. IIIrd State में मध्यम वर्ग का उदय फ्रांसीसी क्रांति का सर्वप्रधान कारण बना। इसे बुर्जुआ वर्ग भी कहा जाता था, योग्यता व धन होने के बावजूद इनके पास सम्मान एवं उच्च पद नहीं थे। यह वर्ग धार्मिक, असहिष्णुता, न्याय का दुरुपयोग, मुद्रित पत्रों का मनमाना उपयोग, व्यापार एवं वाणिज्य के प्रतिबंधों तथा राज्य, राजा, चर्च एवं सामंतों के द्वारा फैलायी गयी सामाजिक असमानता का विरोधी था। इस वर्ग ने जो काहिला (स्मृति पत्र) तैयार किये, उनमें उन्होंने सामाजिक असमानता को दूर करने की माँग रखी।

मेरियट ने सत्य ही लिखा है कि ''जब क्रांति आरंभ हुई, वह राजा की निरंकुशता के विरुद्ध नहीं वरन् विशेषाधिकार वर्गों के विरुद्ध हुई थी।''

गुणबिन के अनुसार, ''फ्रांस की राज्य क्रांति के कारण किसानों की दयनीय दशा अथवा मध्यम वर्ग के राजनीतिक असंतोष में नहीं वरन् फ्रांस के प्रतिक्रियावादी एवं विशेषाधिकारों से संपन्न सामंत वर्ग की महत्वाकांक्षाओं में निहित थे।''

नेपोलियन ने भी एक बार कहा था, "The French Revolution was a general mass movement of the nation against the previleged classes.

(ग) आर्थिक कारण

फ्रांस की क्रांति के पूर्व राज्य की आर्थिक दशा बूर्बो राजाओं की अदूरदर्शिता के कारण उत्तरोत्तर पतनशील होती चली गयी। इसके निम्नलिखित कारण थे–

(1) लुई 14वें को दीर्घकालीन खर्चीले युद्ध लड़ने पड़े। इससे राजकोष रिक्त हो गया। इसके अतिरिक्त उसने करोड़ों रूपया अपनी विलासिता के साधन जुटाने, जैसे– वर्साय का राजमहल आदि बनवाने में खर्च किया। लुई 15वें और लुई 16वें के समय में भी विभिन्न युद्धों में फ्रांस को भाग लेना पड़ा। इससे आर्थिक स्थिति और अधिक खराब हुई।

(2) 1789 ई. की फ्रांसीसी क्रांति के समय फ्रांस की वित्तीय नीति योजना रहित थी अतः फ्रांस पर 60 करोड़ डालर का ऋण चढ़ गया था और राजकोष को प्रतिवर्ष करोड़ डालर का घाटा हो रहा था। राष्ट्रीय आय का आधा भाग ब्याज चुकाने में चला जाता था परन्तु राजा–रानी तथा दरबारियों ने अपने व्यय में कोई कमी नहीं की। अत्यधिक अपव्यय के परिणामस्वरूप दरबार को राष्ट्र की समाधि कहा जाने लगा था।

(3) फ्रांस की कर व्यवस्था पक्षपातपूर्ण थी। सामंत एवं चर्च के पदाधिकारी करों से मुक्त थे अतएव सारा बोझ तृतीय वर्ग के लोगों पर पड़ता था। हेजन के अनुसार, ''जो राज्य की सर्वाधिक सहायता कर सकते थे, वे ही सबसे कम देते थे।'' किसानों को अनेक प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष कर देने पड़ते थे। इसमें उनकी आमदनी का 80 प्रतिशत खर्च हो जाता था। यह कहावत प्रचलित थी कि ''सामंत युद्ध करते हैं, पादरी पूजा करते हैं एवं जनता कर देती है।''

(4) फ्रांस की कर व्यवस्था असह्य और अन्यायपूर्ण थी। नमक कर से तो प्रत्येक व्यक्ति को भारी घृणा थी।

(5) फ्रांस की कर संग्रह करने की व्यवस्था दोषपूर्ण थी। कर वसूली का कार्य ठेकेदारों द्वारा किया जाता था। जो नीलामी के समय निश्चित धनराशि सरकार को जमा कर देते थे और प्रजा से जितना धन संभव हो सकता था, वसूल करते थे। ऐसी व्यवस्था से लोगों में घृणा व विद्वेष का फैलना स्वाभाविक था।

(6) फ्रांस की वित्तीय नीति का एक बड़ा दोष बजट का अभाव था। व्यय, आय के अनुकूल नहीं था। हेजन लिखते हैं, ''राजकीय वित्तीय नीति सामान्यतया इस सिद्धांत पर चलती है कि व्यय आमदनी के हिसाब से किया जाय परन्तु फ्रांस की नीति उलटी थी।'' इस कारण ऋण निरंतर बढ़ता गया और घाटे की पूर्ति हेतु सरकार को एक ही उपाय दिखायी दिया– पदों को बेचना एवं कर्ज लेना। फलतः एक ऐसी स्थिति आयी कि सरकार घोर वित्तीय संकट में फँस गयी और दिवाला निकलने की नौबत आ गयी।

(7) लुई 16वें ने, 1774 से 1781 के मध्य, देश की आर्थिक परिस्थिति को सुधारने के लिए सम्पन्न वर्ग पर कर लगाने एवं मितव्ययिता की नीति अपनाने के लिए क्रमशः तूर्गो, नेकर तथा कैलन को अर्थमंत्री नियुक्त किया परंतु दरबारियों के प्रभाव के कारण यह प्रयास असफल हुए। कुलीन वर्ग (Assembly of Nobels) भी आर्थिक समस्या के हल को निकालने में असफल हुए। ऐसी स्थिति में राजा को स्टेट्स जनरल का अधिवेशन बुलाने की घोषणा करनी पड़ी।

इस प्रकार कर व्यवस्था में असमानता, विशेषाधिकार, स्वेच्छाचारिता, अन्यायपूर्ण नियम और अनिश्चितता की भावना होने के कारण लोगों में सरकार के प्रति रोष फैल गया।

एस्टेट्स जनरल का बुलाया जाना– फ्रांस में व्याप्त आर्थिक संकट को दूर करने के लिए लुई 16वें ने 1787 ई. में कुलीन वर्ग की सभा बुलाई परन्तु कुलीन वर्ग ने राजा को विशेषाधिकार प्राप्त वर्ग पर, कर लगाने की अनुमति नहीं दी। पेरिस की संसद ने भी कर्ज लेने और नये कर लगाने की अनुमति नहीं दी, साथ ही यह भी उद्घोषणा की, कि एस्टेट्स जनरल की अनुमति के बिना कोई नया कर नहीं लगाया जा सकता। राजा ने क्रुद्ध होकर पेरिस की पार्लमां को भंग करने का प्रयास किया मगर जन विरोध के कारण वह ऐसा न कर सका। अब समस्त फ्रांस में एस्टेट्स जनरल को बुलाने की मांग जोर पकड़ने लगी। अंततः आर्थिक विपत्तियों से घिरे लाचार हुए लुई 16वें को झुकना पड़ा और उसने 175 वर्षों के बाद एक बार पुनः एस्टेट्स जनरल को बुलाने का आदेश जारी कर दिया। इस स्थिति पर पेरिस पार्लमां के एक कुलीन सदस्य ने कहा था, ''श्रीमान, यह बच्चों का खेल नहीं, पहली बार फ्रांस जब एस्टेट जनरल को देखेगा तो वह एक भयंकर क्रांति भी देखेगा।'' और उसकी बात अक्षरशः सत्य साबित हुई। 1789 में ई. में बुलाई गयी स्टेट्स जनरल से ही फ्रांसीसी क्रांति का श्रीगणेश हुआ।

(घ) लुई सोलहवाँ एवं मैरी आंत्वानेत

फ्रांसीसी क्रांति के लिए लुई सोलहवाँ (1774–1793 ई.) का दुर्बल चरित्र एवं उसकी पत्नी रानी मैरी आंत्वानेत (Marine Antoinette) की राजनीतिक महत्वाकांक्षा भी काफी हद तक जिम्मेदार थी। डॉ. बी. के. पंजाबी के अनुसार, ''असंतोष एवं अव्यवस्था के घुमड़े हुए तूफान से लुई 15वें को तो कुछ नहीं हुआ, किन्तु उसका अभागा उत्तराधिकारी लुई 16वाँ इस तूफान का शिकार हो गया। लुई सोलहवें में सभी व्यक्तिगत अच्छाइयां मौजूद थीं, परन्तु बूर्बो वंश के खोये हुए भाग्य को लौटाने के लिए जिस दूरदर्शिता, दृढ़ निश्चय, शक्ति सम्पन्नता और प्रतिभा की आवश्यकता थी, वह उसमें नहीं थी।''

यूरोप की प्रसिद्ध राजधानी वियना के वैभव एवं विलासितापूर्ण वातावरण में पली–बढ़ी ऑस्ट्रिया की राजकुमारी मैरी आंत्वानेत, जोसेफ द्वितीय की बहन एवं ऑस्ट्रिया की महान साम्राज्ञी मेरिया थेरेसा की पुत्री थी। आंत्वानेत अत्यंत सुंदर थी एवं लुई 16वें के विपरीत उसमें दृढ़ इच्छा शक्ति के साथ–साथ शीघ्र निर्णय लेने की क्षमता भी थी। यही विशेषता उसकी राजनीतिक महत्वाकांक्षा के रूप में अभिव्यक्त हुई। लुई 16वें पर उसका अत्यधिक प्रभाव था। मिराबो के अनुसार, ''राजा के आस–पास केवल एक ही व्यक्ति है वह है, उसकी पत्नी।''

मैरी आंत्वानेत में राजनीतिक महत्वाकांक्षा तो थी परन्तु उसमें व्यावहारिक बुद्धि एवं राजनीतिक अनुभव का सर्वथा अभाव था। समाज के प्रति उसका दृष्टिकोण अत्यंत संकुचित था। फ्रांस और ऑस्ट्रिया की परम्परागत शत्रुता के कारण, मैरी आंत्वानेत फ्रांस के लोगों में कभी लोकप्रिय न हो सकी। लुई सोलहवाँ भले ही उसकी सुन्दरता पर आसक्त हो, उसके इशारों पर चलता था, परन्तु वह लुई के भारी तथा आलसी शरीर से घृणा करती थी। 1770 ई. में विवाह होने के कई वर्षों तक उसके यहां कोई सन्तान नहीं हुई। मैरी आंत्वानेत के वैवाहिक जीवन की नीरसता ही उसकी राजनीतिक महत्वाकांक्षा के रूप में प्रस्फुटित हुई। वह कुलीनों एवं कृपापात्रों से घिरी रहती थी व उन्हें बहुमूल्य उपहार भी दिया करती थी। उसकी फिजूलखर्ची के कारण लोग उसे 'Madame Deficit' के घृणित नाम से पुकारते थे। डॉ. बालकृष्ण पंजाबी ने उसके बारे में लिखा है कि ''वह बड़ी घंमडी, अपव्ययी, आडम्बरप्रिय तथा एशोआराम की शौकीन थी। उसकी मित्रता और लगाव ऐसे लोगों के प्रति बढ़ा जो उसकी अभिरुचियों की पूर्ति में सहायक होते थे। धीरे–धीरे वह इन्हीं मित्रों के हाथ का खिलौना तथा दरबारी षड्यन्त्रों का केन्द्र बिन्दु बन गयी। ऐसी स्थिति में लुई 16वें पर उसका अत्यधिक प्रभाव विनाशकारी सिद्ध हुआ।''

लुई 16वाँ में इच्छा शक्ति एवं आत्मविश्वास की अत्यधिक कमी थी। उसकी चारित्रिक निर्बलता को फ्रांसीसी क्रांति का कारण बताते हुए डॉ. पंजाबी ने लिखा है कि ''अधिकांश कार्य वह अपनी आन्तरिक शक्ति से प्रेरित होकर नहीं बल्कि अपनी पत्नी के आँसुओं से, अपने मन्त्रियों और दरबारियों से विवश होकर करता था। लोगों को विदित था, कि उसे विवश किया जा सकता है। यह क्रांति का एक मुख्य कारण था।'' दूसरी ओर फ्रांसीसी समाज रानी आंत्वानेत को बिल्कुल पसन्द नहीं करता था एवं राजा का उस पर अत्यंत निर्भर रहना, फ्रांसीसी समाज इसके खिलाफ था। फिशर ने रानी को क्रांति का उत्तरदायी मानते हुए लिखा है, ''आलोचकों को वह ऐसे सायरन के समान प्रतीत होती थी, जोकि राज्य रूपी जहाज को चट्टानों की ओर ले जा रहा हो।'' अतः निष्कर्षतः हम कह सकते हैं कि फ्रांस की क्रांति के लिए लुई 16वाँ एवं मैरी आंत्वानेत भी बहुत सीमा तक उत्तरदायी थे।

1.4.1 फ्रांसीसी क्रांति का घटनाक्रम

फ्रांसीसी क्रांति के लिए उपर्युक्त सभी कारण पूर्णतः जिम्मेदार थे, परन्तु क्रांति का आरम्भ 1789 ई. में एस्टेट्स जनरल का अधिवेशन बुलाने के साथ ही हुआ। 5 मई, 1789 ई. को एस्टेट्स जनरल के अधिवेशन का शुभारम्भ हुआ। मिराबो जैसे योग्य व्यक्ति के नेतृत्व में जन साधारण के प्रतिनिधियों ने तीनों वर्गों की सम्मिलित बैठक एवं प्रति सदस्य मतदान के अधिकार की माँग की। जब पादरियों व कुलीन वर्ग ने इसका विरोध किया तो टेनिस कोर्ट की शपथ रूपी एक ऐतिहासिक घटना घटित हुई जिसने क्रांति का आरम्भ कर दिया।

टेनिस कोर्ट की शपथ (Oath of Tennis Court)

फ्रांस की आर्थिक व्यवस्था में सुधार के, जो प्रयास लुई 16वें ने अपने अर्थशास्त्रियों के माध्यम से करने के प्रयास किये। जब वे सफल नहीं हुए तो उसे स्टेट्स जनरल का अधिवेशन बुलाने हेतु बाध्य होना पड़ा।

टिप्पणी

स्टेट्स जनरल फ्रांस की प्राचीन सामंत युगीन संसद थी। उसके तीन वर्ग या सदन थे– पादरी, सामंत तथा जनसाधारण। स्टेट्स जनरल का प्रथम अधिवेशन जब आरम्भ हुआ, तब उसके समक्ष दो महत्वपूर्ण प्रश्न थे–

(i) तीनों वर्गों के प्रतिनिधि परम्परानुसार पृथक्–पृथक् विचार करेंगे या सम्मिलित रूप से।

(ii) मतदान वर्ग क्रम के आधार पर हो या व्यक्ति क्रम के आधार पर।

कुलीन तथा पादरी तृतीय वर्ग की इस बात से सहमत नहीं थे कि विचार सम्मिलित बैठकों में हो और मतदान व्यक्ति क्रम में हो। अतएव गतिरोध उत्पन्न हो गया। 17 जून, 1789 ई. को तृतीय वर्ग ने स्वयं को नेशनल असेंबली घोषित किया। यह स्पष्टतः एक क्रांतिकारी कार्य था अतः राजा ने रुष्ट होकर 20 जून, 1789 ई. को सभी के भवनों को बन्द करवा दिया। इन परिस्थितियों में तृतीय वर्ग के लोगों को यह शंका होने लगी कि राजा सभा नहीं होने देना चाहता एवं लोगों को अपने प्रयत्नों के असामयिक अन्त की शंका होने लगी। निराशा की स्थिति से उबरने हेतु वे पास की सड़क पर स्थित, पड़ोस की एक इमारत में घुस गये, जोकि एक टेनिस कोर्ट था। यह विशाल टेनिसगृह अभी पूरा नहीं बन पाया था। यहीं सदस्यों ने एक स्मरणीय बैठक की।

सदस्यों ने बेली को अपना सभापति बनाया और उसे एक मेज पर बैठाकर उसके चारों ओर एकत्रित हो गये। वहाँ जितने भी प्रतिनिधि थे, उनमें से एक को छोड़कर सभी ने शपथ ग्रहण की कि ''जब तक राज्य का संविधान स्थापित न हो जायेगा, तब तक हम कभी भी अलग न होंगे और जहाँ भी आवश्यकता होगी, हम एकत्रित होंगे।''

टेनिस कोर्ट की शपथ इस अर्थ में महत्वपूर्ण थी, कि राजा को तृतीय वर्ग के समक्ष शीघ्र ही झुकना पड़ा और पहले उन्हें सम्मिलित अधिवेशन में बैठने की स्वीकृति दी तथा बाद में उनकी अन्य मांगें स्वीकार की।

बास्तील का पतन

लुई 16वें के द्वारा स्टेट्स जनरल के अधिवेशन को आमंत्रित करना फ्रांसीसी इतिहास की एक महत्वपूर्ण घटना थी। इससे अधिक महत्वपूर्ण घटना तब घटी जब 17 जून, 1789 को तृतीय वर्ग ने स्वयं को नेशनल असेंबली घोषित किया और इस प्रकार प्राचीन व्यवस्था के विरुद्ध एक क्रांतिकारी कदम उठाया गया। अधिवेशन सम्मिलित रूप से हो तथा मतदान व्यक्ति क्रम से हो। यह महत्वपूर्ण मांगें नेशनल असेंबली ने राजा के समक्ष रखी जिसका राजा ने, प्रथम तथा द्वितीय वर्ग ने विरोध किया और यहाँ तक कि उनके सभी भवनों को बन्द करवा दिया अतएव तृतीय वर्ग के प्रतिनिधियों ने 20 जून, 1789 को टेनिस कोर्ट की शपथ ली। जिसमें संविधान स्थापित होने तक एकत्रित रहने का संकल्प व्यक्त किया गया।

विवश होकर 27 जून, 1789 को राजा ने सम्मिलित अधिवेशन की स्वीकृति प्रदान की।

तृतीय वर्ग को महत्व प्राप्त होते देख कुलीन एवं पादरी वर्ग की चिन्ताएँ बढ़ गयीं और उन्होंने रानी मैरी आंत्वानेत के साथ मिलकर नेशनल असेंबली के दमन हेतु लुई 16वें पर दबाव डाला। फलस्वरूप राजा ने सुधारवादी मन्त्री 'नेकर' और उसके साथियों को पदच्युत कर दिया और रानी के कृपापात्र बारो द ब्रेतोल को नियुक्त किया।

राजा के इन कार्यों से पेरिस की जनता भी भड़क उठी। पेरिस में इस समय क्रांतिकारियों के अतिरिक्त ऐसे कई तत्व मौजूद थे। जो राजा के विरुद्ध असन्तोष को भड़का रहे थे। 12 जुलाई, 1789 ई. को क्रांतिकारी नेता कामल द मूले ने पेरिस की जनता को राजा से अपनी रक्षा हेतु सशस्त्र तैयार रहने का आव्हन किया। उसके भाषण के प्रभाव में जनता ने शस्त्र एकत्रित करना आरम्भ किया। फ्रेन्च गार्ड के असन्तुष्ट सैनिक भी इनमें सम्मिलित हो गये।

14 जुलाई, 1789 ई. को 10,000 से अधिक की भीड़ ने बास्तील के दुर्ग पर धावा बोल दिया, यह दुर्ग बर्को राजाओं के अत्याचारों का घृणित प्रतीक था। यह सुदृढ़ किला राजकीय कारागार के रूप में उपयोग किया जाता था। किले के दुर्गपति ने जनता का प्रतिरोध करने का प्रयास किया परन्तु घमासान युद्ध और रक्तपात के बाद किले पर भीड़ का अधिकार हो गया, उन्होंने उत्तेजित उत्साह में बन्दियों को मुक्त किया, किले के रक्षकों का वध किया और दुर्ग को लूट लिया।

बास्तील के पतन का महत्व

बर्बरतापूर्ण कार्यों के बावजूद बास्तील के पतन को फ्रांस में तथा बाहर सर्वत्र स्वतंत्रता की एक महान विजय समझा गया। गुडविन के अनुसार, ''सारे क्रांति काल में बास्तील के पतन जैसी बहुमुखी और बहुत गहरे परिणामों वाली अन्य कोई महत्वपूर्ण घटना घटित नहीं हुई।'' बास्तील के पतन का महत्व इस प्रकार है–

(i) इस घटना के बाद प्रतिक्रियावादी तत्व यह समझ गये कि बल प्रयोग द्वारा क्रांति का दमन सम्भव नहीं है अतः उन्होंने पेरिस तथा वर्साय से विदेशी सेना को हटा लिया।

(ii) पेरिस में नये ढंग की शासन व्यवस्था (कम्यून तथा नेशनल गार्ड) की स्थापना हुई।

(iii) प्रान्तों में कृषकों ने व्यावहारिक तौर पर सामंती प्रथा का अन्त किया।

इस प्रकार बास्तील के पतन के प्रभाव से सम्पूर्ण फ्रांस में क्रांतिकारी परिवर्तनों का सिलसिला आरम्भ हुआ। इसी के परिणामस्वरूप नेशनल असेंबली ने मानव अधिकारों की घोषणा व सामंतों के विशेषाधिकारों की समाप्ति जैसे क्रांतिकारी निर्णय लिये।

1.4.2 फ्रांस की क्रांति के प्रभाव

1789 की फ्रांसीसी क्रांति विश्व इतिहास की एक असाधारण एवं महान घटना थी। इस महान क्रांति ने फ्रांस ही नहीं वरन् यूरोप तथा विश्व के अधिकांश देशों को किसी न किसी रूप में प्रभावित किया।

स्थायी प्रभाव

(अ) समानता–फ्रांस की क्रांति निरंकुशता की अपेक्षा असमानता के विरुद्ध विद्रोह थी। इस क्रांति ने सामंतों और चर्चों के विशेषाधिकारों पर चोट की तथा सामाजिक समानता की स्थापना में प्रगति की।

(ब) स्वतंत्रता–फ्रांस की क्रांति ने निरंकुशवाद को समाप्त किया। मानवाधिकार की घोषणा द्वारा प्रत्येक व्यक्ति को अभिव्यक्ति व लेखन की स्वतंत्रता प्राप्त हुई।

सभी की धार्मिक स्वतंत्रता प्राप्त हुई। हेजन के अनुसार, इस घोषणा का प्रभाव समस्त संसार पर पड़ा। इस क्रांति से प्रेरणा लेकर अनेक देशों के निरंकुश शासकों की जड़ें हिल गयी और वहां राजनीतिक और धार्मिक स्वतंत्रता की स्थापना हुई।

(स) प्रभुसत्ता का स्रोत जनता में–इस क्रांति ने इस तथ्य पर बल दिया कि, कानून सामान्यजन इच्छा की अभिव्यक्ति है और शासन जनता के लिए ही नहीं, वरन् जनता द्वारा होना चाहिए। इसका परिणाम यह हुआ कि लोकतान्त्रिक शासन एक कल्पना न रहकर राजनीतिक कार्यक्रम बन गया।

(द) राष्ट्रीयता की भावना–फ्रांस की क्रांति के परिणामस्वरूप राजभक्ति का स्थान राष्ट्र भक्ति ने ले लिया और यूरोपीय देशों में राष्ट्रीयता की भावना का विकास हुआ। 19वीं और 20वीं शाताब्दी में राज्यों के एकीकरण और स्वाधीनता आन्दोलनों को फ्रांस की क्रांति ने प्रभावित किया।

(य) कृषक दासता का अन्त–फ्रांस की क्रांति ने कृषक दासता का अन्त करने की ओर प्रगति की एवं कृषकों की दासता का अन्त कर उन्हें स्वतंत्र जीवन प्रदान किया।

(र) समाजवादी विचारधारा का उदय–फ्रांस की क्रांति के सिद्धान्त का प्रभाव 19वीं शताब्दी के मजदूर आन्दोलनों पर पड़ा। कार्ल मार्क्स के समाजवादी विचारों को जागरूक करने में इसका भारी योगदान रहा।

हेजन के अनुसार–फ्रांस की क्रांति ने राज्य के संबंध में एक नयी धारण को जन्म दिया। राजनीति तथा समाज के विषय में नये सिद्धान्त प्रतिपादित किये। जीवन का नया दृष्टिकोण सामने रखा और नयी आशा तथा विश्वास पैदा किये।

क्रांति का फ्रांस पर प्रभाव

फ्रांस की क्रांति के निम्नलिखित परिणाम हुए–

1. फ्रांस की क्रांति ने निरंकुश बूर्बो राजतंत्र की जड़ों को हिलाकर रख दिया। इससे राजा के दैवीय अधिकारों के सिद्धान्तों को ही आघात नहीं पहुँचा वरन् राजा को भी अपने प्राणों से हाथ धोना पड़ा।
2. फ्रांस की क्रांति ने फ्रांस की जीर्ण शीर्ण प्राचीन सामंतशाही व्यवस्था को नष्ट कर दिया और प्राचीन संस्थाओं का भी अन्त हुआ।
3. फ्रांस की क्रांति ने सामाजिक असमानता को समाप्त किया।
4. चर्च की क्रांति का राष्ट्रीयकरण हुआ और चर्च पर राज्य का प्रभुत्व स्थापित हुआ।
5. स्वतंत्रता, समानता और बन्धुत्व के सार्वभौमिक एवं सर्वहितकारी आधारभूत सिद्धान्तों को व्यावहारिक धरातल पर प्रतिष्ठा प्राप्त हुई।
6. मानव अधिकारों की घोषणा ने इस तथ्य पर बल दिया कि सर्वाधिकार सम्प्रभुता जनता में निहित है और कानून सामान्य इच्छा की अभिव्यक्ति है। इस घोषणा ने व्यक्ति की निजी स्वतंत्रता के विचार को अमलीजामा पहनाया।
7. क्रांति के साथ ही जनतंत्र का आगमन हुआ और लोकप्रिय तथा उत्तरदायी शासन के युग का आरम्भ हुआ।
8. इस क्रांति के परिणामस्वरूप राष्ट्रीय शासन का उदय हुआ।

9. फ्रांस की क्रांति के कारण सभी को धार्मिक स्वतंत्रता प्राप्त हुई। धार्मिक सहिष्णुता की भावना का उदय हुआ।
10. क्रांति के परिणामस्वरूप फ्रांस की आर्थिक स्थिति में सुधार हुआ। कृषि, उद्योग–धन्धों तथा व्यापार को प्रोत्साहन मिला।
11. फ्रांसीसी क्रांति ने ही फ्रांस में राष्ट्रीय शिक्षा पद्धति की नींव डाली।
12. क्रांतिकाल में फ्रांस के लिए अनेक संविधानों का निर्माण हुआ।

इस प्रकार फ्रांस की क्रांति ने क्रापटकीन के मत में ''फ्रांस को मजबूत एवं समृद्धशाली बना दिया।''

निष्कर्ष–फ्रांस की 1789 ई. की क्रांति न केवल फ्रांस एवं यूरोप, अपितु समस्त विश्व की एक महानतम घटना थी। इस क्रांति के प्रभाव अत्यंत सकारात्मक एवं दूरगामी सिद्ध हुए। जिन्होंने विश्व के आगामी इतिहास को दूर तक प्रभावित किया। इस क्रांति ने स्वतंत्रता समानता एवं बन्धुत्व का एक ऐसा मंत्र दिया जिसने विश्व के समस्त देशों की जनता में एक नवीन जागृति का संचार किया। शिक्षा को धर्म एवं चर्च के चंगुल से मुक्त कर धर्म निरपेक्ष बनाया। इस प्रकार बौद्धिक क्षेत्र में इस क्रांति ने आधुनिक संसार का मार्ग प्रशस्त किया।

प्रो. बालकृष्ण पंजाबी ने नेपोलियन के उत्थान को भी क्रांति का प्रभाव बताते हुए लिखा है कि ''क्रांति के सिद्धान्त कुछ समय तक योग्यताहीन, भ्रष्ट तथा स्वार्थी हाथों में पड़कर विकृत हो गये थे। इस प्रकार सैकड़ों छोटी–बड़ी घटनाओं के पश्चात् एक अवतार पुरूष नेपोलियन का उत्थान, दुखान्त नाटकों के अन्त में मंच पर आने वाले किसी देवता के आगमन के समान था। नेपोलियन क्रांतिजनित वास्तविकताओं की उपज था, फ्रांस की जनता को उसने वह सब कुछ दिया, जो उसने 1789, 1794 एवं 1799 ई. में चाहा था। नेपोलियन ने फ्रांस का नवनिर्माण किया।''

1.5 नेशनल असेंबली एवं डायरेक्टरी

इनका अध्ययन निम्न प्रकार से किया जा सकता है–

नेशनल असेंबली

एस्टेट जनरल (Estate General) ने, जिसकी बैठक 5 मई, 1789 में आरम्भ हुई थी, ने 17 जून को नेशनल असेंबली का नाम धारण कर लिया था। वह नेशनल असेंबली के नाम से भी प्रसिद्ध है क्योंकि उसका मुख्य कार्य संविधान का निर्माण था। नेशनल असेंबली का कार्यकाल 30 सितम्बर, 1791 तक रहा। इस अल्प कार्यकाल में नेशनल असेंबली ने निम्नलिखित महत्वपूर्ण कार्य किये–

(1) मानवाधिकारों की घोषणा–नेशनल असेंबली का एक महत्वपूर्ण कार्य रूसो के सिद्धान्तों के आधार पर मानवाधिकारों की घोषणा था। फ्रांस के इतिहास में इसका वही महत्व है, जो इंग्लैंड के इतिहास में मैग्नाकार्ता एवं बिल ऑफ राइट्स का अथवा अमेरिका के इतिहास में मानवाधिकार की घोषणा का है। इसको अमेरिकी क्रांति एवं अब फ्रांसीसी क्रांति के एक वीर सेनानायक लफायते ने तैयार किया था। इस घोषणा में अग्रलिखित प्रमुख बातें थीं–

(i) भाषण लेखन एवं प्रकाशन की स्वतंत्रता प्रदान की गयी।

(ii) कानून की दृष्टि में सभी को समान माना गया।

(iii) कानून को सामान्य इच्छा की अभिव्यक्ति कहा गया।

(iv) धार्मिक स्वतंत्रता प्रदान की गयी।

(v) न्याय की दृष्टि से समानता घोषित की गयी।

(vi) राजकीय पदों का आधार योग्यता बनाया गया।

(vii) राज सत्ता, राज्य एवं संसद में न मानकर, राष्ट्र में मानी गयी।

(viii) राजकीय कर्मचारियों का उद्देश्य समाज सेवा घोषित किया गया।

(ix) किसी व्यक्ति की सम्पत्ति का अधिग्रहण बिना मुआवजा दिये नहीं हो सकता।

इस घोषणा में 17 अनुच्छेद थे और इस घोषणा ने आधुनिक शासन सिद्धान्तों का निरूपण किया था। हेजन के अनुसार, ''जहाँ कहीं भी मनुष्य मानवाधिकार की चर्चा करता है, उसके मन में फ्रांस का यह घोषणा पत्र होता है।'' साथ ही हेजन ने कहा है, ''वह अधिकारों की एक घोषणा थी, अधिकारों की गारण्टी नहीं।'' लार्ड एक्टन के अनुसार, ''यह छोटा–सा कागज नेपोलियन की समस्त सेना से अधिक प्रभावशाली साबित हुआ।''

(2) सामंतीय विशेषाधिकारों की समाप्ति–बास्तील के पतन के पश्चात् बदलती परिस्थितियों में सामंत यह समझ गये थे कि उनके विशेषाधिकार चिरकाल तक नहीं रह पाएंगे, अतः 4 अगस्त, 1789 को सामंतों ने नेशनल असेंबली की एक विशेष बैठक में स्वेच्छा से अपने विशेषाधिकारों को त्यागने की घोषणा की। उन्होंने निम्नांकित निर्णय लिये–

(i) सभी व्यक्तियों पर समान रूप से करारोपण होगा।

(ii) किसानों को दास प्रथा से मुक्त किया जायेगा।

(iii) राजकीय पदों की खरीदफरोख्त बन्द होगी।

(iv) चर्च को टाइथ कर वसूली का अधिकार नहीं होगा।

(v) सामंतीय न्यायालय समाप्त होंगे।

इस प्रकार 'एक रात की सामाजिक क्रांति' ने राज्य का आधार 'समानता का सिद्धान्त' बना दिया। शताब्दियों पुरानी उत्पीड़नकारी एवं अन्यायपूर्ण व्यवस्थाएँ तथा शिकायतें रात्रि के अन्धेरे में विलीन हो गयीं। वस्तुतः यह एक कार्यक्रम मात्र था, परन्तु इसका क्रियान्वयन उतना ही कठोर था इससे फ्रांस की जनता को पुनः प्रतिक्रिया का डर था।

आलोचकों का कथन है कि विशेषाधिकार प्राप्त वर्ग ने अपने सामंती अधिकारों को उदारता या बलिदान की भावना से नहीं त्यागा था, बल्कि क्रांतिकारी सदस्यों (विस्टकाउण्ट आ नुआई) की उत्तेजनात्मक एवं योजनाबद्ध अगुआयी ने इसे सम्पन्न कराया। फिर भी व्यवहारिक तौर पर नहीं तो कानूनी तौर पर ही इस पुरातन व्यवस्था का अन्त तो हो ही गया।

सभी ने लुई 16वें को फ्रांस की स्वतंत्रता का उद्धारक घोषित किया।

(3) चर्च की जागीरों एवं मठों का अन्त–फ्रांस के आर्थिक संकट का हल चर्च की जागीरों एवं मठों में खोजा गाया। क्रांतिकारी तालिश ने चर्च की जागीरों को बेचने तथा मुआवजे के रूप में पादरियों को उनकी आय का 2/3 भाग देने का प्रस्ताव रखा। इस आशय का प्रस्ताव पारित होने के बाद राज्य ने चर्च की जागीरों पर अधिकार कर लिया और जब्त की हुई सम्पत्ति को प्रतिभूति मानकर कागज की मुद्रा (एजीनाट) प्रचलित की। किन्तु उसके अधिक मात्रा में प्रचलन से अर्थ संकट और गहराया। फरवरी 1791 में नेशनल असेंबली में घोषणा की कि ''भविष्य में कोई भी भिक्षु एवं भिक्षुणी न बने'' इस प्रकार मठों का अन्त कर दिया गया।

(4) पादरियों के लिए नवीन धार्मिक व्यवस्था–नेशनल असेंबली ने फ्रांस की धार्मिक व्यवस्था के दोषों को दूर करने हेतु पादरियों के लिए कानून (Civil Constitution of the Clergy) नामक एक्ट पास किया। इसके अनुसार–

(i) विशप क्षेत्रों की संख्या 134 से घटाकर 83 कर दी गयी।

(ii) विशप तथा पादरी, डिपार्टमेण्ट तथा जिलों के निर्वाचकों द्वारा चुने जाने लगे।

(iii) धार्मिक पदाधिकारियों को वेतन देने का दायित्व राज्य सरकार ने लिया।

(iv) विशप राज्य के अधिकारी कहे जाने लगे।

(v) आर्कविशप आदि धार्मिक उपाधियाँ बन्द कर दी गयी।

सभा ने प्रस्ताव पास किया कि चर्च के सभी अधिकारियों को इस संविधान का समर्थन करने की शपथ लेनी पड़ेगी। इस नवीन धार्मिक व्यवस्था हेतु पोप से अनुमति नहीं ली गयी थी अतएव पादरियों में असंतोष व्याप्त हुआ और पादरी दो भागों में बँट गये–(i) वफादार पादरी एवं (ii) विद्रोही पादरी।

इन परिस्थितियों के चलते धार्मिक कलह उत्पन्न हुई। एक गुट के पीछे धार्मिक विश्वास था एवं द्वितीय गुट के पीछे राज्य का समर्थन। इसके परिणाम अत्यंत घातक निकले। विद्रोही पादरी क्रांति के शत्रु बन गये। लुई 16वें ने धार्मिक विज्ञप्ति पर अनिच्छापूर्वक हस्ताक्षर किये, जिसके परिणाम अच्छे नहीं निकले।

(5) न्याय व्यवस्था–नेशनल असेंबली ने न्याय व्यवस्था को सुधारने का भी कार्य किया–

(i) नये न्यायालय स्थापित किये गये।

(ii) न्यायाधीश निर्वाचकों द्वारा चुने जाने लगे।

(iii) आपराधिक मुकदमों के निर्णय हेतु जूरी प्रथा स्थापित की गयी।

;iv) दण्ड विधान की कठोरता में कमी की गयी।

(6) स्थानीय शासन में सुधार–फ्रांस की राज्य व्यवस्था विकेन्द्रित की गयी। फ्रांस को 134 से 83 भागों में बाँटा गया। भागों को एरोण्डाइजमेन्ट, कैन्टन्स एवं कम्यूनस आदि में विभाजित किया गया।

(7) 1791 ई. का संविधान–नेशनल असेंबली का सबसे महत्वपूर्ण कार्य एक संविधान का निर्माण करना था। इस संविधान में मॉन्टेस्क्यू द्वारा प्रतिपादित शक्ति पृथक्करण के सिद्धान्त को मान्यता दी गई परन्तु इस संविधान का सबसे बड़ा दोष यह था कि इसका निर्माण जनतंत्रात्मक भावनाओं से प्रेरित न हो कर, राजा के प्रति वैमनस्य से प्रेरित था। इसीलिये एक प्रगतिशील कदम होते हुए भी यह बहुत दिनों तक टिका

टिप्पणी

नहीं रह सका। परन्तु स्वशासन की दिशा में फ्रांस के लिये यह प्रथम प्रयोग था और इस दृष्टि से इसका काफी महत्व था।

इस संविधान में राजा के अधिकारों को अत्यंत सीमित कर दिया गया था और मंत्रियों को एक सदनीय व्यवस्थापिका सभा के प्रति उत्तरदायी बनाया गया था। मताधिकार की योग्यतायें निर्धारित की गयी थीं एवं न्यायप्रणाली में सुधार किये गये थे।

नेशनल असेंबली के कार्यों का मूल्यांकन

नेशनल असेंबली ने 21 सितम्बर, 1791 को संविधान को स्वीकृत किया और तदनुसार 30 सितम्बर, 1791 को स्वयं को भंग कर दिया। इस अल्पकालीन शासन में नेशनल असेंबली ने अत्यंत महत्वपूर्ण कार्य किये। प्राचीन व्यवस्था का अन्त किया, सामंतों और चर्च की महत्ता को कम किया, मानवाधिकार की घोषणा की, निरंकुश राजतंत्र को समाप्त करके संवैधानिक राजतंत्र की दिशा में एक कदम बढ़ाया परन्तु नेशनल असेंबली के सारे कार्य दोष रहित नहीं थे। आलोचकों का कहना है कि ''विशेषाधिकारों और चर्च पर राजकीय नियंत्रण को बढ़ाने के कार्यों में सभा ने अति उत्साह से कार्य लिया और अपने लक्ष्य से आगे बढ़कर कार्य किया।'' इसीलिये सभा द्वारा घोषणाओं को जब वैधानिक रूप दिये जाने की बात आयी तो सामंत कहीं–कहीं संर्घष हेतु तैयार हो गये। यहाँ तक कि जब नेशनल असेंबली अपने कार्यों में व्यस्त थी, राजा तथा दरबारियों ने षड्यन्त्र की योजनायें बनायीं तथा राजा ने ऑस्ट्रिया पलायन का प्रयास किया। यद्यपि वह पकड़ लिया गया तथापि यह स्पष्ट हो गया कि राजा की क्रांति से किसी को कोई सहानुभूति नहीं है। क्रांतिकारियों में भी दो दल बन गये–

(i) एक वे जो रावस्पीयर के नेतृत्व में प्रजातंत्र की तत्काल स्थापना चाहते थे।

(ii) द्वितीय वे जो राष्ट्रीय रक्षा दल और लफायते के नेतृत्व में वर्तमान स्थिति की रक्षा करना चाहते थे।

परिणामस्वरूप आपस में मुठभेड़ हुई और लफायते तथा नेशनल असेंबली आलोचना का पात्र बनी राजा ने एक बार पुनः नेशनल असेंबली का समर्थन करने की शपथ ली परन्तु सब यह भली–भांति जानते थे कि यह एक दिखावा मात्र है।

अपने विसर्जन से पूर्व नेशनल असेंबली ने एक अन्तिम और अनावश्यक गलती की, उसने आत्म त्याग की ऐसी भावना का परिचय दिया जो घातक सिद्ध हुई। जिसमें एक ऐसा प्रस्ताव पास किया गया कि इस सभा का कोई भी सदस्य नयी व्यवस्थापिका सभा अथवा मन्त्री परिषद् का सदस्य न हो सकेगा। इस प्रकार 2 वर्ष के अनुभवी व्यक्तियों को तिलांजलि दे दी गयी और नयी नेशनल असेंबली ऐसे लोगों के हाथ में सौंप दी गयी जिनका संविधान की रचना में कोई योगदान न था।

राष्ट्रीय व्यवस्थापिका सभा (विधान सभा) (1 अक्टूबर, 1791 ई. से 20 सितम्बर, 1792 ई. तक)

राष्ट्रीय संविधानिक सभा के विसर्जन के बाद 1 अक्टूबर, 1791 से 20 सितम्बर, 1792 तक का काल फ्रांसीसी इतिहास में व्यवस्थापिका सभा के काल के नाम से जाना जाता है। इस सभा के 745 सदस्य राजन्त्रवादी संविधानवादी प्रजातंत्रवादी तथा सेंटर पार्टी में विभाजित थे। सत्ता पहले संविधानवादियों के हाथ में रही परन्तु शीघ्र ही प्रजातंत्रवादियों जिरोन्दिस्ट एवं जैकोबिन्स के हाथ में आ गयी। इनके समक्ष निम्न समस्यायें थीं–

(i) राजा एक प्रकार से बन्दी था और अनेक फ्रांसीसियों की सहानुभूति उसके साथ थी।

(ii) क्रांति के सबसे प्रबल शत्रु भागे हुये सामंत एवं पादरी थे। जिन्हें राज परिवार के सदस्यों का नेतृत्व प्राप्त था।

(iii) फ्रांस के अनेक लोग क्रांति विरोधी थे।

(iv) विदेशों के अनेक लोगों की सहानूभूति राजतंत्र व्यवस्था की ओर थी।

कार्य–

(1) दो नये कानून–व्यवस्थापिका सभा ने दो नये कानून बनाये।

(अ) जो पादरी निश्चित तिथि तक संविधान के प्रति शपथ नहीं लेंगे, उनकी सम्पत्ति जब्त कर ली जायेगी।

(ब) जो प्रवासी फ्रांसीसी निश्चित तिथि तक फ्रांस नहीं आयेगे, उनकी सम्पत्ति जब्त कर ली जायेगी।

राजा ने इन कानूनों को स्वीकार नहीं किया अतः जिरोन्दिस्टो ने उसे क्रांति का शत्रु घोषित कर दिया।

(2) फ्रांस का ऑस्ट्रिया और प्रशा से युद्ध का आरम्भ–मार्च 1792 ई. में निर्मित गिरोदिष्ट मन्त्रिमण्डल ऑस्ट्रिया और प्रशा के प्लनिज घोषणा से रुष्ट था और उनसे युद्ध करना चाहता था। अतः 20 अप्रैल, 1792 ई. को उन्होंने ऑस्ट्रिया और प्रशा के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी। प्रथम 6 माह में फ्रांसीसी सेना पराजित हुयी। जनता ने इसे राजा–रानी का विश्वासघात मानते हुये टूलरिज महल पर आक्रमण किया परन्तु जब राजा ने क्रांति के प्रतीकों के साथ जनता को दर्शन दिये तो इससे जनता शान्त हो गयी।

आस्ट्रिया तथा प्रशा ने इसे गम्भीरता से लिया और बून्जविक के ड्यूक के नेतृत्व में एक सेना क्रांति को नष्ट करने भेजी। इस घोषणा से भड़कर जनता ने पुनः टूलरिज पर आक्रमण किया अतः राजा को व्यवस्थापिका की शरण लेनी पड़ी।

व्यवस्थापिका इसके बाद क्रमशः कम्यून के प्रभाव में आती चली गयी और उसने राजा को पदच्युत कर दिया। नया संविधान बनाने के लिए नेशनल कन्वेशन के निर्वाचन की घोषणा की गयी। इस समय तक शत्रु पेरिस के निकट तक आ गये थे। अतः जैकोबिनो ने राजतंत्रवादियों की हत्यायें आरम्भ कर दीं। 2 से 6 सितम्बर तक 1600 व्यक्तियों की हत्या कर दी गयी।

इसी समय फ्रांसीसी सेनापति दूमरे ने 20 सितम्बर, 1792 ई. को बाल्मी के युद्ध में प्रशा को पराजित किया और क्रांति की रक्षा की। इसके बाद शत्रुओं की गति मन्द होती चली गयी। 21 सितम्बर, 1792 से फ्रांस का शासन National Convention के हाथ आ गया।

नए संविधान का निर्माण– लुई 16वें को पदच्युत करने के बाद कन्वेशन ने 1793 ई. में क्रांति का द्वितीय संविधान बनाया परन्तु मतभेदों के कारण यह संविधान कार्यान्वित न हो सका। अतः कन्वेशन ने 1795 ई. में क्रांति का तृतीय संविधान बनाया। यह संविधान जनतंत्रात्मक सिद्धान्तों के आधार पर बनाया गया। इसकी कार्यपालिका 5 व्यक्तियों की एक समिति (Directory) में निहित की गयी थी। दो भवनों वाली

टिप्पणी

व्यवस्थापिका सभा का निर्माण किया गया था और मताधिकार सम्पत्ति के आधार पर दिया गया था।

इस संविधान को पारित कर 26 अक्टूबर, 1795 ई. को नेशनल कन्वेशन (National Convention) भंग हो गयी और उसके तुरन्त बाद यह विधान लागू कर दिया गया।

डायरेक्टरी का शासन
(27 अक्टूबर, 1795 ई. से 19 नवम्बर, 1799 ई. तक)

नेशनल कन्वेशन ने 1795 ई. में क्रांति का तृतीय संविधान बनाया, जिसके अंतर्गत कार्यपालिका के समस्त अधिकार 5 डायरेक्टरों की एक समिति को सौंप दिये। इस प्रकार फ्रांस में 27 अक्टूबर, 1795 ई. से डायरेक्टरी का शासन काल आरम्भ हुआ। डायरेक्टरों की समिति के 5 सदस्य क्रमशः बर्रास (Barras), कोर्नो (Carnot), एबेसिये (Abbesieyes), रूबेल (Reubell) एवं ला रिबेलियरे (La Revelliere) थे। इस प्रकार लोगों ने निरंकुशता एवं तानाशाही को रोकने के लिए, किसी एक व्यक्ति में सत्ता केन्द्रित न रखते हुए, इन पांच डायरेक्टरों को शासन का अधिकार सौंपा। इन पांच डायरेक्टरों को बारी–बारी से फ्रांस का राष्ट्रपति बनाना निश्चित किया जिसकी अवधि केवल तीन मास रखी गई, ताकि एक ही व्यक्ति अधिक शक्तिशाली न बन सके। प्रत्येक वर्ष एक डायरेक्टर को रिटायर भी होना था परन्तु यह फ्रांस और फ्रांस की क्रांति का दुर्भाग्य था कि, उपरिवर्णित पांचों डायरेक्टर भ्रष्ट, घूसखोर व स्वार्थी थे, जबकि तत्युगीन अराजकतापूर्ण एवं विषम परिस्थितियों में काफी योग्य व्यक्तियों की आवश्यकता थी।

डायरेक्टरी शासन के समक्ष समस्यायें

फ्रांस में 27 अक्टूबर, 1795 ई. से 19 नवम्बर, 1799 ई. तक डायरेक्टरी का शासन लगभग चार वर्ष तक चला। इन चार वर्षों के विपत्तियों से परिपूर्ण शासन काल में इसे कई कठिनाइयों का सामना करना पड़ा था। आन्तरिक एवं विदेशी परिस्थतियां इस समय इतनी विषम एवं संकटपूर्ण थीं कि इनसे पार पाने के लिये, कर्त्तव्यपरायण, योग्य, दृढ़ निश्चयी एवं राष्ट्र के प्रति निष्ठावान डायरेक्टरों की आवश्यकता थी। जिसका उक्त सभी डायरेक्टरों में सर्वथा अभाव था। उक्त विषम परिस्थितियों ने ही उक्त वर्णित सभी गुणों से परिपूर्ण नेपोलियन बोनापार्ट जैसे व्यक्ति को जन्म दिया जिसने शक्ति के बल पर इस डायरेक्टरी शासन को उखाड़ फैंका। इसीलिये इतिहासकार हेजन ने ठीक ही लिखा है कि ''डायरेक्टरी का चार वर्ष का इतिहास अनिश्चित तथा संकटपूर्ण रहा और अन्त में बलपूर्वक उसको उखाड़ फेंका गया।''

वस्तुतः जिस समय फ्रांस में डायरेक्टरी शासन ने कार्यभार संभाला, उनके समक्ष निम्न समस्यायें मुंह उठाये खड़ी थीं–

1. आतंक के राज्य से भयभीत जनता का क्रांति पर से विश्वास उठ रहा था।
2. अराजकता से तंग जनता शान्ति एवं सुव्यवस्था चाहती थी।
3. सीमा पार के क्रांति विरोधी शत्रु भी फ्रांस में व्याप्त अराजकता का लाभ उठाकर क्रांति का दमन करने के प्रयास कर रहे थे।

4. डायरेक्टरी शासन के विरुद्ध प्रतिक्रियावादी षड्यन्त्रकारी सक्रिय थे। जिनका दमन अति आवश्यक था।
5. डायरेक्टरी शासन को एक दयनीय आर्थिक स्थिति विरासत में मिली थी। फ्रांस की पत्र मुद्रा आसीया (Assignats) का तेजी के साथ अवमूल्यन हो रहा था। लियो गर्शाय ने तत्युगीन आर्थिक दशा का सटीक वर्णन इन शब्दों में प्रस्तुत किया है, ''डायरेक्टरी शासन ने जब कार्यभार संभाला, खजाना खाली था, यहां तक कि सेना व प्रशासन के संचालन हेतु भी धन नहीं था। कर के रूप में वसूला जाने वाला धन आवश्यकताओं हेतु पर्याप्त न था।''

डायरेक्टरी की गृह नीति–ट्रिब्यून नामक समाचार पत्र के सम्पादक बेबुफ नामक व्यक्ति ने पेंथियन नामक संस्था के माध्यम से डायरेक्टरी शासन को चुनौती प्रस्तुत की। बेबुफ व्यक्तिगत सम्पत्ति के स्थान पर आर्थिक समानता पर आधारित गणतंत्र की स्थापना करना चाहता था। जेकोबिन क्लब के सदस्य पेंथियन संस्था से जुड़ गये, इस प्रकार तेजी से पेंथियन संस्था के सदस्यों की संख्या बढ़ने लगी। उसकी लोकप्रियता से घबराकर डायरेक्टरी शासन ने 1796 ई. में इसके विरुद्ध कार्यवाही कर इसे भंग कर दिया। अतः गुप्त रूप से भारी मात्रा में हथियार एकत्रित कर पेंथियन संस्था ने डायरेक्टरी शासन का तख्ता पलटने की योजना बनाई। मगर इस षड्यन्त्र का पता चलने पर संस्था के सदस्यों को गिरफ्तार कर बेबुफ को गिलोटिन पर चढ़ा दिया गया। बेबुफ प्रथम व्यक्ति था जिसने कि विश्व को समता पर आधारित शासन की स्थापना का विचार प्रतिपादित किया।

इनके अलावा भी डायरेक्टरी शासन को कई आन्तरिक समस्याओं से जूझना पड़ा जिसका वर्णन हम ऊपर समस्याओं में कर चुके हैं।

डायरेक्टरी की विदेश नीति–नेशनल कन्वेंशन के काल में फ्रांस ने प्रशा, स्पेन व हालैंड से संधि कर ली थी परन्तु इंग्लैंड व आस्ट्रिया के साथ अभी युद्ध जारी था। लियो गरक्षाय के अनुसार, ''विदेश नीति निर्धारण में डायरेक्टरी का उद्देश्य था, युद्ध को समाप्त कर फ्रांस की सुरक्षा को आश्वासित करना।'' इस समय आस्ट्रिया फ्रांस का सबसे बड़ा शत्रु था। अतः मूरो एवं नेपोलियन को उस पर आक्रमणार्थ भेजा गया। इस प्रकार डायरेक्टी शासन ने नेपोलियन जैसे सेनापति को जन्म दिया जिसकी सफलताएं अद्भुत थीं। ग्राण्ट एण्ड टेम्परले के अनुसार, ''नेपोलियन युद्ध में जितना कुशल था, राजनीति में भी उतना ही कुशल था।''

डायरेक्टरी का पतन एवं मूल्यांकन–डायरेक्टरी को अपनी स्थापना के साथ ही अत्यंत विपरीत आन्तरिक एवं बाह्य समस्याओं से जूझना पड़ा था। विदेश नीति में उसे जो सफलता मिली, वह नेपोलियन के कुशल सैन्य नेतृत्व के कारण मिली थी। नेपोलियन की सैन्य सफलताओं ने उसे जनता की आँख का तारा एवं फ्रांस का राष्ट्रीय नायक बना दिया। डायरेक्टरी की आन्तरिक गृहनीति की असफलता को भुनाते हुए नेपोलियन ने अपनी लोकप्रियता का लाभ उठाया और एक षड्यन्त्र द्वारा 10 नवम्बर, 1799 ई. को अन्ततः डायरेक्टरी का तख्ता पलट कर दिया। अब फ्रांस में कान्स्यूलेट शासन की स्थापना हुई और प्रथम कान्स्यूलेट बना नेपोलियन बोनापार्ट।

- फ्रांस के सम्राट लुई 16वें (1774–1793 ई.) का निरंकुश व्यवहार एवं विलासितापूर्ण जीवन फ्रांस की राज्यक्रांति का एक कारण था।

- लुई 16वें की रानी मैरी आंत्वानेत की राजनीतिक महत्वाकांक्षा भी फ्रांस की क्रांति के लिये जिम्मेदार थी।
- फ्रांसीसी क्रांति में मान्टेस्क्यू (1689–1758 ई.) वाल्तेयर (1694–1778 ई.), रूसो (1712–1778 ई.) एवं दिदरो (1713–1784 ई.) आदि दार्शनिकों की भी महत्वपूर्ण भूमिका थी।
- 5 मई 1789 ई. को एस्टेट्स जनरल का अधिवेशन आरम्भ हुआ।
- 17 जून 1789 ई. को तृतीय वर्ग ने स्वयं को नेशनल असेंबली घोषित किया।
- 20 जून 1789 ई. को टेनिस कोर्ट की शपथ ली गई।
- 14 जुलाई 1789 ई. को बास्तील का पतन हुआ।
- 4 अगस्त 1789 ई. को सामंतों के विशेषाधिकार समाप्त हुये।
- राष्ट्रीय व्यवस्थापिका सभा (विधान सभा) का कार्यकाल 1 अक्टूबर 1791 से 20 सितम्बर 1792 तक रहा।
- राष्ट्रीय सम्मेलन का कार्य काल 21 सितम्बर 1792 से 26 अक्टूबर 1795 तक रहा।
- लुई 16वें को 21 जनवरी 1793 ई. को गिलोटिन (फांसी) पर चढ़ा दिया गया।
- 16 अक्टूबर 1793 ई. को रानी आंत्वानेत को देश द्रोह के अपराध में मृत्यु दण्ड दिया गया।
- 27 अक्टूबर 1795 से 19 नवम्बर 1799 तक डायरेक्टरी का शासन रहा।
- 10 नवम्बर 1799 ई. को नेपोलियन बोनापार्ट ने डायरेक्टरी शासन का तख्ता पलट कर फ्रांस में कॉन्सुलेट शासन स्थापित किया।

अपनी प्रगति जांचिए

5. फ्रांसीसी क्रांति किस वर्ष हुई?

   (क) 1785 (ख) 1789

   (ग) 1787 (घ) 1788

6. संपूर्ण फ्रांस में लगभग कितने प्रकार के कानून प्रचलित थे?

   (क) 100 (ख) 200

   (ग) 400 (घ) 300

1.6 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर

1. (क)
2. (ख)
3. (ग)
4. (क)

5. (ख)

6. (ग)

1.7 सारांश

टिप्पणी

कोलम्बस द्वारा 1492 ई. में अमेरिका की खोज के उपरांत यूरोपवासी अमेरिका में बसने लगे। जब यूरोपीय लोग अमेरिका में आये तो उन्होंने स्थानीय इण्डियन लोगों का गुलामों एवं भूदासों के रूप में उपयोग किया। उनसे अपने आर्थिक फायदों के लिए बेगार कराई। इस प्रकार अमेरिका के मूल निवासियों की एक बड़ी आबादी मौत के घाट उतार दी गई। जो कुछ बाकी बचे, उन्हें गुलामों एवं भूदासों में परिणत कर दिया गया। इस प्रकार स्थानीय लोगों को विस्थापित कर अमेरिका में यूरोपीय गोरे लोगों की बस्तियाँ स्थापित हो गयी। 17वीं शताब्दी के प्रारम्भ में, अमेरिका के पूर्वी तट पर श्वेत लोगों की बस्तियाँ स्थापित होने लगी थीं। इस श्वेत आबादी में 90 प्रतिशत अंग्रेज एवं 10 प्रतिशत पुर्तगाली, फ्रांसीसी, डच व जर्मन लोग थे। 1607 ई. में अमेरिका में सबसे पहली अंग्रेज बस्ती जेम्सटाउन में स्थापित की गई। अमेरिका की स्थानीय आबादी को विस्थापित कर यूरोप के श्वेत समाज ने अमेरिका में अपनी बस्तियाँ तो स्थापित कर लीं मगर इनके समक्ष कई प्रकार की समस्याँ थी। सर्वप्रथम तो इन्हें इंग्लैंड से स्वतंत्र होने के लिये संघर्ष करना पड़ा। फलतः अमेरिकन क्रांति 1776 ई. में सम्पन्न हुई। अमेरिका स्वतंत्र तो हो गया मगर इसके बाद उसे दास प्रथा की समस्या का सामना करना पड़ा जिसके कारण अमेरिका में गृह युद्ध छिड़ गया। इन समस्याओं से उबरने के पश्चात् ही अमेरिका प्रगति के पथ पर अग्रसर हो सका।

1789 की फ्रांसीसी क्रांति को रेम्जेम्योर ने 'World Revolution' कहकर पुकारा है क्योंकि इस क्रांति के द्वारा प्रेरित समानता, स्वतंत्रता और बन्धुत्व के नारों ने न केवल फ्रांस बल्कि अन्य देशों के विचार एवं राजनीति को भी प्रभावित किया।

यह क्रांति कोई आकस्मिक घटना नहीं थी, उसके लिए क्रांति के पूर्व की फ्रांसीसी राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक एवं धार्मिक परिस्थितियाँ उत्तरदायी थीं।

फ्रांस के बूर्बो वंशीय राजा पूर्ण निरंकुश राजतंत्र में विश्वास करते थे। वे राजा के दैवीय अधिकारों के समर्थक थे तथा स्वयं को एकमात्र ईश्वर के प्रति उत्तरदायी मानते थे। लुई 14वें की मान्यता थी कि "I am the state and words are law" लुई 14वें के उत्तराधिकारी लुई 15वाँ और लुई 16वाँ भी इसी प्रकार की मान्यता रखते थे। लुई 16वाँ कहा करता था, ''यह कानून है क्योंकि मेरी ऐसी इच्छा है।'' इस नीति में विश्वास रखने के कारण ही वे किसी की सलाह नहीं लेते थे।

फ्रांस में व्यक्तिगत स्वतंत्रता का अभाव था। भाषण, लेखन, संघ बनाने, धार्मिक क्रियाकलापों आदि को अपनी आस्था के अनुसार सम्पन्न करने की किसी को स्वतंत्रता नहीं थी।

बूर्बो राजाओं की विलासिता एवं अयोग्यता के कारण राजतंत्र की स्थिति नाजुक थी। राजा वर्साय की शान–शौकत तथा अपनी प्रेमिकाओं व कृपापात्रों में रहने के आदी थे। लुई 15वाँ स्वयं कहता था, ''मेरे बाद प्रलय होगी।'' लुई 16वें को वसीयत में एक कुशासित, असन्तुष्ट तथा निराशाग्रस्त शासन प्राप्त हुआ था, उसने अपनी

अयोग्यता, विलासिता व दुर्बल चरित्र के कारण लड़खड़ाती भ्रष्ट राजनीतिक संस्था को और अधिक कमजोर किया। रानी मेरी आन्त्वानेत (Marine Antoninette) और दरबारी सामंतों ने लुई 16वें के राजनीतिक एवं प्रशासनिक निर्णयों को अनुचित रूप से प्रभावित किया। राज्य में लालफीताशाही का बोलबाला था। नियुक्तियाँ योग्यता के आधार पर नहीं बल्कि भ्रष्टाचार के माध्यम से प्राप्त की जाती थीं।

फ्रांसीसी क्रांति के समय समाज पुरातन सामंत व्यवस्था पर आधारित था और वह दो वर्गों में विभाजित था। जिनमें एक विशेषाधिकार युक्त एवं द्वितीय विशेषाधिकारविहीन वर्ग था। विशेषाधिकारयुक्त वर्ग में पादरी एवं सामंत आते थे। विशेषाधिकारयुक्त एवं विशेषाधिकारविहीन वर्ग में जीवन के प्रत्येक पहलू में असमानता व्याप्त थी।

लुई 14वें को दीर्घकालीन खर्चीले युद्ध लड़ने पड़े। इससे राजकोष रिक्त हो गया। इसके अतिरिक्त उसने करोड़ों रूपया अपनी विलासिता के साधन जुटाने, जैसे– वर्साय का राजमहल आदि बनवाने में खर्च किया। लुई 15वें और लुई 16वें के समय में भी विभिन्न युद्धों में फ्रांस को भाग लेना पड़ा। इससे आर्थिक स्थिति और अधिक खराब हुई।

फ्रांसीसी क्रांति का आरम्भ 1789 ई. में एस्टेट्स जनरल का अधिवेशन बुलाने के साथ ही हुआ। 5 मई, 1789 ई. को एस्टेट्स जनरल के अधिवेशन का शुभारम्भ हुआ। मिराबो जैसे योग्य व्यक्ति के नेतृत्व में जन साधारण के प्रतिनिधियों ने तीनों वर्गों की सम्मिलित बैठक एवं प्रति सदस्य मतदान के अधिकार की माँग की। जब पादरियों व कुलीन वर्ग ने इसका विरोध किया तो टेनिस कोर्ट की शपथ रूपी एक ऐतिहासिक घटना घटित हुई जिसने क्रांति का आरम्भ कर दिया।

फ्रांस की क्रांति निरंकुशता की अपेक्षा असमानता के विरुद्ध विद्रोह थी। इस क्रांति ने सामंतों और चर्चों के विशेषाधिकारों पर चोट की तथा सामाजिक समानता की स्थापना में प्रगति की।

फ्रांस की क्रांति ने निरंकुशवाद को समाप्त किया। मानवाधिकार की घोषणा द्वारा प्रत्येक व्यक्ति को अभिव्यक्ति व लेखन की स्वतंत्रता प्राप्त हुई। सभी को धार्मिक स्वतंत्रता प्राप्त हुई। हेजन के अनुसार, इस घोषणा का प्रभाव समस्त संसार पर पड़ा। इस क्रांति से प्रेरणा लेकर अनेक देशों के निरंकुश शासकों की जड़ें हिल गयी और वहां राजनीतिक और धार्मिक स्वतंत्रता की स्थापना हुई।

इस क्रांति ने इस तथ्य पर बल दिया कि, कानून सामान्यजन इच्छा की अभिव्यक्ति है और शासन जनता के लिए ही नहीं, वरन् जनता द्वारा होना चाहिए। इसका परिणाम यह हुआ कि लोकतान्त्रिक शासन एक कल्पना न रहकर राजनीतिक कार्यक्रम बन गया।

फ्रांस की क्रांति के परिणामस्वरूप राजभक्ति का स्थान राष्ट्र भक्ति ने ले लिया और यूरोपीय देशों में राष्ट्रीयता की भावना का विकास हुआ। 19वीं और 20वीं शाताब्दी में राज्यों के एकीकरण और स्वाधीनता आन्दोलनों को फ्रांस की क्रांति ने प्रभावित किया।

फ्रांस की क्रांति ने कृषक दासता का अन्त करने की ओर प्रगति की एवं कृषकों की दासता का अन्त कर उन्हें स्वतंत्र जीवन प्रदान किया।

फ्रांस की 1789 ई. की क्रांति न केवल फ्रांस एवं यूरोप, अपितु समस्त विश्व की एक महानतम घटना थी। इस क्रांति के प्रभाव अत्यंत सकारात्मक एवं दूरगामी सिद्ध हुए। जिन्होंने विश्व के आगामी इतिहास को दूर तक प्रभावित किया।

एस्टेट जनरल (Estate General) ने, जिसकी बैठक 5 मई, 1789 में आरम्भ हुई थी, ने 17 जून को नेशनल असेंबली का नाम धारण कर लिया था। वह नेशनल असेंबली के नाम से भी प्रसिद्ध है क्योंकि उसका मुख्य कार्य संविधान का निर्माण था। नेशनल असेंबली का कार्यकाल 30 सितम्बर, 1791 तक रहा। इस अल्प कार्यकाल में नेशनल असेंबली ने महत्वपूर्ण कार्य किये।

राष्ट्रीय संविधानिक सभा के विसर्जन के बाद 1 अक्टूबर, 1791 से 20 सितम्बर, 1792 तक का काल फ्रांसीसी इतिहास में व्यवस्थापिका सभा के काल के नाम से जाना जाता है। इस सभा के 745 सदस्य राजन्त्रवादी संविधानवादी प्रजातंत्रवादी तथा सेंटर पार्टी में विभाजित थे। सत्ता पहले संविधानवादियों के हाथ में रही परन्तु शीघ्र ही प्रजातंत्रवादियों गिरोन्दिस्ट एवं जैकोबिन्स के हाथ में आ गयी। इनके समक्ष अनेक समस्यायें थीं।

नेशनल कन्वेशन ने 1795 ई. में क्रांति का तृतीय संविधान बनाया, जिसके अंतर्गत कार्यपालिका के समस्त अधिकार 5 डायरेक्टरों की एक समिति को सौंप दिये। इस प्रकार फ्रांस में 27 अक्टूबर, 1795 ई. से डायरेक्टरी का शासन काल आरम्भ हुआ। डायरेक्टरों की समिति के 5 सदस्य क्रमशः बर्रास (Barras), कोर्नो (Carnot), एबेसिये (Abbesieyes), रूबेल (Reubell) एवं ला रिबेलियरे (La Revelliere) थे। इस प्रकार लोगों ने निरंकुशता एवं तानाशाही को रोकने के लिए, किसी एक व्यक्ति में सत्ता केन्द्रित न रखते हुए, इन पांच डायरेक्टरों को शासन का अधिकार सौंपा। इन पांच डायरेक्टरों को बारी–बारी से फ्रांस का राष्ट्रपति बनाना निश्चित किया जिसकी अवधि केवल तीन मास रखी गई, ताकि एक ही व्यक्ति अधिक शक्तिशाली न बन सके। प्रत्येक वर्ष एक डायरेक्टर को रिटायर भी होना था परन्तु यह फ्रांस और फ्रांस की क्रांति का दुर्भाग्य था कि, उपरिवर्णित पांचों डायरेक्टर भ्रष्ट, घूसखोर व स्वार्थी थे, जबकि तत्युगीन अराजकतापूर्ण एवं विषम परिस्थितियों में काफी योग्य व्यक्तियों की आवश्यकता थी।

1.8 मुख्य शब्दावली

- **बस्तियां** – अमेरिका में यूरोप के देशों ने अपनी–अपनी बस्तियां बसाईं, इन्हें उपनिवेश भी कहते हैं।
- **अन्ततोगत्वा** – अन्ततः, आखिरकार
- **दासता** – गुलामी
- **पृथक** – अलग
- **दुर्बलता** – कमजोरी
- **कुशल** – योग्य
- **श्वेत समाज** – यूरोपीय लोगों को श्वेत कहा जाता था।
- **उपनिवेश** – वह हारा हुआ देश जिस पर विजेता राष्ट्र के लोग अपना आधिपत्य जमा लेते हैं।
- **निरंकुश** – मनमाना, समस्त अधिकार संपन्न व्यक्ति या शासन व्यवस्था

- **प्रतिष्ठा** – सम्मान
- **नौसेना** – संगठित समुद्री सेना
- **बास्तील** – फ्रांसीसी कारागार (दुर्ग)
- **डायरेक्टरी** – व्यक्तियों की समिति का शासन

1.9 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास

लघु–उत्तरीय प्रश्न

1. अमेरिका की खोज किसने की?
2. अमेरिकी संविधान निर्माताओं ने किसके शक्ति प्रथक्करण का सिद्धांत स्वीकार किया?
3. अमेरिका के प्रथम राष्ट्रपति कौन बने?
4. "मेरे बाद प्रलय होगी," यह कथन फ्रांस के किस शासक का है?
5. फ्रांस के तृतीय वर्ग के किसानों के पास कुल भूमि का कितना भाग था?
6. फ्रांस में डायरेक्टरी के शासन के अंतर्गत गठित समिति में कितने डायरेक्टर नियुक्त किए गए थे?

दीर्घ–उत्तरीय प्रश्न

1. अमेरिका की क्रांति के कारणों की विवेचना कीजिए?
2. अमेरिका के स्वतंत्रता संग्राम की प्रमुख घटनाओं की विवेचना कीजिए।
3. अमेरिकी क्रांति के परिणामों का वर्णन कीजिए।
4. निम्न में से किन्हीं दो पर टिप्पणी लिखिए।
   (क) बोस्टन टी पार्टी
   (ख) थामस जेफरसन
   (ग) बोस्टन नरसंहार
   (घ) स्टाम्प एक्ट, 1765
5. फ्रांसीसी क्रांति के समय फ्रांस की क्या दशा थी? क्रांति की उत्पत्ति के मुख्य कारणों की विवेचना कीजिए।
6. डायरेक्टरी की रचना कैसे हुई? तत्कालीन समस्याओं का इसने कहाँ तक समाधान किया? विवेचना कीजिए।
7. फ्रांसीसी क्रांति के प्रभावों की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिए।
8. किन्हीं दो पर टिप्पणी लिखिए–
   (क) टेनिस कोर्ट शपथ (Tennis Court Oath).
   (ख) बास्तील का पतन (Fall of Bastille)

(ग) मानवाधिकारों की घोषणा (Declaration of the Rights of Man)

(घ) व्यवस्थापिका सभा की उपलब्धियाँ
(Achievements of the Legistative Assembly)

1.10 सहायक पाठ्य सामग्री

- ए. डब्लू. वार्ड (सं), दि कैम्ब्रिज मॉडर्न हिस्ट्री, जिल्द 1 से 10, 1902
- सी.डी.एम. कैटलबी, ए हिस्ट्री ऑफ मॉडर्न टाइम्स, 1964
- सी.डी.हैजन, मॉडर्न यूरोपियन हिस्ट्री, 1938
- सी.एच. फाइप, ए हिस्ट्री ऑफ मॉडर्न यूरोप, 1880
- एच.ए.एल. फिशर, ए हिस्ट्री ऑफ यूरोप, 1939
- पार्थ सारथी गुप्ता, आधुनिक पश्चिम का उदय, 1992
- डेविड थामसन, डेमोक्रेसी इन फ्रांस : दि थर्ड रिपब्लिक, 1946
- जे. पी. टी. बरी, फ्रान्स (1814–1940), 1949
- जे. एच. क्लेपहेम, इकॉनॉमिक डवलपमेण्ट ऑफ फ्रान्स एण्ड जर्मनी (1815–1914), 1928
- एल. एल. स्माइडर , फ्रॉम बिस्मार्क टू हिटलर, 1935
- पार्थ सारथी गुप्ता, यूरोप का इतिहास, 1987
- जे.एच. हेज, पॉलिटिकल एण्ड कल्चरल हिस्ट्री ऑफ मॉडर्न भाग–1 और 2, 1936
- सी.जी. राबर्टसन, बिस्मार्क, 1947
- आर.डब्ल्यू. सेटन वाटसन, डिजरेली, ग्लेडस्टन एण्ड दि इस्टर्न क्वेश्चन, 1935, राइज ऑफ नेशनलिटी न बाल्कन, 1917
- वी.जे. परियार, इंग्लैंड रशा एण्ड दि स्टेट्स क्वेशन (1844–56), 1931
- वर्मा, दीनानाथ, आधुनिक एशिया का इतिहास, 1993 एवं अंतर्राष्ट्रीय संबंध, 1985
- हेतु सिंह बघेला, आधुनिक एशिया का इतिहास, 1996
- जी.पी. गूच, ए हिस्ट्री ऑफ यूरोप, 1946 एवं जर्मनी, 1925
- अहमद मनाजिर एवं सभ्रवाल एस.पी., आधुनिक यूरोप का इतिहास (1789–1950), विशाल पब्लिकेशन, दिल्ली, 1996
- एरख आयक, बिस्मार्क एण्ड द जर्मन एम्पायर, 1928
- ए.जे.पी. टेलर, बिस्मार्क दि मेन स्टेट्समैन, 1965
- पांडेय, वी.सी.–यूरोप का इतिहास, केदारनाथ रामनाथ, मेरठ, 1976
- शर्मा, एम.एल–यूरोप का इतिहास, कालिज बुक डिपो, जयपुर
- Grant at temperaley - Europe in the 19th-20th Century

- Lipson - Europe in the 19th, 20th Century
- Hazen, C.D - Modern Europe up to 1945
- Ketelbey, C.D.M - A history of modern Europe
- Ludwig, Email - Bismark
- राहुल सांकृत्यायन, मध्य एशिया का इतिहास, खण्ड–1, 1956
- राहुल सांकृत्यायन, मध्य एशिया का इतिहास, खण्ड–2, 1957
- बुद्ध प्रकाश, एशिया के सामाजिक और सांस्कृतिक इतिहास की रूपरेखा, हिंदी समिति, लखनऊ, 1971
- वर्मा दीनानाथ, एशिया का आधुनिक इतिहास, भारती भवन, पटना, 1988
- शर्मा अम्बिका प्रसाद, एशिया का इतिहास, ज्ञानदा प्रकाशन, नई दिल्ली, 1995
- शर्मा मथुरालाल, अमेरिका का इतिहास, रिसर्च पब्लिकेशन, जयपुर, 2002
- श्रीवास्तव ब्रजेश कुमार, विश्व इतिहास की विषयवस्तु, SBPD पब्लिकेशन हाउस, आगरा, 2007
- श्रीवास्तव ब्रजेश कुमार, चीन एवं जापान का इतिहास, SBPD, आगरा, 2007

इकाई 2 नेपोलियन बोनापार्ट का युग, वियना कांग्रेस, यूरोप की संयुक्त व्यवस्था, मेटरनिख : प्रतिक्रियावादी युग

संरचना

2.0 परिचय
2.1 उद्देश्य
2.2 नेपोलियन बोनापार्ट का युग
2.3 वियना कांग्रेस और यूरोप की संयुक्त व्यवस्था
  2.3.1 वियना कांग्रेस और इसके प्रमुख उद्देश्य
  2.3.2 यूरोप की संयुक्त व्यवस्था
2.4 मेटरनिख : प्रतिक्रियावादी युग (1815–1848 ई.)
2.5 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
2.6 सारांश
2.7 मुख्य शब्दावली
2.8 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
2.9 सहायक पाठ्य सामग्री

2.0 परिचय

नेपोलियन बोनापार्ट का जन्म कार्सिका द्वीप के एक कुलीन परिवार में 15 अगस्त,1769 ई. को हुआ था। कार्सिका में इस परिवार का बड़ा महत्व था। नेपोलियन के जन्म के समय उसके माता–पिता कार्सिका स्वाधीनता संग्राम में व्यस्त थे। इसका नेपोलियन के व्यक्तिगत जीवन पर बड़ा प्रभाव पड़ा। नेपोलियन ने ब्रीन तथा पेरिस में शिक्षा प्राप्त की थी। कुलीन परिवार का होने के बाद भी वह निर्धन था। उसने एक बार अपने पिता को लिखा था, ''कॉलेज के मूर्ख लड़के मेरी निर्धनता के कारण मेरा मजाक उड़ाते हैं परन्तु उनके पास धन के अतिरिक्त मेरे से अधिक कुछ नहीं है।'' एक बार उसने लिखा था, ''काम के अतिरिक्त मेरा कोई साथी नहीं है। ''अध्ययन काल में ही वह फ्रांसीसी दार्शनिकों मुख्यतः रूसो से प्रभावित हुआ। वह कहता था, ''यदि रूसो का जन्म न होता तो सम्भवतः नेपोलियन का जन्म भी न होता।''

लिपजिंग के युद्ध में नेपोलियन को परास्त करने के उपरान्त मित्र राष्ट्रों एवं फ्रांस के प्रतिनिधियों के बीच 30 मई, 1814 ई. को पेरिस की प्रथम संधि हुई थी। इसके अन्तर्गत लुई 16वें के भाई लुई 18वें को राजगद्दी प्रदान कर फ्रांस में बूबों वंश की पुनर्स्थापना की गयी। फ्रांस की सीमाएँ वही निश्चित की गयीं, जोकि 1792 ई. में थीं। फ्रांस के भाग्य का निर्णय करने के उपरान्त, यूरोप की पुनः व्यवस्था करने हेतु इसी संधि के 32 वें अनुच्छेद (32nd Article) में वियना में एक सम्मेलन के आयोजन का निर्णय लिया गया। इसी बीच जब नेपोलियन पुनः फ्रांस आया और फ्रांसीसी जनता ने उसका स्वागत किया, तब वाटरलू में उसे परास्त करने के उपरान्त 20 नवम्बर, 1815 ई. को पेरिस की द्वितीय संधि सम्पन्न हुई। यह संधि प्रथम संधि से भी अधिक कठोर थी। अब फ्रांस की सीमाएँ 179 ई. के अनुसार निश्चित की जानी थीं। अतः

नेपोलियन की निर्णायक पराजय के पश्चात् ही मित्र राष्ट्रों ने वियना सम्मेलन की कार्यवाही अबाधित रूप से आरम्भ की।

इस इकाई में हम नेपोलियन बोनापार्ट तथा उसके समय की स्थितियों, वियना कांग्रेस, यूरोप की संयुक्त व्यवस्था एवं मेटरनिख तथा संबंधित पक्षों का विस्तारपूर्वक अध्ययन करेंगे।

2.1 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप–

- नेपोलियन के उत्थान में सहायक स्थितियों तथा नेपोलियन और उसके युग का विस्तारपूर्वक अध्ययन कर पाएंगे;
- वियना कांग्रेस, यूरोप की संयुक्त व्यवस्था तथा मेटरनिख (प्रतिक्रियावादी युग) के बारे में जान पाएंगे।

2.2 नेपोलियन बोनापार्ट का युग

(1) प्रारम्भिक उत्कर्ष–1785 में वह कार्सिका की सेना में भर्ती हुआ। 1789 ई. में जब कार्सिका फ्रांस का एक प्रान्त बन गया, तब नेपोलियन के उत्कर्ष का मार्ग खुला। 1793 में वह जैकोबिन दल का सदस्य बना। वह प्रारम्भ से ही अनुशासनप्रिय था और क्रांतिकारी अव्यवस्था का घोर विरोधी था। इसके जीवन के निम्नांकित महत्वपूर्ण कार्यों ने उसे भविष्य में देश का नियामक बनाने में मदद की–

1. फ्रांस की क्रांति का अन्त करने के लिए यूरोपीय राजा प्रयासरत थे। अगस्त 1793 में एक अंग्रेजी जहाजी बेड़े ने टूलो पर अधिकार किया। नेपोलियन ने अंग्रेजों को परास्त कर उन्हें भगा दिया।
2. टूलो की जीत से प्रभावित होकर रॉबस्पीयर ने उसे ब्रिगेडियर जनरल बना दिया। राबस्पीयर के पतन के बाद उसके बुरे दिन आये, परन्तु शीघ्र ही वह दोषमुक्त हो गया।
3. 5 अक्टूबर, 1795 को जनता ने नेशनल कन्वेशन (National Convention) के विरुद्ध विद्रोह किया परन्तु नेपोलियन के साहस के कारण यह विद्रोह बिखर गया।
4. फ्रांस को गृह युद्ध से बचाने के पुरस्कार स्वरूप डायरेक्टरों ने उसे आन्तरिक सेना का सेनापति बनाया।
5. 1796 ई. में मृत जनरल बुहार्नेस की विधवा जोसेफीन (नेपोलियन से 6 वर्ष बड़ी) से उसका विवाह हुआ इस विवाह का रानीतिक महत्व था और सम्भवतः इसी कारण उसे इटली जाने वाली सेनाओं का प्रधान सेनापति बनाया गया।

(2) नेपोलियन के युद्ध–नेपोलियन ने डायरेक्टरों के आदेश पर इटली की ओर से होकर आस्ट्रिया पर आक्रमण करने हेतु प्रस्थान किया। उसने सार्डीनिया को परास्त किया और पिडमाण्ट के राजा को केराष्को नामक स्थान पर संधि हेतु विवश किया। इससे फ्रांस को नीस एवं सेवाय स्थान प्राप्त हुए।

10 मई, 1776 ई. को मिलान पर आक्रमण कर उस पर अधिकार किया।

इसके पश्चात् उसने माण्टोआ में आस्ट्रियन सेना को परास्त किया। आस्ट्रिया को परास्त करने के बाद मीडेना रेगियो, बेलोन और फरारा को संयुक्त कर ट्रासपोडेन गणतन्त्र की स्थापना की।

इन विजयों के उपरान्त उसने पोप को शक्ति का भय दिखाकर उससे टोलेन्टिनों नामक स्थान पर समझौता किया।

इसके बाद उसने वेनिस को जीता और अक्टूबर 1797 ई. में आस्ट्रिया को केम्पोफार्मिया की संधि करने को विवश किया। इटली में नेपोलियन का कार्य समाप्त हो गया था। अतः उसने उत्तरी इटली के समस्त राज्यों को मिलाकर सिस अल्पाइन की स्थापना की।

(3) नेपोलियन का फ्रांस वापस आना–आस्ट्रिया से संधि के बाद जब नेपोलियन फ्रांस वापस आया तो डायरेक्टरों ने उसका भव्य स्वागत किया। पेरिस की जनता ने उसकी नेशनल हीरो (राष्ट्रीय नायक) के रूप में पूजा की। डायरेक्टर उसकी लोकप्रियता से घबरा गये। नेपोलियन इस समय फ्रांस की सर्वशक्तिशाली विभूति था। यदि वह चाहता तो डायरेक्टरी का तख्ता पलट सकता था। अतः डायरेक्टरों ने उसकी महत्वकांक्षा को भड़काया और उसे इंग्लैंड को पराजित करने के लिए मिस्र पर आक्रमण हेतु प्रोत्साहित किया।

(4) मिस्र पर आक्रमण–डायरेक्टरों का विचार था कि इंग्लैंड को पराजित किये बिना फ्रांस की क्रांति सफल नहीं हो सकती है। नेपोलियन उनके विचारों का समर्थक था, अतएव उसने मिस्र की ओर प्रस्थान किया। माल्टा, अलैक्जेंण्ड्रिया पर अधिकार करते हुए वह मिस्र पहुँच गया। पिरामिडों के युद्ध में वह विजयी रहा, परन्तु उसके बाद उसकी स्थिति बिगड़ती चली गयी।

अंग्रेज सेनापति नेल्सन ने नील नदी के युद्ध में नेपोलियन के फ्रांसीसी बेड़े को अपार क्षति पहुँचायी।

(5) सीरिया विजय–मिस्र में घिर जाने पर भी नेपोलियन ने सीरिया विजय की योजना बनायी। आरम्भिक असफलताओं के बाद उसे महत्वपूर्ण सफलता नहीं मिली अतः मिस्र वापस आ जाना पड़ा।

(6) नेपोलियन का फ्रांस वापस लौटना–इस समय नेपोलियन को यह सूचना मिली कि फ्रांस के विरुद्ध यूरोपीय राजाओं ने द्वितीय संघ स्थापित कर लिया है। 21 अगस्त, 1799 ई. को अपने कुछ विश्वस्त साथियों के साथ गुप्त रूप से उसने फ्रांस की ओर प्रस्थान किया। भूमध्यसागर में इंग्लैंड के जल सेनापति नेल्सन को चकमा देते हुए दिसम्बर 1799 में वह फ्रांस वापस आया।

फ्रांस की जनता मिस्र व सीरिया में उसकी असफलता को नहीं जानती थी अतः उसने उसे फ्रांस का रक्षक कहकर सम्बोधित किया। इससे प्रसन्न हो नेपोलियन ने कहा, ''मैं ठीक समय पर आ गया हूँ, अब नाशपाती पक गयी है और मैं उसे तोड़ सकता हूँ अर्थात् मेरी इच्छापूर्ति का उचित समय आ गया है''

(7) नेपोलियन का सत्ता में आना–जब वह आस्ट्रिया विजय से वापस लौटा था, उस समय भी वह शक्तिशाली था, परन्तु, वह सोचता था कि नाशपाती पकी नहीं है (The Pear is not Ripe) परन्तु जब वह मिस्र से वापस आया, नाशपाती पक चुकी थी। कुछ समय तक वह राजनीति से अलग रहकर फ्रांस का सूक्ष्म निरीक्षण करता रहा। इससे डायरेक्टर (Director) और उसके विरोधी निश्चिन्त हो गये परन्तु इस

बीच उसने एबेसिये नामक एक डायरेक्टर से गुप्त समझौता कर लिया। इसके पश्चात् नेपोलियन ने अपने विश्वस्त सैनिकों के साथ धारा सभा (विधान सभा) में भाषण दिया, परन्तु उसके विरोधियों ने कहा कि कि हमको क्रॉमबेल (एक अंग्रेजी अधिनायक) की आवश्यकता नहीं है। उनका कहना था,

''हमको क्रॉमबेल जैसी शृंखला में जकड़ने वाले तानाशह की आवश्यकता नहीं है। इसका अन्त कर दो।

इससे नेपोलियन बहुत घबरा गया परन्तु उसके भाई लूसिये ने उसकी मदद की। बाहर तैनात सैनिक टुकड़ी की मदद से नेपोलियन के विरोधी सदस्य सभा से निकाल दिये गये और नेपोलियन समर्थक सदस्यों ने डायरेक्टरी शासन का अन्त करके कॉन्सुलेट शासन की स्थापना की।

कॉन्सुलेट शासन में 3 काउन्सलों को मिलकर देश के शासन का संचालन करना था तथा एक नवीन संविधान बनाना था। फ्रांस के इतिहास की यह रक्तहीन क्रांति Coup, D Etate, or Change of the State के नाम से विख्यात है जो 3 कॉन्सुल नियुक्त हुए, वे थे –नेपोलियन, एबेसिये तथा डूको।

इनमें से नेपोलियन प्रधान कॉन्सुल था।

तीनों कॉन्सुलों ने गणतन्त्र स्वतन्त्रता के सिद्धांतों तथा प्रतिनिधि शासन प्रणाली के प्रति शक्ति की शपथ ली। अतः सभी लोग Coup D Etat (कूप द इतात) से प्रसन्न हुए। नेपोलियन ने एक बार कहा था, ''मुझे शक्ति से प्रेम है, उसी प्रकार जैसे एक संगीतकार को अपने वायलिन से होता है, मैं एक कलाकार के रूप में उससे प्रेम करता हूँ।

वास्तव में, वह ऐसी स्थिति में पहुँच गया था जैसे कि एक संगीतज्ञ एक वायलन को अपनी रुचि के अनुसार जब चाहे जैसा चाहे, बजा सकता था।

इस प्रकार फ्रांस में नेपोलियन का उत्थान न केवल यूरोप अपितु विश्व की एक महानतम घटना थी। नेपोलियन एक बौना व्यक्ति था मगर उसने अपने अदम्य साहस, शौर्य, प्रतिभा एवं कूटनीति से अपने व्यक्तित्व को विशालता प्रदान की। इंग्लैंड की 1688 ई. की रक्तहीन क्रांति की तरह यह भी फ्रांस की 1799 ई. की एक रक्तहीन एवं फ्रांस के लिए गौरवपूर्ण क्रांति थी। इतिहासकार मादलें ने लिखा है, ''सत्य तो यह है कि 1795 ई. के बाद हर व्यक्ति और हर घटना फ्रांसीसी राष्ट्र को एक व्यक्ति के अधिनायकत्व में सौंपने हेतु सहयोग कर रही थी, यह एक व्यक्ति था नेपोलियन बोनापार्ट। नेपोलियन ने स्वयं लिखा है, मैं उस समय पैदा हुआ जब मेरा देश नष्ट हो रहा था।'' वस्तुतः नेपोलियन एक क्रांति पुत्र था। जो कि क्रांति काल में ध्रुव की तरह अवतरित हुआ। उसने क्रांति की बागडोर डायरेक्टरी जैसे भ्रष्ट एवं अयोग्य हाथों से छीनकर अपने हाथ में सँभाली और क्रांति को विराम एवं नई दिशा दी। नेपोलियन का यह कथन सत्य था कि रूसो ने क्रांति को जन्म दिया परन्तु उसके साथ यह भी सत्य है कि क्रांति ने नेपोलियन को जन्म दिया।

प्रथम कॉन्सुल के रूप में नेपोलियन के सुधार

प्रथम कॉन्सुल बनने के समय नेपोलियन के सामने बहुत कठिन समस्याएँ थीं परन्तु उसने बड़ी योग्यता से इन समस्याओं को हल किया। वह कहा करता था, जनता

समानता चाहती है, स्वतन्त्रता नहीं। उसने इसी सिद्धांत के मद्देनजर फ्रांस को एक संगठित शासन प्रदान किया।

फ्रांस में अभी तक स्थापित शासनों में डायरेक्टरों का शासन सर्वाधिक भ्रष्ट एवं अयोग्य था, इसीलिए नेपोलियन के सत्ता–प्राप्ति का कोई विरोध सामने नहीं आया।

टिप्पणी

कॉन्सुलेट काल में निर्मित संविधान क्रांतिकाल का चतुर्थ संविधान था, परन्तु नेपोलियन ने इसमें आवश्यक संशोधन किये, क्योंकि वह कार्यपालिका के अध्यक्ष को सम्पूर्ण शक्ति देना चाहता था। उसके सुधार निम्नलिखित हैं–

(1) शासन का स्वरूप–नेपोलियन स्वयं को क्रांति पुत्र कहता था। वह स्वतन्त्रता, समानता तथा भ्रातृत्व भाव का समर्थक था परन्तु उसने स्वतन्त्रता की अपेक्षा समानता को अधिक महत्व दिया। शासन सुधार हेतु उसके कार्य निम्नलिखित है–

(1) एक केन्द्रीयकृत प्रशासन की स्थापना की। स्थानीय प्रशासन पर उसने पूर्ण अधिकार स्थापित किया। प्रत्येक विभाग का एक अधिकारी होता था। जो प्रीफेक्ट कहलाता था। प्रत्येक जिले में उप प्रीफेक्ट की नियुक्ति की गयी। कम्यूनों ने मेयर की नियुक्ति का कार्य अपने हाथ में लिया।

(2) नियुक्तियों का आधार योग्यता रखा गया।

(3) जनता से लेखन, भाषण तथा प्रशासन आदि की स्वतन्त्रता को छीनने का प्रयास किया यहाँ तक कि नाटकों के ऊपर प्रतिबन्ध लगा दिया।

(4) न्यायपालिका तथा सेना पर पूर्ण नियन्त्रण स्थापित किया गया।

(5) समानता की स्थापना हेतु उच्च व निम्न वर्ग का भेद समाप्त किया।

(6) क्रांति काल में भागे हुए सामन्तों और पादरियों को क्षमा किया।

(7) अपने परामर्शदाताओं की अपेक्षा अपने मस्तिष्क को अधिक महत्व दिया।

यद्यपि उसने शासन की अव्यवस्थाओं को समाप्त किया परन्तु वास्तविकता में उसके समय में शासन का स्वरूप निरंकुश था, अर्थात् जब्त प्रभुत्व का ढकोसला बनाये रखा और बूर्बो राजाओं की भाँति व्यवहार किया।

(2) आर्थिक सुधार–क्रांतिकाल में व्यापार, कृषि, कर व्यवस्था, मुद्रा आदि की स्थिति खराब थी। इस व्यवस्था को सुधारने के लिए उसने निम्नांकित कार्य किये–

(1) मितव्ययिता की ओर ध्यान दिया।

(2) कर वसूली का कार्य केन्द्रीय सरकार को दिया।

(3) बहुत–से देशों में तैनात अपनी सेनाओं का खर्चा उन्हीं के जिम्मे सौंपा ।

(4) बेकारों को कार्य दिलाने का प्रबन्ध किया।

(5) 1800 ई. में बैंक ऑफ फ्रांस की स्थापना की।

(6) सामंतों और चर्च की भूमि छीनकर किसानों में बाँट दी गयी, वह उन्हीं के पास रहने दी।

(7) व्यावसायिक संघों को तोड़ दिया गया। इससे मजदूरों में खुली प्रतियोगिता का आरम्भ हुआ।

(8) पूँजीपतियों व श्रमजीवियों के झगड़ों को निपटाने के लिए व्यावसायिक समिति का निर्माण किया।

नेपोलियन का उद्देश्य आर्थिक समता की स्थापना नहीं था। वह कहता था, ''प्रत्येक प्रकार की समता का सिद्वांत असम्भव है। ''

(3) सेना में सुधार–

(1) नेपोलियन ने सेना संबंधी सुधारों के अन्तर्गत सैनिक सेवा अनिवार्य की।

(2) अपनी सेनाओं का खर्चा, दूसरे देशों के राजस्व से चलाने का प्रयास किया। परन्तु प्रमाण प्राप्त होते हैं कि उसकी सेना की आन्तरिक स्थिति अच्छी नहीं थी और उसमें कई राष्ट्रीयताओं के लोग शामिल थे। इससे सेना में आन्तरिक निर्बलता बढ़ गयी थी।

(4) दण्ड विधान–नेपोलियन ने दण्ड व्यवस्था में कठोरता बरती जिसका विवरण अग्रवत है –

(1) साधारण अपराधों के लिए भी संपत्ति का अधिग्रहण, दीर्घकालीन कारावास और मृत्युदण्ड दिये जाते थे।

(2) अपराधी, वकीलों से अपनी पैरवी नहीं करा सकते थे।

(3) मुद्रित पत्रों का प्रचलन पुनः आरम्भ किया।

(4) जूरी प्रथा प्रारम्भ की।

(5) मुकदमों की सुनवायी गुप्त नहीं हो सकती थी।

परन्तु नेपोलियन ने जनता को कोई मौलिक अधिकार नहीं दिये और इस प्रकार क्रांति के सिद्धांतों को तिलांजलि दी।

(5) शिक्षा संबंधी सुधार–नेपोलियन का विचार था कि शिक्षा संस्थानों पर राज्य का पूर्ण नियन्त्रण होना चाहिए। एक निश्चित योजना के आधार पर शिक्षा देने हेतु उसके कार्य निम्नलिखित हैं–

(1) शिक्षा का राष्ट्रीयकरण अर्थात प्रशिक्षित अध्यापकों को सरकार वेतन देने लगी। पाठ्यक्रम सरकार निर्धारित करती थी एवं अध्यापकों व विद्यार्थियों को राजभक्ति की शपथ लेनी पड़ती थी।

(2) राजनीतिशास्त्र, दर्शनशास्त्र और इतिहास के अध्ययन को प्रोत्साहन नहीं दिया गया।

(3) प्राथमिक स्कूलों का प्रबन्ध कॅम्यून के हाथ में रखा गया।

(4) ग्रामर स्कूलों में लैटिन और ग्रीक शिक्षा दी जाती थी।

(5) हाई स्कूलों में उच्च शिक्षा दी जाती थी।

(6) व्यावसायिक स्कूलों की स्थापना की गयी।

(7) सैनिक शिक्षा हेतु मिलेट्री स्कूलों की स्थापना की गयी।

(8) अध्यापकों को प्रशिक्षित करने के लिए नार्मल स्कूल की स्थापना की।

(9) समस्त शिक्षण संस्थाएँ पेरिस विष्वविद्यालय के अधीन की गयीं।

टिप्पणी

(6) धार्मिक समझौता—नेपोलियन, पादरी वर्ग के विरोध का अन्त करना चाहता था। वह धर्म में विश्वास नहीं करता था, परन्तु उसका मत था "Religion is the voice of life it is the mystry of the social order."1

उसने पोप से धार्मिक समझौता (Concordat) किया। उसके अनुसार—

(1) पोप ने स्वीकार किया कि क्रांति काल में अधिग्रहीत संपत्ति वापस नहीं ली जायेगी।

(2) पोप ने शिक्षा पर राजकीय नियन्त्रण स्वीकार किया।

(3) गिरजाघरों पर राज्याधिकार हुआ।

(4) विशपों की नियुक्ति का अधिकार पोप राज्य की अनुशंसा पर करेगा।

(5) चर्च पदाधिकारियों का खर्च चर्च से मिलेगा।

(6) पादरी राजभक्ति की शपथ लेंगे।

(7) नेपोलियन ने कैथोलिक धर्म को राजधर्म स्वीकार किया।

धर्म संबंधी नवीन नीति के अंतर्गत पादरियों ने उसे कॉन्सटेन्टाइन (Constantine) की उपाधि दी।

(7) नेपोलियन की विधि संहिता—नेपोलियन ने एक बार स्वयं कहा था, ''मेरी सैकड़ों विजय यात्राएँ नहीं बल्कि मेरा विधान मुझे दीर्घकाल तक अमरता प्रदान करेगा।''

उसकी विधि संहिता समाजवादी सिद्धांतों पर आधारित न होकर उदार सिद्धांतों पर आधारित थी। इस संहिता के अनुसार

(1) परिवार को पवित्र इकाई स्वीकार किया।

(2) परिवार में पिता को सर्वोपरि स्थान दिया गया।

(3) पैतृक संपत्ति पुत्रों में समान रूप से विभाजन का प्रावधान किया।

(4) उसने स्त्रियों को कम महत्व दिया।

(5) सिविल मैरिज तथा तलाक को स्वीकार कर लिया।

(6) सरकार देश हित में मुआवजा देकर व्यक्तिगत संपत्ति का अधिग्रहण कर सकती थी।

(7) उसने ब्याज की दर निश्चित कर दी।

यद्यपि विधिविदों ने उसे Justinion (जस्टीनियन) की उपाधि दी परन्तु उसने समाजवादी सिद्धांतों की उपेक्षा की। यह कहा जाता है, "Yet however imperfect the civil code may be. it is better than no code at all."

(8) प्रतिष्ठा मण्डल—नेपोलियन ने राज्य की विशिष्ट सेवा करने वाले व्यक्तियों को सम्मानित तथा पुरस्कृत करने के लिए उपाधि कायम की। जो लीजियन ऑफ आनर (Legion of Honour) कही जाती है। इसमें जन्म के आधार पर नहीं, बल्कि योग्यता के आधार पर कुलीनों को सम्मिलित किया जाता था। सम्मानित लोगों को उसने भूमिखण्ड देकर एक नवीन कुलीनता का विकास किया। यह लोकतन्त्र की भावना, समता के सिद्धांत विरोधी थी परन्तु नेपोलियन आलोचनाओं की परवाह नहीं करता था।

(9) निमार्ण कार्य—नेपोलियन ने पेरिस को सुन्दर बनाने के लिए कला को प्रोत्साहन दिया। अपनी सैनिक, व्यावसायिक तथा यातायात की आवश्यकताओं के अनुसार उसने सड़कें बनवायीं, नहरों तथा बाँधों का निर्माण करवाया तथा पेरिस में अनेक सुन्दर इमारत बनवायीं।

मूल्यांकन—एक बार नेपोलियन ने कहा था, मुझे फ्रांस का राजमुकुट धरती पर पड़ा मिला और तलवार की नोंक पर मैंने उसे उठा लिया।

उसके यह शब्द उसकी गृह और विदेश नीति दोनों का ही सारांश है अर्थात् उसने जो भी सुधार किये, तलवार की नोंक पर ही किये। फिर भी नेपोलियन के जीवन का यह काल फ्रांस की जनता के लिए व देश की समृद्धि के लिए लाभदायक सिद्ध हुआ। इस कार्य में उसे कम जोखिम नहीं उठाने पड़े। उसने एक ओर राजतन्त्रवादियों को निराश किया, वहीं आवश्यकतानुसार क्रांति के सिद्धांतों की हत्या करते हुए, क्रांति समर्थकों को भी रुष्ट किया। इसी कारण जैसे—जैसे उसकी ख्याति एवं सत्ता की वृद्धि हुई, उसका विरोध बढ़ने लगा। यहाँ तक कि उसकी हत्या के षड्यन्त्र किये गये। उसने अपने प्रभावोत्पादक व्यक्तित्व से उनका सामना किया। एक बार उसने कहा था, ''मैं ऐसे षड्यन्त्रकारियों से नहीं डरता जो 9 बजे सोकर उठें और साफ कमीजें पहनें। 1804 ई. में जनरल बोनापार्ट फ्रेंच सम्राट नेपोलियन प्रथम बनने में सफल हुआ।

इसमें कोई दोराय नहीं कि नेपोलियन ने प्रथम कॉन्सुल के रूप में कठोर परिश्रम कर शासन के प्रत्येक क्षेत्र में पर्याप्त सुधार किये। उसकी विधि संहिता पर प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए फिशर ने लिखा है कि ''जो कार्य जर्मनों ने 15 वर्ष तक अथक् परिश्रम करके किया, नेपोलियन ने दुस्साहस से वही कार्य चार महीने में कर दिखाया।'' इतिहासकार हेगे ने भी लिखा है, फ्रांस की जनता उस समय स्वतन्त्रता, समानता व भ्रातृत्व की भावना की स्थापना चाहती थी। नेपोलियन ने यह कार्य करके स्वयं को क्रांति का वास्तविक पुत्र एवं उत्तराधिकारी प्रमाणित किया। ''यह सर्वाविदित है कि जब नेपोलियन 1799 ई. में प्रथम कॉन्सुल बना, फ्रांस में सब कुछ अव्यवस्थित था। प्रो. बालकृष्ण पंजाबी के अनुसार, ''नेपोलियन ने अपने सुधारों द्वारा सारी अव्यवस्था को समाप्त करके शासन तन्त्र को अधिक गतिशील, सुदृढ़ और कुशल बनाया। उसके सुधारों से राष्ट्रीय जीवन में एक नई चेतना का संचार हुआ और देश एक नये विकास के रास्ते पर चल पड़ा।''

तिलसिट की संधि : नेपोलियन का चरमोत्कर्ष

1802 ई. में नेपोलियन को जन्म भर के लिए कॉन्सुल बना दिया गया परन्तु वह इससे सन्तुष्ट नहीं हुआ और अन्ततः उसके संकेत पर 1804 में सीनेट ने उसको सम्राट घोषित कर दिया। सम्राट बनने के बाद उसने अपनी साम्राज्यवादी प्रवृत्ति को पूरा करने का अथक् प्रयास किया। 1806 ई. तक वह पवित्र रोमन साम्राज्य का अन्त करने और आस्ट्रिया के सम्राट के पद एवं शक्ति का नाश करने में सफल हुआ। 25 अक्टूबर, 1806 को प्रशा को भी उसने पराजित किया और अब केवल ब्रिटेन और रूस ही शेष थे, जिन्हें पराजित करना आवश्यक था। 14 जून, 1807 को फ्रीडलैंड (Friedland) के मैदान में उसने रूसी सम्राट को पराजित किया, अतः रूसी सम्राट को संधि करने के लिए विवश होना पड़ा।

इस युद्ध का परिणाम तिलसिट की संधि 8 जुलाई, 1807 ई. के रूप में सामने आया। इस संधि के तीन भाग थे—

(1) प्रमुख संधि,

(2) गुप्त संधि,

(3) प्रशा के साथ संधि।

(1) प्रमुख संधि–इस संधि के अनुसार नेपोलियन तथा रूस के जार एलेक्जैण्डर ने यूरोप को आपस में बाँट लिया। नेपोलियन को पश्चिमी यूरोप में तथा रूस के जार एलेक्जैण्डर को पूर्वी यूरोप में इच्छानुसार कार्य करने की स्वतन्त्रता प्राप्त हुई।

नेपोलियन द्वारा निर्मित नवीन राज्यों को जार ने स्वीकार किया।

(2) गुप्त संधि–इसके अनुसार दोनों सम्राटों में निम्नलिखित मुद्दों पर सहमति हुई–

(1) इंग्लैंड अपने सामुद्रिक अधिकारों को त्याग दे तथा फ्रांस से संधि के लिए रूसी मध्यस्थता स्वीकार करे। यदि वह इसे स्वीकार न करे तो रूस और फ्रांस मिलकर युद्ध की घोषणा करें।

(2) इसी प्रकार रूस और तुर्की के मध्य मध्यस्थता फ्रांस करेगा और यदि तुर्की इसे अस्वीकार करे तो दोनों मिलकर इसे आपस में बाँट लेंगे।

(3) प्रशा के साथ संधि–नेपोलियन ने प्रशा के अनेक प्रदेशों को छीन लिया।

(1) पोलैंड के भाग को छीनकर ग्राण्ट डची ऑफ वारसा का निर्माण किया।

(2) प्रशा से राइन नदी के किनारे के प्रदेश छीनकर वेस्टफेलिया नया राज्य स्थापित किया।

(3) प्रशा पर हर्जाना लादा गया।

(4) प्रशा की सैन्य संख्या नियत कर दी गयी।

(5) प्रशा ने वचन दिया कि वह अपने बन्दरगाहों को अंग्रेजी व्यापार के लिए बन्द कर देगा।

1807 की तिलसिट संधि के समय नेपोलियन बोनापार्ट अपनी शक्ति की पराकाष्ठा पर था।

तिलसिट संधि के अधोलिखित परिणाम हैं–

(1) यूरोप के राजाओं के तृतीय संघ का पूर्ण विनाश हो गया।

(2) नेपोलियन विश्व का सर्वशक्तिशाली सम्राट माना जाने लगा।

(3) यूरोप के मानचित्र में उसने जितने परिवर्तन किये, उनका स्वामी उसने अपने संबंधियों को बनाया।

(4) प्रशा तथा आस्ट्रिया की शक्ति का पूर्ण विनाश किया।

(5) पोप ओर डेनमार्क का शासक उसके मित्र थे, व स्विट्जरलैंड पर उसका प्रभाव था।

तिलसिट की संधि का महत्व

तिलसिट की संधि ने नेपोलियन को उसके उत्कर्ष की चरम सीमा पर पहुँचा दिया। 1807 ई. में विश्व की कोई भी शक्ति उससे टकराने की सोच भी नहीं सकती थी। अब वह उस फ्रांस का सम्राट था। जिसकी सीमाएँ पो नदी के उत्तरी सागर तक एवं

पिरेनीज से लेकर राइन तक विस्तृत थी। इनके अलावा वह राइन संघ का संरक्षक, इटली का राजा और स्विस गणतन्त्र का अध्ययक्ष था। रूस उसका मित्र था और वेस्टफेलिया, हॉलैंड तथा नेपल्स में उसके संबंधी शासक थे। वस्तुतः 1807 ई. में वह एक ऐसा विश्व विधाता था जिसकी तूती सारे यूरोप में बोलती थी। यदि शक्ति के इस चरमोत्कर्ष पर वह मृत्यु को प्राप्त करता तो निसन्देह इतिहास उसे एक महानतम, अविजयी एवं चमत्कारिक व्यक्तित्व के रूप में सदैव याद करता। परन्तु विधाता उससे भी ऊपर था और उसने ऐसा न होने दिया।

भारत के गुप्त सम्राट व समुद्रगुप्त की तरह 1810 ई. तक नेपोलियन ने यूरोप में दिग्विजय प्राप्त कर ली थी। इस दृष्टि से उसे यूरोप का समुद्रगुप्त कहा जा सकता है।

इस समय इंग्लैंड को छोड़कर समस्त यूरोप का वह नियामक था। जब उसने देखा कि एक शक्तिशाली नौसेना के अभाव में प्रत्यक्ष रूप में इंग्लैंड पर विजय नहीं पायी जा सकती तो उसने इंग्लैंड को जीतने का, अप्रत्यक्ष तरीका महाद्वीप व्यवस्था कायम कर निकाला। यहीं से उसके पतन के दिन आरम्भ हो गये। प्रो. टॉमसन ने लिखा है, ''तिलसिट की संधि को महाद्वीपीय प्रणाली की दृष्टि से अच्छी तरह समझा जा सकता है, क्योंकि नेपोलियन ने यूरोप के वाणिज्य को इंग्लैंड के विरुद्ध सैनिक आक्रमण के रूप में बदल दिया।। ''

महाद्वीपीय व्यवस्था अथवा व्यापारिक बहिष्कार

1805 ई. में आस्ट्रिया, 1806 ई. में प्रशा और 1807 ई. में रूस को पराजित करने के बाद फ्रांस के शत्रुओं में इंग्लैंड ही शेष था। जिसका मानमर्दन नेपोलियन नहीं कर पाया था, परन्तु वह इस कार्य के लिए पूर्ण स्वतन्त्र था।

(1) महाद्वीप व्यवस्था का आरम्भ–ट्राफल्गर की पराजय के बाद नेपोलियन ने यह समझ लिया था कि, युद्ध में अंग्रेजों को परास्त नहीं किया जा सकता। वह इंग्लिश चैनल को Ditch (शैतानी) समझता था, जिसे पार करना मुश्किल था। एक बार उसने कहा था, हमारे लिए ''पेरिस से दिल्ली तक सेनाएँ भेजना सरल है, परन्तु बूलो से फोकस्टोन तक सेनाएँ भेजना कठिन है।'' जलमार्ग से इंग्लैंड को पराजित करने के स्थान पर अब वह उसे स्थल मार्ग द्वारा जीतना चाहता था। ऐसा कहा जाता है,

इंग्लैंड को परास्त करने के लिए उसने जिस नीति का अवलम्बन किया और जिसका विशाल स्तर पर प्रयोग किया, उसे इतिहास में महाद्वीपीय व्यवस्था अथवा महाद्वीपीय नाकेबन्दी कहा जाता है।

इंग्लैंड की शक्ति का स्रोत उसकी सम्पत्ति का स्रोत उसके कारखाने व उसका वाणिज्य था, जिनके माध्यम से विश्व बाजारों में उसका बोलबाला था। इसीलिये माण्ट गैलार्ध ने उसे सुझाव दिया कि ''इंग्लैंड के व्यापार को नष्ट कर उसके हृदय को चोट पहुँचायी जा सकती है।''

नेपोलियन ने उसकी इस योजना को स्वीकार किया और इंग्लैंड के वाणिज्य पर रोक और बाजारों को बन्द करके उसकी समृद्धि का नाश करने का विचार किया। उसका विचार था कि इससे निर्माणशालाएँ बन्द हो जायेंगी। मजदूर भूखों मरने की स्थिति में आ जायेंगे एवं श्रमिक व औद्योगिक तथा व्यावसायिक वर्ग इंग्लैंड की सरकार पर दबाव डालेंगे। आवश्यकता हुई तो विद्रोह पर उतारू हो जायेंगे और अन्ततः इंग्लैंड को घुटने टेकने पर विवश होना पड़ेगा।

(1) व्यापार बहिष्कार के प्रारम्भिक कार्य–नेपोलियन ने नेपल्स तथा प्रशा के होनोवर राज्य को सर्वप्रथम इस बात के लिए तैयार किया कि, वे अंग्रेजी माल का बहिष्कार करेंगे।

(2) महाद्वीपीय युद्ध का प्रारम्भ–

(i) बर्लिन आदेश–21 नवम्बर, 1806 ई. को नेपोलियन ने बर्लिन आदेश की घोषणा की। इस घोषणा द्वारा इंग्लैंड का आर्थिक घेरा डाल दिया गया।

इस आदेश के द्वारा हॉलैंड, नेपल्स तथा यूरोप के अन्य देशों को आदेश दिये गये कि–

(अ) ब्रिटेन के साथ कोई देश व्यापार न करे।

(ब) किसी भी देश में इंग्लैंड का जो माल मिले, उसे जब्त कर लिया जाये।

(स) इंग्लैंड एवं उपनिवेशों से आने वाला कोई भी जहाज मित्र देशों के बन्दरगाहों में प्रविष्ट न हो।

(ii) वर्साय आदेश–25 जनवरी, 1807 ई. को वर्साय आदेश के द्वारा नेपोलियन ने प्रशा तथा हनोवर के समुद्र तटों पर अंग्रेजी व्यापार के विरुद्ध व्यापार प्रतिबन्ध लगा दिये।

(iii) आर्डर इन कॉसुल–नेपोलियन के आदेशों का उत्तर इंग्लैण्ड ने Order in Council जारी करके दिया और घोषित किया कि किसी जहाज में फ्रांस तथा उसके उपनिवेशों का बना हुआ माल पाया जायेगा, तो वह जब्त कर लिया जायेगा। यह भी कहा गया कि घोषणा के पूर्व जो जहाज चल चुके हैं, या तो वे वापस चले जायें या अंग्रेजी बन्दरगाहों में उपस्थित हों। विदेशी व्यापार को बरकरार रखने के लिए इंग्लैंड ने तटस्थ राज्यों को उनके माल पर कम चुंगी लेने का लालच दिया और तटस्थ देशों के जहाजों को हर प्रकार की सुविधा देने का आश्वासन दिया।

(iv) मिलान आदेश–इंग्लैंड के आदेशों के प्रत्युत्तर में दिसम्बर 1807 ई. में नेपोलियन ने नयी आपत्तियाँ जारी कीं और घोषित किया कि, जो जहाज अंग्रेजों को अपनी तलाशी देगा या अंग्रेजी बन्दरगाहों में उपस्थित होगा, उसका माल जब्त कर लिया जाएगा।

(v) फाउन्टेन ब्ल्यू आदेश–नेपोलियन द्वारा 1810 ई. में पारित यह आदेश सर्वाधिक कठोर था। उसके द्वारा जब्त अंग्रेजी माल को खुले आम जलाने और अवैध ढंग से व्यापार में लिप्त लोगों को दण्ड देने का प्रावधान किया गया।

महाद्वीपीय व्यवस्था को सफल बनाने के लिए नेपोलियन के प्रयास

महाद्वीपीय व्यवस्था की विशेषता यह थी, कि इंग्लैंड की समृद्धि का नाश करने के लिए उसे सर्वत्र और विस्तार से लागू किया जाये। इस बात की आवश्यकता थी कि महाद्वीप में इंग्लैंड के माल का आना पूर्ण रूप से रोका जाये। नेपोलियन जानता था, कि यदि कहीं छोटा–सा भी छिद्र रह जाये अर्थात् पुर्तगाल, स्पेन तथा इटली में यदि इंग्लैंड को समुद्र तट की एक छोटी–सी पट्टी भी मिल गयी तो इंग्लैंड को रोका नहीं जा सकता। अतः उसने फूँक–फूँक कर कदम रखा। इसका परिणाम यह रहा कि 1807 से 1814 ई. तक संघर्ष का काल रहा।

फ्रांस तथा उसके द्वारा अधिकृत देशों के बन्दरगाहों को बन्द करने से नेपोलियन का उद्देश्य पूरा नहीं हो सकता था। अतः आवश्यक था कि उसे यूरोप के प्रत्येक तटवर्ती देश का समर्थन प्राप्त हो। शान्तिमय उपाय काम न आने पर वह बल प्रयोग करने के लिए भी तैयार था। रूस, डेनमार्क, आस्ट्रिया, पोप के राज्य, इटली आदि पर उसने दबाव डालकर अपनी योजना को सफल बनाने की कोशिश की। इसका परिणाम यह हुआ कि उसको अनन्तकालीन संघर्षों में उलझना पड़ा। उसे पुर्तगाल पर आक्रमण करना पड़ा। डेनमार्क से संघर्ष करना पड़ा। हॉलैंड को फ्रांस में जबरन मिलाना पड़ा, परन्तु इसके बावजूद भी उसकी योजना सफल नहीं हो सकी।

महाद्वीपीय योजना की असफलता के कारण

अपने आरम्भिक काल में यह योजना कुछ सफल हुई परन्तु असम्भव प्रतीत होने वाली इस योजना का दुखद अन्त हुआ। इसके मूल में निम्न कारण निहित थे–

(i) प्रत्येक देश से यह आशा करना व्यर्थ था, कि वह असंख्य कष्ट उठाकर भी इस योजना का पालन करेगा।

(ii) जहाजी बेड़े के अभाव में हजारों मील समुद्र तट की रक्षा करना फ्रांस के लिए असम्भव था।

(iii) इंग्लैंड में अन्न का अभाव था। इसकी पूर्ति नेपोलियन ने ही की। उसका विचार था कि भारी मूल्य पर अनाज मंगाने से इंग्लैंड दिवालियापन की ओर अग्रसर होगा, किन्तु यह उसका भ्रम था। यह योजना पूरी तरह कभी लागू न हो सकी। नेपोलियन ने स्वयं कॉफी, जूते, ओवरकोट आदि इंग्लैंड से मंगाये और जब इनका आना बन्द हो गया, तो जनता को अपार कष्ट हुआ।

(iv) नेपोलियन इंग्लैंड से आने वाले माल की चोरबाजारी को रोकने में असमर्थ सिद्ध हुआ।

(v) नेपोलियन की इस योजना को, जिन राज्यों ने विवशतावश स्वीकार किया था, अवसर पाते ही इस योजना का परित्याग कर दिया।

(vi) नाकेबन्दी को सफल बनाने के लिए नेपोलियन को लगातार आक्रमण करने पड़े। हॉलैंड, स्पेन तथा रूस एवं पोप से उसका झगड़ा हुआ। ये सारे देश उसके कट्टर शत्रु बन गये।

इस प्रकार उसकी महाद्वीपीय योजना असफल हुई और अन्त में उसके पतन का कारण बनी।

महाद्वीपीय योजना के परिणाम

इस योजना के निम्नलिखित परिणाम हुए–

(i) प्रत्येक देश में कालाबाजारी के कारण भ्रष्टाचार फैला।

(ii) प्रत्येक देश में मुद्रा का मूल्य गिरा और आर्थिक संकट उत्पन्न हुआ। देशों ने अपनी आर्थिक स्थिति को ठीक करने के लिए जनता पर अधिक कर लगाये व अधिक मूल्यों में ऋण लिये।

(iii) महाद्वीपीय व्यवस्था के कारण ही नेपोलियन ने एक के बाद एक देश को हस्तगत करने के प्रयास किये। निरन्तर चलने वाले युद्धों से जो भयंकर नरसंहार हुआ, उससे नेपोलियन के प्रति सर्वत्र घृणा फैली। यहाँ तक कि फ्रांस में भी उसके

टिप्पणी

विरुद्ध असन्तोष फैला। महाद्वीपीय व्यवस्था के कारण ही 1812 ई. में रूस तथा फ्रांस के संबंध बिगड़ गये। जिसके परिणाम नेपोलियन के लिए घातक सिद्ध हुए और उसके पराभव का आरम्भ हुआ। 1812–1813 एवं 1814 के तीन वर्षों में नेपोलियन की राजनीति और राज्य का भारी–भरकम ढाँचा बालू की दीवार की भाँति बिखर गया।

(iv) नेपोलियन की महाद्वीपीय व्यवस्था एवं उसे जबरन लागू करवाने के प्रयासों की प्रतिक्रियास्वरूप उसके विरुद्ध चतुर्थ संघ (ब्रिटेन, रूस, प्रशा एवं आस्ट्रिया) का निर्माण हुआ। 1813 ई. में नेपोलियन इनसे लिपजिंग के स्थान पर परास्त हुआ। 1814 में पेरिस का पतन हुआ और अन्ततः वाटरलू का युद्ध नेपोलियन के पतन में निर्णायक साबित हुआ।

महाद्वीपीय व्यवस्था का मूल्यांकन

महाद्वीपीय व्यवस्था यूरोप के महानायक नेपोलियन की एक महान भूल साबित हुई। जिसने उसकी प्रतिष्ठा को महानुकसान पहुँचाया। महाद्वीपीय व्यवस्था का एकमात्र प्रमुख परिणाम नेपोलियन का पतन ही था। इस व्यवस्था की असफलता का सबसे प्रमुख दोषी तो वह स्वयं ही था। उसने सभी यूरोपीय देशों को तो इंग्लैंड से व्यापार हेतु रोका और स्वयं इंग्लैंड को अन्न उपलब्ध कराता रहा एवं वहां से कॉफी, जूते एवं ओवरकोट मंगाता रहा। प्रो. लॉज ने उचित ही लिखा है कि ''नेपोलियन की योजना, व्यावहारिक बुद्धि और राजनीतिक उद्देश्यों की सीमा से बाहर थी। उसकी सबसे बड़ी भूल यह थी, कि उसने मान लिया था कि यूरोप के लोग इंग्लैंड को परास्त करने के लिए अपना सब कुछ त्याग देंगे।''

महाद्वीपीय योजना में नेपोलियन ने जिस कठोरता का परिचय दिया, उससे वह न केवल अधीन देशों का अपितु स्वयं फ्रांस की जनता का भी विरोधी बन गया। इंग्लैंड ने महाद्वीपीय व्यवस्था के संकट से उबरने के लिए नवीन मण्डियों की खोज कर ली। जिससे उसकी आर्थिक स्थिति मजबूत हुई। इस प्रकार इंग्लैंड को तो कोई विशेष नुकसान नहीं हुआ परन्तु नेपोलियन ने जरूर अपने विरुद्ध चतुर्थ संघ का निर्माण करा लिया। अतः महाद्वीपीय व्यवस्था का परिणाम था नेपोलियन के विरुद्ध यूरोप के चतुर्थ संघ का निर्माण और चतुर्थ संघ के निर्माण का परिणाम था नेपोलियन का पराभव। अतः मेरियट ने महाद्वीपीय व्यवस्था के बारे में ठीक ही लिखा था कि ''यह राजनीतिक जुआरी (नेपोलियन) का आखिरी दॉव था, जिसे विवश होकर इस भावना से लगाया गया था कि, या तो वह ऊँचा उठ जाये और या फिर समाप्त हो जाये और इस दॉव की परिणति उसकी समाप्ति में ही परिलक्षित हुई।''

नेपोलियन की तुलना भारत के समुद्रगुप्त से की गयी है। परन्तु हमें ध्यान रखना चाहिये कि समुद्रगुप्त अपनी मृत्यु तक दिग्विजयी रहा परन्तु नेपोलियन का महाद्वीपीय व्यवस्था के पश्चात् पतन हो गया। इसके अलावा समुद्रगुप्त की सांस्कृतिक उपलब्धियां भी नेपोलियन की तुलना में अधिक थीं। अतः समुद्रगुप्त नेपोलियन से एक कदम आगे ही था। परन्तु यूरोप के अन्य व्यक्तित्वों की तुलना में मात्र नेपोलियन ही समुद्रगुप्त की तुलना में खड़ा रह सकता है।

नेपोलियन के पतन के कारण

महाद्वीपीय व्यवस्था के परिणामस्वरूप नेपोलियन को जो युद्ध लड़ने पड़े, उनसे उसके पतन की पृष्ठ–भूमि का निर्माण हुआ। अगस्त 1813 ई. तक नेपोलियन के विरुद्ध यूरोप

के राजाओं का चतुर्थ संघ तैयार हुआ और मित्र राष्ट्रों की शक्ति में अत्यन्त वृद्धि हुई। 2 अप्रैल, 1814 ई. को नेपोलियन को सिंहासन से उतार दिया गया, किन्तु एक बार पुनः उसने फ्रांस पर शासन स्थापित करने के प्रयत्न किये परन्तु उसके सुख का समय केवल 100 दिन तक सीमित रहा। इस बीच वियना सम्मेलन आरम्भ हो गया था, अतः सभी मित्र देश पुनः एकत्र हुए और उन्होंने वाटरलू के मैदान में नेपोलियन को अंतिम बार परास्त किया। नेपोलियन को सेंट हैलना द्वीप निर्वासित कर दिया गया। इसके उपरान्त वह 6 वर्ष तक जीवित रहा। अपने निर्वासन के दौरान उसने कहा था,

''वाटरलू के मैदान में मुझे मर जाना चाहिए था, किन्तु दुर्भाग्य की बात यह थी कि जब मनुष्य अपनी मृत्यु की सबसे अधिक कामना करता है, तब वह उसे नहीं मिल पाती।''

नेपोलियन अपने पीछे एक ऐसी कहानी छोड़ गया जिसने यूरोप की शान्ति को बार–बार भंग किया। उसके पतन के निम्नलिखित कारण थे–

(1) शक्ति पर आधारित शासन–नेपोलियन का विशाल साम्राज्य शक्ति पर आधारित था। भीतर से वह खोखला था और हवा के एक साधारण झोंके से गिर सकता था। वह स्वयं इस बात को भली–भाँति जानता था। उसने कहा था, ''वंशानुगत राज्य 20 बार पराजित होने पर भी अपना सिंहासन पुनः प्राप्त कर सकते हैं परन्तु मेरे लिए यह सम्भव नहीं है, क्योंकि मेरा उत्कर्ष शक्ति के आधार पर हुआ है।''

(2) क्रांति की भावना का अन्तर–नेपोलियन का विश्वास था कि मित्र राष्ट्रों के फ्रांस पर आक्रमण को, फ्रांसवासी एकजुट होकर निष्फल कर देंगे परन्तु यह उसका भ्रम मात्र था। 1793 ई. और 1815 ई. के वर्षों में जमीन–आसमान का अन्तर था। फ्रांस की जनता फ्रांस की सुरक्षा हेतु लड़ सकती थी। नेपोलियन की महत्वाकांक्षा के लिए वह अपने प्राण निछावर करने को तैयार नहीं थी। इसका कारण यह था कि, जनता निरन्तर युद्धों से तंग आ चुकी थी और शान्ति चाहती थी। क्रांति की पुरानी भावना का अन्त हो चुका था। नेपोलियन की अनिवार्य सैनिक सेवा से बचने के लिए नवयुवकों ने अपने दांत तोड़ डाले और हाथ के अंगूठे काटे। यह सिद्ध करता है कि नेपोलियन की निरंकुशता से लोग परेशान थे।

(3) अंग्रेजी जहाजी बेड़े की श्रेष्ठता–स्थल का विजेता नेपोलियन, समुद्र में कभी भी अंग्रेजों का मान–मर्दन नहीं कर पाया शक्तिशाली जहाजी बेड़े के कारण ही इंग्लैण्ड ने महाद्वीपीय व्यवस्था का डटकर सामना किया एवं नेपोलियन से अपनी रक्षा की। स्पेन तथा पुर्तगाल के युद्धों में अंग्रेजी जहाजी बेड़े के कारण ही नेपोलियन को पराजय का सामना करना पड़ा।

(4) नेपोलियन की हठधर्मिता–नेपोलियन के हठ एवं दुराग्रह ने उसके पतन में योगदान दिया। पराजित होने पर भी मित्र राष्ट्र उसको फ्रांस की प्राकृतिक सीमाओं में रखने को तैयार थे परन्तु उसने इस प्रस्ताव को स्वीकार नहीं किया। उसने एक बार मेटरनिख से कहा था– "मैं जानता हूँ कि कैसे मरा जाता है किन्तु मैं एक इन्च भूमि भी न दूँगा।" एक बार आक्रमण करके वह पीछे हटने को तैयार नहीं होता था। स्पेन तथा रूस में कठिनाइयों की जानकारी के बाद भी अपनी हठधर्मी के कारण उसने पीछे कदम नहीं हटाया। उसने अपने शुभचिन्तकों की सलाह की उपेक्षा की और अपने मस्तिष्क को आवश्यकता से अधिक महत्व दिया।

(5) उग्र सैनिकवादी—नेपोलियन एक उग्र सैनिकवादी था। परन्तु वह यह नहीं समझ सका कि मात्र सेनाओं के बल पर राज्य अधिक दिन तक नहीं टिक सकते थे।

(6) सेना की आन्तरिक दुर्बलता—नेपोलियन की सेनाओं में आन्तरिक दुर्बलता थी। उसकी सेना में विभिन्न राष्ट्रीयताओं के लोग थे। जिनमें राष्ट्रीयता की भावना का अभाव था और जिनके लिए जय–पराजय का कोई महत्व नहीं था। विदेशी खर्चों पर पलने वाली सेनाएँ क्रमशः अलोकप्रिय होती चली गयीं।

इसी प्रकार उसकी सेनाएं भोजन, कपड़े तथा वेतनाभाव में दुर्बल मनोबल से पीड़ित हो गईं।

(7) विश्वासघात की भावना—नेपोलियन ने एक बार कहा था– "पुर्तगाल तथा स्पेन के साथ व्यवहार में उसने उसी भावना का परिचय दिया और पतन को आमंत्रित किया।"

(8) नेपोलियन के सम्बन्धियों की अयोग्यता—नेपोलियन के सभी संबंधी उच्च पदों पर आसीन थे। नेपोलियन के प्रति कृतज्ञता व्यक्त करने के स्थान पर उन्होंने उसके साथ कृतघ्नता की।

(9) अस्वस्थता—डॉ. सलावन का कहना है कि उसके (नेपोलियन) पतन का सारांश एक शब्द 'थकावट' में व्यक्त किया जा सकता है। उसके कार्य करने की क्षमता उसके स्वास्थ्य में गिरावट के साथ बढ़ती चली गयी।

(10) असीमित महत्वाकांक्षा—नेपोलियन असीमित महत्वाकांक्षा का स्वामी था। क्रांतिपुत्र होने का दावा करने वाला यह व्यक्ति अपनी महत्वाकांक्षाओं की पूर्ति हेतु राष्ट्रीयता की भावनाओं का तिरस्कार करने में संकोच नहीं करता था। यूरोप का अधिपति बनने के लिए उसने अनेक गलत कार्य किये। फोच लिखते हैं, ''वह यह भूल गया कि मनुष्य कभी भगवान नहीं बन सकता।''

(11) राष्ट्रीयता की लहर—नेपोलियन के साम्राज्य में राष्ट्रीयता की भावनाएं फैल रही थी। स्पेन, आस्ट्रिया प्रशा में यह भावना एक नये जीवन का संचार कर रही थी एवं शक्ति प्रदान कर रही थी और नेपोलियन राष्ट्रीयता की इन विद्युतीय तरंगों का सामना करने में असमर्थ सिद्ध हुआ।

(12) पोप से संघर्ष—नेपोलियन ने कैथोलिक विश्व के गुरु पोप को व्यापार बहिष्कार की नीति का पालन न करने का दोषी मानते हुए, उसे बन्दी बना लिया। यह उसकी भयंकर भूल थी क्योंकि इससे समस्त कैथोलिक जगत उसका विरोधी हो गया।

(13) महाद्वीपीय नीति—अपने शत्रु इंग्लैंड को पराजित करने के लिए उसने महाद्वीपीय व्यवस्था का आश्रय लिया। इसके परिणामस्वरूप एक ओर तो यूरोप की जनता वस्तुओं की अनुपलब्धता के कारण नेपोलियन से चिढ़ गयी, दूसरी ओर, उसे अनगिनत संघर्षों में उलझना पड़ा। इस नीति के कारण ही 1812 से 1814 ई. के वर्षों में नेपोलियन की राजनीति और राजनय का ढाँचा गिरकर बालू की दीवार की भांति बिखर गया।

इस प्रकार जिस नेपोलियन के शब्दकोष में असम्भव शब्द नहीं था, उसी के लिए न सिर्फ महाद्वीपीय व्यवस्था असम्भव सिद्ध हुई अपितु उसके पतन का कारण भी बनी।

(14) स्पेन व रूस से संघर्ष—स्पेन व रूस के शासक नेपोलियन के मित्र थे परन्तु नेपोलियन ने विश्वासघात और महत्वाकांक्षा के वशीभूत उन देशों को अपना शत्रु बना लिया और यही युद्ध उसके पतन के प्रमुख कारण बने।

(15) अपने शत्रुओं को अयोग्य समझना—नेपोलियन अपने अहम् भाव के कारण शत्रु सेनापति एवं सेना को हेय दृष्टि से देखता था। उसकी इस भावना के कारण ही उसने वैसी तैयारी नहीं की जैसी अपेक्षित थी।

(16) स्थायी योजना का अभाव—नेपोलियन ने यूरोप के पुनर्निर्माण की जितनी योजनाएं बनायीं, वे अस्थायी थीं। फिशर लिखते हैं कि उसने एक बच्चों के घरोदों की भांति अपनी योजनाओं को निरंतर बनाया और बिगाड़ा। इस अस्थायित्व ने उसका पतन किया। फिशर के मत में कहा जा सकता है, – "नेपोलियन के पतन के नाटक में तीन दृश्य मास्को, लिपजिग तथा फाउन्टेनब्ल्यू प्रमुख हैं। वाटरलू इस नाटक का उपसंहार है।"

इस प्रकार उपरिवर्णित सभी कारणों का योग नेपोलियन के पतन का कारण बना। उसकी महत्वाकांक्षा ने उसे फ्रांस की सत्ता दिलाई, किन्तु अतिमहत्वाकांक्षा उसके पतन का कारण बनी। इसी कारण थामसन ने भी लिखा है कि ''जिन तत्वों ने नेपोलियन के साम्राज्य का निर्माण किया था, उन्हीं तत्वों ने उसका पतन भी किया।''

अपनी प्रगति जांचिए

1. नेपोलियन किस वर्ष एक रक्तहीन क्रांति में भ्रष्ट एवं अयोग्य डायरेक्टरी को हटाकर स्वयं कॉन्सुल बना था?

   (क) 1795 (ख) 1797

   (ग) 1799 (घ) 1801

2. नेपोलियन से पराजित होकर रूसी सम्राट को संधि के लिए विवश होना पड़ा था। यह संधि किस नाम से प्रसिद्ध है?

   (क) प्रशा संधि (ख) तिलसिट संधि

   (ग) न्यूलेंड संधि (घ) इंग्लैंड संधि

2.3 वियना कांग्रेस और यूरोप की संयुक्त व्यवस्था

नेपोलियन बोनापार्ट ने अपने विजय अभियान से समस्त यूरोपीय मानचित्र को परिवर्तित कर दिया था। अतः वियना कांग्रेस के आयोजन का प्रमुख उद्देश्य नेपोलियन की विजयों से उत्पन्न राजनीतिक समस्याओं एवं परिवर्तनों का समाधान करना था। यह एक भव्य आयोजन था। जिसमें आस्ट्रिया सम्राट प्रथम ने पैसा, पानी की तरह बहाया और इस कांग्रेस का सभापति था आस्ट्रिया का प्रधानमंत्री मेटरनिख। इस कांग्रेस में भाग लेने टर्की के अतिरिक्त समस्त यूरोप के शासक अथवा प्रतिनिधि आये थे। कुल मिलाकर 90 बड़े राजा, 63 उपराजा एवं उनके प्रतिनिधि इस सम्मेलन में आये थे। इनमें कुछ प्रमुख अग्र हैं–

- रूस का जार (शासक) अलेक्जेंडर प्रथम, विदेश मंत्री नेसल रोड एवं स्टीन
- प्रशा का शासक फ्रेडरिक विलियम तृतीय एवं हार्डनबर्ग
- इंग्लैंड का विदेश मन्त्री कैसलरे तथा सेनापति वेलिंगटन

- फ्रांस का प्रसिद्ध कूटनीतिज्ञ तैलीरां
- पोप का प्रतिनिधि कार्डिनल गान साल्वी
- डेनमार्क, बुटमबर्ग एवं बावेरिया के शासक व अन्य देशों के प्रतिनिधि

अपनी शोचनीय आर्थिक स्थिति के बावजूद भी आस्ट्रियन सम्राट प्रथम, प्रधानमन्त्री मेटरनिख एवं सम्मेलन के सचिव गेंज ने उपर्युक्त अतिथियों का भरपूर स्वागत–सत्कार किया। शानदार रहने, खाने के प्रबन्ध एवं नृत्य–संगीत के कार्यक्रमों ने आमंत्रित अतिथियों को भाव–विभोर कर दिया। इस समय वियना यूरोप का सर्वाधिक खास शहर बन गया था। ऐसा प्रतीत होता था, कि यहाँ कोई कांग्रेस न होकर किसी उत्सव अथवा विवाह का समारोह चल रहा है। इसका परिणाम यह हुआ कि लोग कांग्रेस के मुख्य उद्देश्य से भटककर ऐश्वर्य–विलास में डूब हो गये। यह विश्व इतिहास का प्रथम अवसर था जबकि यूरोपीय महाद्वीप के समस्त शक्तिशाली शासक कूटनीतिज्ञ एक महत्वपूर्ण विषय पर विचार – विमर्श करने हेतु एक मंच पर एकत्रित हुए थे।

2.3.1 वियना कांग्रेस और इसके प्रमुख उद्देश्य

वियना कांग्रेस में भाग लेने हेतु सभी यूरोपीय राज्यों के प्रतिनिधि 14 सितम्बर, 1814 ई. तक वियना पहुँच चुके थे परन्तु कुछ मतभेदों के कारण कांग्रेस का प्रथम अधिवेशन नवम्बर 1814 ई. में ही आरम्भ हो सका था। प्रो. केटलबी के अनुसार वियना कांग्रेस के तीन प्रमुख उद्देश्य थे–

1. विजयी राज्यों को पुरस्कार देना व हारे हुए राष्ट्रों को दण्डित करना।
2. फ्रांस की क्रांति के पूर्व की यूरोपीय सीमा व्यवस्था को पुनः लागू करना।
3. भविष्य में शान्ति बनाये रखने, युद्धों को टालने के लिए यूरोप में शक्ति सन्तुलन स्थापित करना।

वियना कांग्रेस के आधारभूत सिद्धांत

कांग्रेस की कार्यवाही को दिशा निर्देश देने एवं यूरोपीय व्यवस्था के पुनः निर्माण हेतु, तीन आधारभूत सिद्धांत प्रतिपादित किये गये–

(1) वैध अधिकार का सिद्धांत– इस सिद्धांत के अन्तर्गत यह स्वीकार किया गया कि नेपोलियन द्वारा बलपूर्वक अपदस्थ शासकों को वैधता एवं न्याय के आधार पर पुनः पदस्थ करना। इसके अन्तर्गत न केवल फ्रांस के बूर्बो वंशीय शासक लुई अठाहरवें को मान्यता मिली अपितु स्पेन, नेपल्स एवं सिसली में भी बूर्बो वंशीय शासकों को पुनः प्रतिष्ठित किया गया। इसके अलावा पुर्तगाल, हालैंड एवं जर्मनी के राज्यों को भी उनके पुराने शासकों को लौटा दिया गया।

(2) शक्ति सन्तुलन का सिद्धांत– आगामी शान्ति व्यवस्था को बनाये रखने एवं युद्ध की प्रत्येक सम्भावना को टालने के उद्देश्य से शक्ति सन्तुलन का सिद्धांत प्रतिपादित किया गया। फ्रांस से आगामी किसी भी प्रकार के खतरे को टालने के उद्देश्य से उसके चारों ओर सीमावर्ती राज्यों स्विटजरलैंड, हॉलैंड, बवेरिया एवं सर्डीनिया आदि का राज्य विस्तार कर उन्हें पर्याप्त शाक्तिशाली बना दिया गया। इस शक्ति सन्तुलन के सिद्धांत का महत्व यह है कि यही सिद्धांत ब्रिटेन के विदेश मन्त्री कैसलरे की विदेश नीति का भी प्रमुख आधार बना, जबकि वह यहाँ से वापस ब्रिटेन गया। शक्ति सन्तुलन के सिद्धांत के अनुरूप ही रूस की

बढ़ती शक्ति पर भी अंकुश लगाया गया एवं प्रशा को अत्यधिक शक्तिशाली बनने से रोका गया।

(3) पुरस्कार एवं दण्ड का सिद्धांत – जिन राज्यों ने नेपोलियन को नेस्तानाबूद करने में सहयोग किया था, उन्हें पुरस्कृत करने एवं नेपोलियन के सहयोगी राष्ट्रों को दण्डित करने का भी सिद्धांत प्रतिपादित किया गया। इसी सिद्धांत के आधार पर रूस, आस्ट्रिया और प्रशा को नेपोलियन के साम्राज्य के हिस्से दिये गये। स्वीडन को भी पुरस्कृत किया गया, जबकि डेनमार्क को दण्डित किया गया।

वियना कांग्रेस के सम्मुख प्रमुख समस्याएँ

वियना कांग्रेस के सम्मुख प्रमुख समस्याएँ निम्नलिखित थीं जिनका उसे समाधान करना था–

1. नेपोलियन द्वारा उसकी विभिन्न विजयों के फलस्वरूप छिन्न–छिन्न यूरोपीय व्यवस्था की पुनर्स्थापना करना।
2. नेपोलियन द्वारा विभिन्न राज्यों में स्थापित नवीन वंशों के स्थान पर अपदस्थ वंशों की पुनर्स्थापना।
3. नेपोलियन के साथ युद्ध में सहयोगी मित्र राष्ट्रों के मध्य हुई संधियों की पूर्ति करना।
4. क्रांति काल में एवं मित्र राष्ट्रों के साथ युद्ध के समय नेपोलियन के सहयोगी राष्ट्रों के लिए दण्ड निश्चित करना।
5. क्रांतिकाल में कम हुई, चर्च एवं पोप की प्रतिष्ठा की पुनर्स्थापना करना।
6. फ्रांस को पुनः शक्ति संपन्न बनने से, रोकने के उपाय करना।
7. इस तथ्य ''भविष्य में कोई यूरोपीय राष्ट्र इतना शक्तिशाली न हो जाये कि वह दूसरे राज्यों के लिए भय उपस्थित करे'' को ध्यान में रखते हुए यूरोप में शक्ति सन्तुलन की स्थापना करना।
8. आगामी समय में शक्ति व्यवस्था बनाये रखने हेतु प्रयास करना।
9. क्रांति के परिणामस्वरूप उत्पन्न उदारवादी एवं राष्ट्रीयता की विचारधाराओं को रोकना।

   वियना कांग्रेस के लोग मुख्यतः प्रतिक्रियावादी थे, अतः वह क्रांति के प्रमुख नारे स्वतन्त्रता, समानता एवं भ्रातृत्व के प्रसार को रोकने के लिए पूर्णतः कटिबद्ध थे, इसलिए इस युग को प्रतिक्रियावादी युग भी कहा जाता है।
10. नेपोलियन को परास्त कर मित्र राष्ट्रों द्वारा विजित क्षेत्रों का बँटवारा भी इस कांग्रेस की प्रमुख समस्या थी।

वियना कांगेस के प्रमुख कूटनीतिज्ञ

(1) मेटरनिख (1773–1859 ई.)–नेपोलियन के पतन के पश्चात् यूरोपीय शक्ति का प्रमुख केन्द्र वियना के बनने में मेटरनिख की अहम् भूमिका थी। वियना कांग्रेस का सभापति मेटरनिख ही इसका प्रमुख कर्ताधर्ता था। उसमें जटिलतम समस्याओं को शीघ्र समझने की क्षमता थी। उसका मानना था कि वह यूरोपीय समाज के ढाँचे को

टिप्पणी

सहारा देने हेतु उत्पन्न हुआ है। हेजन के अनुसार, ''वह कहता था कि संसार उसके कन्धों पर टिका हुआ है। मेरी स्थिति की विचित्रता यह है कि जहाँ मैं होता हूँ, वहीं लोगों की भी आँखें रहती हैं।'' मेटरनिख का उक्त कथन वियना कांग्रेस में स्पष्टतः परिलक्षित होता था। वह इस सम्मेलन का सर्वप्रमुख व्यक्ति था।

(2) रूस का जार अलेक्जेंडर प्रथम (1801–1825 ई.)–नेपोलियन को परास्त करने में एवं यूरोप को प्रथम बार नेतृत्व प्रदान करने में निभायी गयी अहम् भूमिका के कारण वियना कांगेस में अलेक्जेंडर प्रथम को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त था। वह एक कल्पनाशील अभिमानी एवं आदर्शवादी व्यक्ति था जिसमें उद्देश्य की दृढ़ता का सर्वथा अभाव था। वह स्वयं को 'मुक्तिदाताओं का मुक्तिदाता' कहता था परन्तु कूटनीतिक क्षमताओं में वह मेटरनिख, केसलरे एवं तैलीरों के समक्ष अपरिपक्व सिद्ध हुआ। मेटरनिख ने उसे परम्पर विरोधाभासी चरित्र का स्वामी मानते हुए कहा था,

''है तो वह पागल परन्तु उसे खुश रखना होगा।'' (A mad man to be honoured.)

(3) कैसलरे (1769–1822 ई.)–ब्रिटेन का विदेश मन्त्री कैसलरे एक प्रभावशाली व्यक्तित्व का धनी एवं कार्यकुशल व्यक्ति था। उसने शक्ति सन्तुलन के सिद्धांत पर विशेष जोर देते हए इंग्लैंड की समुद्री शक्ति की सर्वोच्चता को अक्षुण्ण बनाये रखने का प्रयास किया।

(4) तैलीरां (1754–1838 ई.)–जब मित्र राष्ट्रों की सेनाओं ने मार्च 1814 ई. में पेरिस में प्रवेश किया था, उस समय तैलीरां ने ही नेपोलियन को साम्राज्याच्युत करने का प्रस्ताव पारित कराया था। वियना कांग्रेस में यह फ्रांस के लुई 18वें का प्रतिनिधि था। वह 1799 से 1807 ई. तक फ्रांस का विदेश मंत्री भी रह चुका था। अपनी कूटनीतिक योग्यता के बल पर ही उसने वियना कांगेस में पराजित फ्रांस को प्रतिष्ठा दिलायी। इस कांग्रेस में 'वैधता के सिद्धांत' को तैलीरां के प्रयासों से जबरदस्त सफलता मिली। डी.ए.सी. वार्ड ने तैलीरां की प्रशंसा करते हुए सत्य ही लिखा है कि ''अपने राष्ट्र एवं शासक, जिसका वह प्रतिनिधि था, की उसने गौरवपूर्ण सेवा की।''

प्रशा की ओर से सम्राट फेड्रिक विलियम तृतीय एवं प्रिंस हार्डनबर्ग ने भाग लिया था। हार्डनबर्ग एवं उनका सहायक बरेन हम्वोल्ट इस कांग्रेस में अधिकांश भू–भाग की प्राप्ति एवं प्रशा की प्रतिष्ठा में वृद्धि हेतु प्रयास रत रहे।

वियना कांग्रेस के प्रमुख निर्णय एवं यूरोप का पुनर्निर्माण

वियना कांग्रेस में बनाये गये पूर्व उल्लेखित तीन सिद्वान्तों के आधार पर निर्णय लेते हुए निम्नानुसार यूरोपीय प्रादेशिक व्यवस्था का पुनर्निर्माण किया गया–

(1) फ्रांस–पेरिस की द्वितीय संधि (20 नवम्बर, 1815 ई.) को आधार मानते हुए, फ्रांस की सीमायें वही निर्धारित की गयीं, जोकि 1790 ई. में थी। क्रांन्ति काल एवं नेपोलियन द्वारा विजित सभी क्षेत्र छीन लिये गये। बूर्बो वंश की पुनर्स्थापना करते हुए लुई 18वें को सत्ता सौंप दी गयी। फ्रांस पर 70 करोड़ फ्रैंक का युद्ध हर्जाना (War Indemnity) लादा गया। इस रकम के चुकता होने तक वेलिंगटन के नेतृत्व में फ्रांस में रखी गई सेना का खर्च भी फ्रांस को ही वहन करना होगा। आगामी समय में फ्रांस के किसी भी प्रकार के खतरे के मद्देनजर उसके चारों ओर शक्तिशाली राज्यों की स्थापना की गयी। फ्रांस के उत्तर में हालैंड के साथ बेल्जियम, दक्षिण में सार्डीनिया डिमॉण्ड

के साथ जेनेवा तथा पूर्व में प्रशा के साथ राइन प्रदेश को शक्तिशाली बनाया गया। एक प्रकार से फ्रांस के विरुद्ध चक्रव्यूह की रचना कर दी गयी।

(2) आस्ट्रिया–शक्ति सन्तुलन के मद्देनजर आस्ट्रिया से बेल्जियम का प्रदेश लेकर हॉलैंड दे दिया गया। इसकी क्षतिपूर्तिस्वरूप आस्ट्रिया को इटली से वेनेशिया, लोम्बार्डी, इलीरिया का प्रदेश, डालमेशिया तथा केटटोरो का बन्दरगाह प्राप्त हुआ। पोलैंड से दक्षिणी गेलेशिया एवं बवेरिया से टाइरोल लेकर आस्ट्रिया को दिया गया। जर्मन राष्ट्र सभा का स्थायी प्रधान आस्ट्रिया को बनाया गया। इस प्रकार मेटरनिख के कूटनीतिक प्रयासों से आस्ट्रिया को समुद्र तट मिला, जर्मनी एवं इटली में प्रभाव क्षेत्र का विस्तार हुआ एवं यूरोप में प्रतिष्ठा प्राप्त हुई।

(3) रूस– टर्की से बेसर्बिया का प्रदेश एवं स्वीडन से फिनलैंड का प्रदेश लेकर रूस को दे दिया गया। रूस को पोसेन और थोर्न के स्थान पर डची ऑफ वारसा मिला।

(4) इंग्लैंड– कैसलरे के प्रयत्नों से ब्रिटेन ने कई उपनिवेश प्राप्त किये। फ्रांस से माल्ट, मारिशस और सेण्ट लुसिया, स्पेन से त्रिनिदाद एवं हाण्डूरास एवं हालैंड से 'केप ऑफ' गुड होप एवं गवाइना एवं लंका आदि उपनिवेश लेकर इंग्लैंड को दे दिये गये। हेली गोलैंड तथा आयोनियन द्वीप समूह की संरक्षता भी इंग्लैंड को प्राप्त हुई।

(5) प्रशा– राइन नदी के किनारे प्रशा को शक्तिशाली बनाते हुए फ्रांस पर रोक लगायी गयी। स्वीडिश, पोमेरिया, सेक्सनी का आधा भाग, पोसेन का प्रान्त वेस्टफीलिया की डची का कुछ भाग, डेन्जिग एवं टार्न के नगर प्रशा को प्रदत्त किये गये। प्रशा की अल्सेस एवं लॉरेन फ्रांस से प्राप्त करने की माँग आस्ट्रिया एवं इंग्लैंड द्वारा ठुकरा दी गयी।

(6) जर्मनी– नेपोलियन द्वारा 300 छोटे–छोटे जर्मन राज्यों को मिलाकर राइन संघ का निर्माण किया गया था। अब इस व्यवस्था को तोड़कर 39 राज्यों का एक ढीला–ढाला जर्मन संघ निर्मित किया गया फ्रेंकफर्ट में एक संघीय सभा (Diet) की स्थापना करते हुए आस्ट्रिया को इसका अध्यक्ष बनाया गया।

(7) इटली– जर्मनी की तरह इटली में भी नेपोलियन द्वारा निर्मित इटली के साम्राज्य (Kingdom of Italy) को समाप्त कर पुनः पुराने राजवंशों के अधीन पुराने राज्यों की पुनर्स्थापना की गयी। नवीन व्यवस्था इस प्रकार की गयी।

(अ) नेपल्स और सिसली के राज्यों में बूर्बो वंश की स्थापना की गयी।

(ब) सार्डीनिया को पिडमॉण्ड, जिनोआ तथा सेवाय देकर फ्रांस की दक्षिणी सीमा पर शक्तिशाली राज्य स्थापित किया।

(स) पोप पायस सप्तम् को परारा एवं बोलाना समेत उसके पुराने प्रदेश उसे लौटा दिये गये।

(द) टस्कनी एवं मोडेना क्रमशः आस्ट्रिया के हैप्सबर्ग वंश से सम्बन्धित राजकुमारों फ्रांसिस चतुर्थ एवं ग्रेड ड्यूक फर्डीनेण्ड तृतीय को दिये गये।

(य) परमा का राज्य नेपोलियन की द्वितीय पत्नी (आस्ट्रिया की राजकुमारी) मारिया लुइसा को सौंपा गया।

(द) लोम्वार्डो और वेनेशिया पर आस्ट्रिया का अधिकार कायम किया गया।

इस प्रकार अब इटली छोटे–छोटे हिस्सों का भौगोलिक नाम भर था, यहाँ आस्ट्रिया की प्रधानता स्थापित हो गयी थी।

(8) हॉलैंड– बेल्जियम को इसमें मिलाकर फ्रांस के उत्तरी भाग में शक्तिशाली राज्य की स्थापना की गयी। यहाँ ऑरेन्ज वंश की स्थापना की गयी।

(9) स्पेन व पुर्तगाल– यहाँ भी पुराने राजवंशों की स्थापना की गयी। स्पेन में बूर्बोवंशीय फर्डीनेण्ड सप्तम् एवं पुर्तगाल में जॉन चतुर्थ का शासन पुनः स्थापित किया गया।

(10) स्वीडन और डेनमार्क– डेनमार्क ने नेपोलियन की मदद की थी, अतः दण्डस्वरूप उससे नार्वे छीनकर स्वीडन को दिया गया। स्वीडन से पोमेरेनिया एवं फिनलैंड लेकर क्रमशः प्रशा एवं रूस को दिये गये।

इस प्रकार वियना कांग्रेस ने 1815 ई. में यूरोप का पुनः निर्माण करते हुए यूरोपीय मानचित्र में महत्वपूर्ण परिवर्तन किये।

वियना कांग्रेस का मूल्यांकन

वियना कांग्रेस से क्रांति एवं युद्धों के युग की समाप्ति हुई एवं प्रतिक्रियावादी युग का आरम्भ हुआ। वस्तुतः यह कांग्रेस, नेपोलियन एवं मेटरनिख युग के बीच की कड़ी थी। कैटलबी के अनुसार, ''यूरोप के इतिहास में दो युगों के बीच हुई, सीमा रेखा वियना कांग्रेस इतिहास में एक महत्वपूर्ण मील का पत्थर थी।''

वियना कांग्रेस के दोष–अपने पवित्र उद्देश्य के बावजूद वियना कांग्रेस लोगों की आकांक्षा पर खरी नहीं उतरी। इतिहास और राजनीतिक समीक्षकों ने वियना कांग्रेस की कटु आलोचना निम्नलिखित दोषों के आधार पर की है–

(1) बड़ी शक्तियों की लूट–खसोट–सम्मेलन सचिव गेन्ज के अनुसार वियना कांगेस ने स्थायी शान्ति और शक्ति सन्तुलन जैसी ऊंची–ऊंची घोषणाएँ अवश्य कीं परन्तु वास्तविक धरातल पर लूट –खसोट में हर बड़े देश ने अपनी इच्छानुसार क्षेत्र हथिया लिये। फ्रांस का महत्व भले ही कम नहीं हुआ, परन्तु छोटे–छोटे राज्यों के साथ अन्याय अवश्य हुआ।

(2) राष्ट्रीयता की भावना की अवहेलना–वियना कांग्रेस ने राष्ट्रीयता की भावना की अवहेलना करते हुए यूरोप का पुनर्निर्माण किया। यहाँ तक कि सम्बन्धित क्षेत्र के लोगों की इच्छाओं और भावनाओं की भी अवहेलना की गयी। उदाहरण के लिए–

(1) भाषा, धर्म और संस्कृति की दृष्टि से बेल्जियम एवं हालैंड में काफी भिन्नता थी, अतः बेल्जियम का हॉलैंड में मिलाया जाना अनुचित था।

(2) जर्मनी एवं इटली में आस्ट्रिया के प्रभाव की स्थापना भी राष्ट्रीयता की भावना की अवहेलना थी।

(3) स्वीडन को नार्वे दिया जाना अनुचित था।

(4) पोलिश जनता की राष्ट्रीय भावनाओं की अवहेलना करते हुए, पोलैंड का आस्ट्रिया, रूस तथा प्रशा में विभाजन अनुचित था।

(5) सेक्सनी का कुछ भाग प्रशा को दिया जाना भी गलत था।

(6) फिनलैंड की जनता भी रूस के अधीन रहकर नाखुश थी।

इस प्रकार राष्ट्रीय भावनाओं की अवहेलना कर, यह जो उपर्युक्त व्यवस्था वियना कांग्रेस ने की थी, पूर्णतः अनुचित थी। आगामी समय में इस व्यवस्था के दुष्परिणाम यूरोप को भुगतने पड़े।

(3) प्रतिक्रियावाद का वर्चस्व–वियना कांगेस का एक मूलभूत दोष इसमें प्रतिक्रियावादी तत्वों का हावी होना था। सम्मेलन का अध्ययक्ष मेटरनिख स्वयं ही घोर प्रतिक्रियावादी व्यक्ति था।

विभिन्न राज्यों में प्राचीन राजवंश की पुनर्स्थापना का प्रतिक्रियावादी विचार घड़ी की सुइयों को उलटा घुमाकर समय को पीछे ले जाने की एक तर्कहीन कोशिश थी। इटली को छोटे–छोटे राज्यों में विभाजित कर आस्ट्रिया के संरक्षण में रखा जाना प्रतिक्रियावाद की पराकाष्ठा थी। इससे इटली की जनता में असन्तोष उत्पन्न हुआ। यह व्यवस्था स्थायी न रह सकी। कालान्तर में इटली ने अपना एकीकरण कर आस्ट्रिया के वर्चस्व से मुक्ति प्राप्त की। अतः हेजन ने ठीक ही लिखा है कि ''वियना के राजनयिकों ने उन्हीं तत्वों की उपेक्षा की, जिनसे इस व्यवस्था को स्थायी बनाया जा सकता था। 1815 ई. के बाद यूरोप का इतिहास, वियना कांग्रेस की भूलों को सुधारने का इतिहास है। ''

(4) स्थायित्व के तत्वों का अभाव–स्थायित्व के तत्वों का अभाव वियना कांग्रेस का मूलभूत दोष था। वियना कांग्रेस के सिद्धांत कोरा आदर्श बनकर रह गये। शान्ति की स्थापना के स्थान पर वियना कांग्रेस ने अशान्ति को जन्म दिया। वियना कांग्रेस के नियंता यह भूल गये कि, वे अपने प्रतिक्रियावादी विचारों के अर्न्तगत राष्ट्रीयता की भावना को ताक पर रखकर रेत (बालू) पर यूरोप का नया मानचित्र खींच रहे हैं, जोकि स्थायी हो ही नहीं सकता और 15 वर्षो के पश्चात् ही स्थायित्व के तत्वों के अभाव का परिणाम यूरोप को भुगतना पड़ा, उदाहरण के लिए –

1. 1830 ई. में बेल्जियम हॉलैंड पृथक् हो गये।
2. वियना कांग्रेस की व्यवस्था को 1830 एवं 1848 ई. की क्रांतियों ने चुनौती दी।
3. इटली और जर्मनी ने 1871 ई. में आस्ट्रिया का जुआ उतार कर फेंक दिया।
4. 10 वर्ष पश्चात् ही स्वीडन व नार्वे भी अलग–अलग हो गये।

इस प्रकार वियना कांग्रेस के निर्णय एवं यूरोपीय मानचित्र के पुनः निर्माण की नींव प्रतिक्रियावाद जैसे अलोकप्रिय एवं कमजोर आधार पर रखी गयी थी, अतः यह व्यवस्था स्थायी न रह सकी।

कांग्रेस के कर्ताधर्ता यह भूल गये कि सिर काटे जा सकते हैं, किन्तु स्वतन्त्रता, समानता एवं बन्धुत्व की भावना जैसी लोकप्रिय विचारधारा को दबाया नहीं जा सकता। अन्ततः यूरोप में राजनीतिक चेतना का आविर्भाव हुआ और वियना कांग्रेस का प्रतिक्रियावाद धराशायी हो गया।

2.3.2 यूरोप की संयुक्त व्यवस्था

वियना कांग्रेस के द्वारा यद्यपि यूरोप ने आगामी शान्ति प्रयासों की दिशा में कदम बढ़ा दिये गये थे, तथापि आस्ट्रिया, इंग्लैंड, प्रशा एवं रूस अभी भी फ्रांस की ओर से सशंकित थे। 1789 ई. की क्रांति का भय अभी भी इन राष्ट्रों के मन से निकला नहीं था, अतः ये आगामी किसी भी प्रकार की क्रान्ति एवं अशान्ति की आशंका को पूर्णतः मिटाने हेतु कटिबद्ध थे। यद्यपि यदि हम वियना कांग्रेस के निर्णयों का अवलोकन करें, तो पाते हैं कि फ्रांस के चारों ओर इस तरह का चक्रव्यूह रच दिया गया था, कि अब कम से कम फ्रांस की ओर से तो निकट भविष्य में यूरोप को किसी भी प्रकार के

खतरे की आशंका नहीं थी, परन्तु यहाँ यह कहावत पूर्णतः चरितार्थ हो रही थी कि दूध का जला छाछ को भी फूँक–फूँक कर पीता है। अतः यूरोप के चारों बड़े राष्ट्र– आस्ट्रिया, इंग्लैंड, प्रशा एवं रूस, चाहते थे कि उन्होंने जिस सहयोग का परिचय वियना कांग्रेस में दिया है, वही अर्न्तराष्ट्रीय सहयोग वियना व्यवस्था को बनाये रखने के लिए आगामी समय में भी जारी रखा जाय। यूरोप की संयुक्त व्यवस्था (Concert of Europe) वस्तुतः इसी विचार की परिणति थी।

यूरोप की संयुक्त व्यवस्था के अर्न्तगत अर्न्तराष्ट्रीय सहयोग हेतु वियना सम्मेलन की प्रमुख कूटनीति द्वारा दो अभिनव योजनाएँ निम्नानुसार प्रस्तुत की गयीं–

1. रूस के जार अलेक्जेंडर प्रथम द्वारा प्रस्तुत पवित्र संघ (Holy Alliance) की योजना जो सितम्बर 1815 ई. में कार्यान्वित की गयी।
2. मेटरनिख द्वारा प्रस्तावित एवं कैसलरे द्वारा समर्थित चतुर्राष्ट्र मैत्री (Quadruple Alliance) की योजना, जो नवम्बर 1815 में स्वीकृत की गयी।

चतुर्मुखी मैत्री संघ एवं यूरोप की संयुक्त व्यवस्था

मेटरनिख के प्रस्ताव के आधार पर 20 नवम्बर, 1815 ई. को आस्ट्रिया, प्रशा, रूस और इंग्लैंड ने एक समझौते के द्वारा चतुर्मुखी मैत्री संघ की स्थापना की। इसका उद्देश्य 1 मार्च, 1814 ई. को सम्पन्न, शामों की संधि एवं वियना कांग्रेस के सिद्धांतों पर आधारित व्यवस्था का पालन करना और यूरोप की राजनीतिक स्थिरता एवं शान्ति व्यवस्था को कायम रखना था। समस्याओं के शान्तिमय समाधान हेतु समय–समय पर एकत्रित होकर सम्मेलन करते रहेंगे। इस आधार पर होने वाले चतुर्राष्ट्र संघ के विभिन्न अर्न्तराष्ट्रीय सम्मेलनों की व्यवस्था को ही यूरोप की संयुक्त व्यवस्था कहा जाता है।

उद्देश्य–चतुर्राष्ट्र मैत्री संघ द्वारा यूरोप की जो संयुक्त व्यवस्था स्थापित हुई, उसके प्रमुख उद्देश्य निम्नवत् हैं–

1. इस समझौते का छठा अनुच्छेद इसके उद्देश्यों पर प्रकाश डालते हुए कहता है कि ''संसार के कल्याण हेतु चारों (बड़े) राज्यों के बीच स्थापित घनिष्ठ संबंधों को सुदृढ़ बनाने के लिए तथा समान उद्देश्यों की पूर्ति के लिए समय–समय पर शासकों अथवा उनके मन्त्रियों के सम्मेलन होते रहेंगे। जिनमें वे यूरोप की शान्ति तथा जनता की सुख–समृद्वि के लिए विभिन्न उपायों के विषय में विचार–विमर्श करेंगे।''
2. वियना कांग्रेस द्वारा निर्धारित व्यवस्था को बनाये रखना।
3. फ्रांस की आक्रामक प्रवृत्तियों पर अंकुश लगाना।
4. वेबस्टर के अनुसार इस संघ का एक उद्देश्य मानवता का अधिक से अधिक कल्याण करना था।
5. यूरोप की विभिन्न समस्याओं का पारस्परिक सहयोग द्वारा उचित समाधान निकालना।

संयुक्त व्यवस्था के अंतर्गत होने वाले सम्मेलन–यूरोप की संयुक्त व्यवस्था के अन्तर्गत 1818 ई. से 1822 ई. तक यूरोप में विभिन्न सम्मेलन आयोजित किये गये। इसलिए इसे सम्मेलनों का युग (Era of Congresses) भी कहा जाता है। यूरोप की संयुक्त व्यवस्था के अंतर्गत निम्न सम्मेलन आयोजित किये गये–

(1) एक्स–ला–शेपल का सम्मेलन, 1818 ई. (Congress of Aix-la-Chappelle, 1818 A.D)–यूरोप की संयुक्त व्यवस्था के अर्न्तगत एक्स–ला–शेपल में अक्टूबर 1818 ई. में होने वाले सम्मेलन में सर्वप्रथम फ्रांस के प्रश्न पर विचार किया गया। चूँकि फ्रांस ने वियना कांग्रेस की शर्तो का पालन किया था एवं फ्रांस की सन्तोषजनक शान्तिपूर्ण स्थिति को देखते हुए वहाँ से सेनाएँ हटा ली गयीं। साथ ही फ्रांस के प्रतिनिधि ड्यू–द–रिशलू (Due-de-Richelieu) की यह माँग भी स्वीकार कर ली गयी कि, फ्रांस को भी चतर्राष्ट्र संधि में शामिल किया जाये। इस प्रकार चतुर्राष्ट्र मैत्री संघ अब पंचराष्ट्र (Quintuple Alliance) में परिवर्तित हो गया। इसके अलावा एक्स–ला–शेपल सम्मेलन के सम्मुख अन्य विचाराधीन समस्याएँ निम्नलिखित थी–

(1) स्वीडन के शासक बर्नाडोट (Bernadotte) से डेनमार्क से सम्बन्धित कील की संधि की शर्तों के उल्लंघन का कारण पूछा गया। डेनमार्क व स्वीडन के बीच कील की संधि 14 जनवरी, 1814 ई. में सम्पन्न हुई थी।

(2) मोनेको के शासक को निर्देश दिया गया कि, वह अपने यहाँ अल्पसंख्यकों के साथ अच्छा व्यवहार करे।

(3) हेस (Hasse) और बेडम (Baden) के उत्तराधिकार के प्रश्न पर भी विचार कया गया

(4) हेस के शासक को एलेक्टर की उपाधि प्राप्त थी। वह राजा की उपाधि धारण करने का इच्छुक था, परन्तु यह स्वीकृति उसे नहीं दी गयी।

(5) बवेरिया के सीमा संबंधी विवाद पर विचार किया गया।

(6) आस्ट्रिया तथा प्रशा में निवास करने वाले यहूदियों की दशा पर भी विचार किया गया।

यूरोपीय संयुक्त व्यवस्था को इस प्रथम सम्मेलन में सर्वाधिक सफलताएँ मिलीं। बवेरिया की समस्या के समाधान पर प्रसन्नता जाहिर करते हुए मेटरनिख ने कहा था, ''मैंने अपने जीवन में ऐसी छोटी बैठक नहीं देखी।''

एक्स–ला–शेपल सम्मेलन में उत्पन्न मतभेद एवं समस्याऐं– एक्स–ला–शेपल सम्मेलन इतिहास में यदि अपनी सफलताओं के लिए जाना जायेगा, तो साथ ही इसलिये भी जाना जायेगा कि, यहीं से मित्र राष्ट्रों में मतभेद भी प्रारम्भ हुए, जिन्होंने आगामी सम्मेलनों के लिए समस्याएँ उत्पन्न कीं। ये मतभेद एवं समस्याएँ निम्न कारणों से उत्पन्न हुई–

(अ) समुद्री डाकुओं की समस्या–उत्तरी अफ्रीका के बराबरी वाले क्षेत्र के समुद्री डाकू भूमध्य सागर क्षेत्र में, आने–जाने वाले व्यापारिक जहाजों को लूट लिया करते थे। रूस एवं प्रशा इन डाकूओं के दमन के लिए संयुक्त जहाजी बेड़े को भूमध्य सागर में भेजने का अधिकार चाहते थे। चूँकि इंग्लैंड समुद्र पर अपना एकाधिकार बनाये रखना चाहता था, अतः यह प्रस्ताव अस्वीकार कर दिया गया।

(ब) स्पेन के दक्षिण अमेरिकी उपनिवेशों की समस्या–उत्तरी अमेरिका स्थित स्पेनी उपनिवेशों के विद्रोह के दमन हेतु स्पेन शासक फर्डीनेण्ड ने रूस का समर्थन पाकर संयुक्त व्यवस्था से सैन्य सहायता की माँग की। ब्रिटेन ने

टिप्पणी

इसका विरोध किया, क्योंकि ऐसा करने से उसके दक्षिण अमेरिकी उपनिवेशों से सम्बन्धित व्यापारिक हित प्रभावित हो सकते थे। अतः ब्रिटिश विदेश मन्त्री कैसलरे ने इसे स्पेन का आन्तरिक मामला करार देते हुए, बाह्य हस्तक्षेप का विरोध किया।

(स) दास व्यापार का प्रश्न–दास व्यापार को रोकने हेतु इंग्लैंड का सुझाव था कि सभी देश एक–दूसरे के जहाज की तलाशी लें, कि वह कहीं उपनिवेशवासियों को दास बनाकर तो नहीं ले जा रहा। आस्ट्रिया एवं रूस ने इंग्लैंड के इस सुझाव को अस्वीकार कर दिया।

(द) परस्पर विरोधी सिद्धांत–एक्स–ला–शेपल सम्मेलन में इन मित्र राष्ट्रों के बीच परस्पर विरोधी सिद्धांत उभरकर सामने आये। एक तरफ मेटरनिख यूरोपीय शान्ति से सम्बन्धित मामलों में हस्तक्षेप पंच राष्ट्र संघ का कर्तव्य मानता था, तो दूसरी ओर, कैसलरे इस हस्तक्षेप का सख्त विरोधी था। कैसलरे हस्तक्षेप की नीति का पक्षधर था।

वस्तुतः वियना कांग्रेस के जिन दो मुख्य देशों के दो मुख्य कर्णधारों मेटरनिख एवं कैसलरे की आम राय ने इस यूरोपीय संयुक्त व्यवस्था को जन्म दिया था, अब उन्हीं दोनो के बीच सैद्धान्तिक मतभेद एक्स–ला–शेपल में उभकर सामने आये तो, उसी समय यह तथ्य स्पष्ट हो गया कि यह तथाकथित यूरोपीय संयुक्त व्यवस्था अब कुछ ही समय की मेहमान है। अतः हम निष्कर्षतः कह सकते हैं कि जहाँ एक ओर एक्स–ला–शेपल सम्मेलन यूरोपीय संयुक्त व्यवस्था की सफलता का द्योतक था, वहीं इसमें उत्पन्न विभिन्न राष्ट्रों के मतभेद भी संयुक्त व्यवस्था की कालान्तर में असफलता के अंकुर भी प्रसफुटित होते हुए स्पष्ट दिखायी दे रहे थे।

(2) ट्रोपो का सम्मेलन (1820ई.)–यूरोपीय संयुक्त व्यवस्था में उपरिवर्णित मतभेदों के लक्षणों के साथ ही स्पेन, पुर्तगाल एवं नेपल्स में क्रांतियाँ हो गयीं। नेपल्स की क्रांति से इटली में आस्ट्रिया के प्रभुत्व को खतरा उत्पन्न हो गया। इस खतरे के मद्देनजर मेटरनिख ने ट्रोपो में पंच राष्ट्रों की कांग्रेस आमंत्रित की। मेटरनिख ने ट्रोपो के सम्मेलन में एक प्रतिक्रियावादी पूर्वलेख (Protocal) तैयार कर सम्मेलन के समक्ष रखा। इसके अनुसार–

(i) राज्य के लिए वही संविधान स्वीकार होगा, जिसे उस राज्य के राजा ने स्वीकृत किया है। जनता द्वारा प्रतिपादित ऐसे किसी सिद्धांत को कदापि मान्यता नहीं दी जायेगी जो किसी भी प्रकार उस राज्य के शासक की शक्ति को कम करता हो।

(ii) यदि किसी राज्य में क्रांति होने पर पड़ोसी राज्य के समक्ष भी खतरा उत्पन्न होने की आशंका हो तो वह पड़ोसी राज्य भी अपनी सेना द्वारा क्रांन्ति वाले पड़ोसी देश की क्रांन्ति का दमन कर सकता है।

(iii) वियना व्यवस्था की रक्षा हेतु, सम्मेलन अपने मित्र राष्ट्रों की सेना का उपयोग कर सकता है।

19 नवम्बर, 1820 ई. को आस्ट्रिया प्रशा और रूस ने इस पूर्व लेख पर हस्ताक्षर कर इन सिद्धांतों को मंजूर कर लिया। फ्रांस ने भी कुछ आरक्षणों के साथ इस पूर्व

लेख पर सहमति व्यक्त की, परन्तु अपनी अहस्तक्षेप की नीति पर चलते हुए ब्रिटेन ने इसका सख्त विरोध किया। ब्रिटेन का कहना था, कि इस व्यवस्था से राजा एवं प्रजा के बीच की खाई और अधिक चौड़ी होगी और राजा को सदैव विदेशी सहायता पर आश्रित होना पड़ेगा। कैसलरे ने इस पूर्व अभिलेख को ''एक काल्पनिक नियम द्वारा स्वतन्त्र राष्ट्रों के आन्तरिक मामलों में सम्भावित हस्तक्षेप का प्रयत्न बताया।''

इस प्रकार ट्रोपो सम्मेलन में संयुक्त व्यवस्था के मित्र राष्ट्र स्पष्टतः दो धड़ों में विभाजित हो गये, परन्तु संयुक्त व्यवस्था के लिए शुभ संकेत था, तो मात्र यह, कि इस व्यवस्था की कड़ियाँ अत्यन्त कमजोर होने के बावजूद टूटी नहीं थीं।

(3) लाइबेख का सम्मेलन, 1821 ई.—ट्रोपो सम्मेलन के पूर्व लेख पर अमल करते हुए आस्ट्रिया ने लाइबेख सम्मेलन में प्रशा और रूस का समर्थन पाकर 80,000 सैनिकों की मदद से इटली में नेपल्स तथा पिडमॉण्ड के विद्रोहों को कुचल दिया और इस प्रकार नेपल्स के शासक फर्डीनेण्ड को पुनः सिंहासन पर आसीन कर वहाँ निरंकुश एवं प्रतिक्रियावादी शासन को पुनर्स्थापित किया। इन परिस्थितियों में इंग्लैंड का विरोध स्वाभाविक था। इस प्रकार लाइबेख सम्मेलन में यूरोपीय संयुक्त व्यवस्था के टूटने के चिह्न स्पष्टतः परिलक्षित होने लगे थे।

(4) वेरोना का सम्मेलन—1822 ई. में जब वेरोना सम्मेलन हुआ, उस समय कैसलरे के स्थान पर वहाँ कैनिंग विदेश मन्त्री बना एंव वेरोना सम्मेलन में इंग्लैंड का प्रतिनिधित्व ड्यूक ऑफ वेलिंगटन ने किया। इस सम्मेलन के समक्ष दो प्रमुख समस्याएँ थीं—

(i) यूनान का स्वतन्त्रता संग्राम—यूनान पर टर्की का आधिपत्य था। 1821 ई. में यूनान ने अपनी स्वतन्त्रता के लिए विद्रोह किया। रूस का विचार था कि संयुक्त व्यवस्था की ओर से यूनान के पक्ष में वहाँ सेनाएँ भेजी जायें। इसका इंग्लैंड ने विरोध किया क्योंकि ऐसा करने पर रूस का यूनान पर प्रभाव बढ़ जाता।

(ii) स्पेन का विद्रोह—वेरोना सम्मेलन में प्रमुख रूप से विचारार्थ समस्या स्पेन का विद्रोह थी। स्पेन शासक फर्डीनेण्ड सप्तम् के आग्रह पर फ्रांस ने आस्ट्रिया, प्रशा और रूस के समर्थन से स्पेन के विद्रोह को कुचल दिया। इससे पूर्व ड्यूक ऑफ वेलिंगटन ने स्पेन में किसी प्रकार के हस्तक्षेप का विरोध प्रकट करते हुए कहा था कि स्पेन में हस्तक्षेप करना ''न केवल सैद्धान्तिक दृष्टि से आपत्तिजनक है वरन् व्यावहारिक रूप में उसे कार्यन्वित करना अत्यन्त कठिन है।''

चूँकि वेलिंगटन के इस अभियान के बावजूद फ्रांस ने स्पेन के आन्तरिक मामले में हस्तक्षेप किया अतः इंग्लैंड यूरोप की संयुक्त व्यवस्था से अलग हो गया।

(5) मुनरो सिद्धांत—इंग्लैंड स्पेन के आन्तरिक मामले में फ्रांस के हस्तक्षेप से नाराज था परन्तु वेरोना सम्मेलन में आस्ट्रिया, प्रशा एवं रूस के कारण इंग्लैंड की बात नहीं मानी गयी थी। इंग्लैंड को शीघ्र ही स्पेन के दक्षिणी उपनिवशों की समस्या के मामले में स्पेन के विरोध का मौका मिल गया। स्पेन शासक अब यूरोपीय राष्ट्रों की मदद से दक्षिण अमेरिकी उपनिवेशों पर वर्चस्व स्थापित करना चाहता था। फ्रांस जब यहाँ भी स्पेन की वकालत करने लगा तो कैनिंग ने स्पष्ट विरोध प्रकट करते हुए चेतावनी

दी कि ''चाहे फ्रांस, स्पेन में अपना प्रभुत्व जमा ले किन्तु वह स्पेन उपनिवेश रहित होगा।'' कैनिंग ने संयुक्त राज्य अमेरिका के राष्ट्रपति जेम्स मुनरो (1820–24 ई.) को भी इसी तारतम्य में उत्प्रेरित करते हुए, उससे एक संयुक्त वक्तव्य जारी करने हेतु कहा। इसकी परिणति मुनरो की बहुचर्चित घोषणा थी। जो मुनरो ने 2 दिसम्बर, 1823 ई. को अमेरिकी कांग्रेस के समक्ष की। यही घोषणा मुनरो सिद्धांत (Munro Doctrine) के नाम से जानी जाती है। यह घोषणा इस प्रकार थी, ''भविष्य में अमेरिकी महाद्वीपों में यूरोपीय राज्यों के उपनिवेश स्थापित नहीं किये जा सकेंगे। यदि कोई यूरोपीय शक्ति इन महाद्वीपों की राजनीतिक व्यवस्था में हस्तक्षेप करने अथवा नये क्षेत्रों पर अधिकार करने की कोशिश करेगी तो ऐसा कोई भी प्रयत्न संयुक्त राज्य अमेरिका के प्रति शत्रुतापूर्ण मनोवृत्ति का प्रमाण माना जावेगा।''1

मुनरो की इस घोषणा के साथ ही अब 'नई दुनिया' (अमेरिका) के उपनिवेशों की स्वतन्त्रता का मार्ग प्रशस्त हुआ। इंग्लैंड ने इस स्वतंत्रता का समर्थन किया क्योंकि यह उसकी कूटनीतिक विजय थी। कैनिंग ने अपनी इस विजय का प्रदर्शन इन शब्दों के साथ किया, ''मैंने पुरानी दुनिया के सन्तुलन को ठीक करने के लिए नई दुनिया की सृष्टि कर दी है।'' इस प्रकार अमेरिका व इंग्लैंड के एक हो जाने से अमेरिका स्थित स्पेनिश उपनिवेश अब स्वतन्त्र हो गये। आस्ट्रिया, रूस, फ्रांस न चाहकर भी मूक दर्शक बने रहे। निसन्देह यह इंग्लैंड की यूरोपीय संयुक्त व्यवस्था रूपी शतरंज की बिसात पर फ्रांस, आस्ट्रिया, रूस को एक कूटनीतिक मात थी।

(6) सेण्ट पीटर्सबर्ग अधिवेशनः सहयोग का अन्तिम प्रयास (1824 ई.)–यूनान एवं टर्की की समस्या के समाधानार्थ रूसी जार अलेक्जेंडर प्रथम ने 1824 ई. में अपनी राजधानी सेण्ट पीटर्सबर्ग में यूरोपीय संयुक्त व्यवस्था का अन्तिम अधिवेशन आमंत्रित किया। रूस ने यूनानी समस्या के संबंध में यूनान में तीन स्वशासित प्रदेशों की स्थापना का प्रस्ताव रखा। इंग्लैंड ने इसे रूस का यूनान में प्रभुत्व स्थापित करने का प्रयास मानते हुए सम्मेलन में भाग लेने से इनकार कर दिया। यूनान व तुर्की ने रूसी प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया। रूस व आस्ट्रिया में भी इस प्रश्न पर मतभेद बढ़ गया। अतः जार ने पूर्व की समस्या पर, अलग और स्वतन्त्र नीति अपनाने की घोषणा की।

इस प्रकार सेण्ट पीटर्सबर्ग सम्मेलन पूर्णतः असफल हो गया। यूरोपीय संयुक्त व्यवस्था इस सम्मेलन में स्पष्टतः बिखर गयाी और सेण्ट पीटर्सबर्ग सम्मेलन अर्न्तराष्ट्रीय सहयोग का अन्तिम एवं असफल प्रयास सिद्ध हुआ। इसके साथ ही यूरोपीय संयुक्त व्यवस्था विघटित हो गयी।

अपनी प्रगति जांचिए

3. वियना कांग्रेस (सम्मेलन) की अवधि कौन सी है?

(क) नवम्बर 1814 – जून 1815 ई. (ख) अक्टूबर 1814 – जून 1815 ई.

(ग) सितम्बर 1814 – अप्रैल 1815 ई. (घ) अगस्त 1814 – मार्च 1815 ई.

4. चतुर्मुखी मैत्री संघ के सदस्य देश हैं–

(क) फ्रांस, इंग्लैंड, प्रशा, रूस (ख) डेनमार्क, इटली, प्रशा, रूस

(ग) आस्ट्रिया, इंग्लैंड, प्रशा, रूस (घ) रोम, स्वीडन, फ्रांस

2.4 मेटरनिख : प्रतिक्रियावादी युग (1815–1848 ई.)

यूरोप के इतिहास में 1815 ई. से 1848 ई. के बीच का युग मेटरनिख युग के नाम से जाना जाता है। हेजन के अनुसार, ''उन्नीसवी शताब्दी के सभी राजनीतिज्ञों में मेटरनिख सर्वाधिक प्रख्यात एवं प्रभावशाली था।''

प्रारम्भिक जीवन–मेटरनिख का पूरा नाम काउण्ट क्लीमेंस वान मेटरनिख (Count Clemens Von Metternich) था। मेटरनिख का जन्म 15 मई,1773 को आस्ट्रिया के कोब्लेज (Coblong) नामक नगर में एक कुलीन परिवार में हुआ था। उसके पिता आस्ट्रियन सम्राट की सेवा में एक उच्च पदाधिकारी थे। स्ट्रासबर्ग एवं मेज विश्वविद्यालयों में मेटरनिख ने उच्च शिक्षा प्राप्त की। मेटरनिख के हृदय में क्रांति विरोधी भावना को जन्म फ्रांस के जेकोबिन दल के कार्यों ने दिया। अतः उसका मानना था कि ''क्रांति एक भयानक रोग है, जिसका इलाज अति आवश्यक है। तुरन्त इलाज के अभाव में यह एक भीषण रूप धारण कर लेती है।''

1795 ई. में मेटरनिख का विवाह आस्ट्रिया के चान्सलर प्रिन्स कानिज की पौत्री से सम्पन्न हुआ। इस विवाह के साथ ही उसकी सामाजिक प्रतिष्ठा में वृद्धि हुई और उसके राजनीतिक उत्कर्ष का मार्ग प्रशस्त हुआ।

राजनीतिक जीवन–मेटरनिख के राजनीतिक जीवन का आरम्भ एक मन्त्री के रूप में हुआ परन्तु 1801 से 1806 ई. के मध्य वह बर्लिन, पेरिस और सेण्ट पीटर्सबर्ग में आस्ट्रिया का राजदूत रहा। वस्तुतः इसी दौरान उसकी कूटनीति को परिपक्वता प्राप्त हुई। पेरिस में राजदूत रहने के कार्य काल में मेटरनिख को नेपोलियन के चरित्र का सूक्ष्म अध्ययन करने का अवसर प्राप्त हुआ। इसी दौरान उसकी तैलीरां से घनिष्ठता भी बढ़ी। कालान्तर में जिसका मेटरनिख ने अत्यधिक लाभ उठाया। मेटरनिख की योग्यता एवं प्रतिभा से प्रभावित होकर आस्ट्रियन सम्राट फ्रांसिस प्रथम ने 1809 ई. में उसे आस्ट्रिया का प्रधान मंत्री (चांसलर) नियुक्त किया। मेटरनिख ने 1809 ई. से लेकर 1848 ई. तक आस्ट्रिया के प्रधानमंत्री पद को सुशोभित किया।

1809 ई. से 1815 ई. तक मेटरनिख ने नेपोलियन की महत्वाकांक्षाओं से आस्ट्रिया की रक्षा की। इस संबंध में प्रो. फिलिम ने लिखा है, ''जिस समय आस्ट्रिया की नौका मझधार में थी और आस्ट्रिया फ्रांस के साथ युद्ध में फँसा हुआ था और जिस समय प्रत्येक सैनिक पीछे हटना चाहता था, उस समय मेटरनिख ने ही आस्ट्रिया की नीति को प्रेरक बल दिया और उसके आधार पर वह नेपोलियन को पीछे हटा सका तथा पराजित कर पाया। ''1815 ई. में सम्पन्न वियना सम्मेलन में उसने पूर्ण कुशलता, चातुर्य एवं दूरदर्शिता का परिचय दिया। उसके द्वारा प्रतिपादित चतुर्राष्ट्र मैत्री संघ की योजना उसके राजनीतिक कौशल का प्रत्यक्ष उदाहरण थी। 1809 से 1848 ई. तक वह यूरोप के राजनीतिक क्षितिज पर पूर्णतः छाया रहा, इसी कारण यह युग मेटरनिख युग कहा जाता है।

मेटरनिख की विचाराधारा–मेटरनिख कुछ तो स्वभाव से परम्परावादी था और कुछ फ्रांसीसी क्रांति की घटनाओं ने उसे क्रांति तथा उदारवाद का प्रबल शत्रु बना दिया था। नीति की दृष्टि से मेटरनिख एक घोर प्रतिक्रियावादी व्यक्ति था। पुरातन व्यवस्था का वह प्रबल पोषक था। सबसे रोचक तथ्य तो यह था कि, उसका सम्राट फ्रांसिस

प्रथम भी उसी की भाँति परम्परावादी एवं पुरातन व्यवस्था का समर्थक था। मेटरनिख वियना कांग्रेस के पश्चात् यूरोप में यथास्थिति (Statusquo) बनाये रखने का प्रबल पक्षधर था। इसके लिए वह निरंकुश राजतन्त्र का समर्थन करता था। उसका प्रतिक्रियावाद उसके युग में पूर्णतः हावी रहा। मेटरनिख की प्रतिक्रियावादी विचारधारा को रूस, प्रशा जैसे प्रतिक्रियावादी ताकतों से मित्रता ने और अधिक परिवर्द्धित एवं पुष्ट किया।

मेटरनिख की गृह नीति

आस्ट्रिया 1815 ई. में विभिन्न जातियों एवं सस्कृतियों का एक समूह जैसा था। आस्ट्रिया साम्राज्य के अर्न्तगत आस्ट्रिया, हंगरी, बोहेमिया तथा इटली के लोम्बार्डी तथा बेनेनिश आदि आते थे। इन अलग–अलग भागों में विभन्न जातियाँ निवास करती थीं, जिनकी समस्याएँ भी एक दूसरे से सर्वथा भिन्न थीं। इसीलिये आस्ट्रिया विभिन्न जातियों का अजायबघर कहलाता था। फ्रांसीसी क्रांति की लहर इन जातियों में भी स्वतन्त्रता के लिए हिलोरें मार रही थीं। इन परिस्थितियों में मेटरनिख ने अपनी गृह नीति निम्नानुसार संचालित की –

(1) क्रांति की लहर का दमन–फ्रांसीसी क्रांति की भयावहता से मेटरनिख पूर्णतः परिचित था, अतः उसने क्रांतिजनित स्वतन्त्रता, समानता, बन्धुत्व एवं उदारवादी विचारों के प्रसार को रोकने के लिए हरसम्भव प्रयत्न किये। क्रांति के संबंध में मेटरनिख का दृष्टिकोण यह था कि ''क्रांति एक रोग है जिसका इलाज किया जाना चाहिए, एक ज्वालामुखी है। जिसे शान्त किया जाना चाहिए, एक विषाक्त घाव है जिस गर्म लोहे से जला दिया जाना चाहिए, क्योंकि क्रांति एक ऐसा पिशाच है, जो मानव समाज को हड़पने के लिए तैयार है।'' इसके अलावा प्रजातन्त्र का भी वह विरोधी था। उसका मानना था कि ''प्रजातन्त्र केवल दिन के प्रकाश को रात्रि के अन्धकार में परिवर्तित कर सकता है।''

अतः मेटरनिख की नीति राष्ट्रीयता एवं उदारवादी भावनाओं का सर्वथा दमन करने वाली रही। मैरियट के अनुसार, ''वह सुधारों को क्रांति का प्रेरक समझता था।'' मेटरनिख के लिए प्रसन्नता की बात यह थी कि, उसकी इस अनुदारवादी नीति को कार्यरूप देने में उसे अपने सम्राट फ्रांसिस प्रथम का भी भरपूर सहयोग मिला। फ्रांसिस प्रथम भी मेटरनिख की तरह ही निरंकुशवादी एवं प्रक्रियावादी विचारों का स्वामी था। फ्रांसिस का यह विचार ''सम्पूर्ण संसार पागल है जो नये संविधान की माँग करता है।'' उसकी उक्त नीति का परिचायक है। अतः मेटरनिख ने सम्राट के वरदहस्त से आस्ट्रिया में प्रेस व भाषणों पर प्रतिबन्ध लगा दिया। विद्यालयों एवं विश्वविद्यालयों में राष्ट्रवादी भावनाओं की चर्चा करना निषिद्ध कर दिया। क्रांतिजनित विचारों की पुस्तकों पर प्रतिबन्ध लगा दिया। अतः हेज ने उचित ही लिखा कि ''मेटरनिख ने आस्ट्रिया में राष्ट्रवादियों एवं उदारवादियों के दमन का एक उदाहरण प्रस्तुत किया।''

(2) यथास्थित बनाये रखने का प्रयास–मेटरनिख के प्रधानमंत्री बनने के समय फ्रांस की व्यवस्था ठीक नहीं थी। सामंत विशाल भू–खण्डों के स्वामी थे, उन्हें अपनी जागीरों में करारोपण, न्याय एवं बेगार लेने के अधिकार थे। किसानों की स्थिति दयनीय थी। अधिकांश करों का भार जनता को ही वहन करना पड़ता था। सीमा शुल्क की वृद्वि से व्यापार को भी हानि हुई। मेटरनिख ने आर्थिक स्थिति को सुधारने का कोई प्रयास नहीं किया। उसने यथास्थिति को बनाये रखा। मेटरनिख ने अपना समस्त ध्यान

प्रजातान्त्रिक एवं उदारवादी भावनाओं में लगा रखा था। इससे फ्रांस की सामाजिक –आर्थिक उन्नति को आघात पहुँचा।

मेटरनिख की विदेश नीति

यूरोपीय राजनीति में मेटरनिख को उसकी विदेश नीति ने ही सर्वप्रमुख, महत्व दिलाया। यह उसकी विदेश नीति का ही प्रभाव था कि, यूरोप में 1815 ई. से 1848 ई. के बीच का युग मेटरनिख युग कहलाता है। वस्तुतः अपनी विदेश नीति के कारण ही वह इस युग में समस्त यूरोप पर छाया रहा। वह अपने आपको यूरोप का कर्णधार मानते हुए कहता था कि ''मैं यूरोपीय समाज के ढाँचे को सहारा देने के लिए उत्पन्न हुआ हूँ।'' और इसी उद्देश्य से प्रेरित होकर उसने अपनी विदेश नीति का मुख्य उद्देश्य निम्नानुसार निर्धारित किया–

(1) यूरोप में शान्ति बनाये रखना।

(2) फ्रांसीसी क्रांति के प्रभावों को अन्य यूरोपीय देशों में बढ़ने से रोकना।

(3) वियना कांग्रेस द्वारा यूरोप का जो मानचित्र बनाया गया, उसे यथास्थिति (Statusquo) कायम रखना।

(4) यूरोपीय राजनीति में आस्ट्रिया के प्रभाव को बढ़ाना।

मेटरनिख ने अपने उक्त उद्देश्य की प्राप्ति के लिए आवश्यकतानुसार अन्य यूरोपीय देशों के प्रमुख राजनीतिज्ञों का हरसम्भव सहयोग प्राप्त किया। उसके 1815 ई. से 1845 ई. के बीच विदेश नीति के संचालन से कभी–कभी ऐसा प्रतीत होता था, कि वह आस्ट्रिया का ही नहीं, समस्त यूरोप का भी चांसलर है। अतः उसके तत्संबंधों विचारों का विश्लेषण करते हुए प्रो. ए. जे.पी टेलर ने लिखा है कि ''मेटरनिख के विचारों में यूरोप के लिए आस्ट्रिया आवश्यक था और आस्ट्रिया के लिए यूरोप आवश्यक था।''

मेटरनिख ने अपने ऊपरवर्णित उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए अपनी विदेश नीति निम्नानुसार संचालित की–

(1) मेटरनिख एवं फ्रांस–लिपजिंग के युद्ध में नेपोलियन को परास्त करने में मेटरनिख ने निर्णायक भूमिका निभायी थी। इस कारण यूरोपीय राजनीति में मेटरनिख को महत्वपूर्ण स्थान मिला। यद्यपि मेटरनिख नेपोलियन से घृणा करता था, तथापि कुछ मामलों में वह उस से प्रभावित भी था। उसका मानना था कि नेपोलियन चाहे किसी भी युग में उत्पन्न होता, वह निश्चय ही उस युग को प्रभावित करता। नेपोलियन के पराभव के पश्चात् वियना कांग्रेस में उसे विशिष्ट स्थान प्राप्त हुआ। फ्रांस के तैलीरां के साथ मेटरनिख के मधुर संबंध थे। इन संबंधों का कूटनीतिक महत्व भी था जिसका समय–समय पर उसने उपयोग किया।

(2) मेटरनिख एवं वियना कांग्रेस–वियना कांग्रेस (1815 ई.) में मेटरनिख ने अपने पूर्ण राजनीतिक कौशल, दूरदर्शिता, कूटनीति का उपयोग किया। इस कांग्रेस का सभापति भी वह था तथा जटिल से जटिल समस्याओं को समझने की उसकी योग्यता के कारण कमोवेश सभी निर्णय उससे प्रभावित थे। उसकी सर्वप्रमुख उपलब्धि तो यह थी, कि उसने अपनी विदेश नीति के लिए निर्धारित उद्देश्यों को वियना कांग्रेस का भी उद्देश्य बनवा दिया। वह वियना कांग्रेस पर पूर्णतः हावी रहा। इस संबंध में उसका स्वयं कहना था कि ''संसार उसके कन्धों पर टिका हुआ है, मेरी स्थिति की विचित्रता यह है कि जहाँ मैं होता हूँ, वहीं लोगों की आँखें होती हैं। ''इसमें कोई दो

टिप्पणी

मत नहीं कि वियना कांग्रेस पूर्णतः उसकी विदेश नीति का ही प्रतिबिम्ब थी। यही कारण है कि इतिहास में जब–जब 1815 ई. की वियना कांग्रेस का जिक्र आयेगा, तब–तब लोग स्वतः ही मेटरनिख को अवश्य याद करेंगे।

(3) पवित्र संघ एवं रूस–रूस के जार अलेक्जेंडर एवं उसके द्वारा प्रतिपादित पवित्र संघ के दृष्टिकोण के प्रति बिस्मार्क की भूमिका, उसके राजनैतिक चातुर्य एवं कूटनीतिक कुशलता का द्योतक है। नेपोलियन को पराजित करने में यूरोप में रूस ने प्रथम बार नेतृत्व प्रदान किया था। रूस का जार एक आदर्शवादी एवं उदार व्यक्ति था। मेटरनिख को आशंका थी, कि नेपोलियन के पश्चात् यूरोपीय राजनीति में कहीं रूस के जार का महत्व न बढ़ जाये। इसलिए उसने अपनी कूटनीतिक कुशलता से जार के प्रभाव को बढ़ने से रोका। इसीलिए वियना कांग्रेस में रूस को खुश करने के लिए, मेटरनिख ने उसके द्वारा प्रतिपादित पवित्र संघ की आदर्शवादी योजना को स्वीकृत किया। साथ ही उसने कहा था कि ''है तो वह पागल लेकिन उसे खुश रखना होगा।'' मेटरनिख उसे उत्तर का ढोंगी टाल्मा कहता था। मेटरनिख ने अपने क्रियाकलापों से जार को अपना सहयोगी बना लिया। प्रारम्भ में जार अलेक्जेंडर का दृष्टिकोण उदार था, किन्तु कालान्तर में मेटरनिख के प्रभाव के कारण ही वह प्रतिक्रियावादी बन गया।

(4) मेटरनिख एवं 'चतुर्राष्ट्रीय मैत्री संघ–रूसी जार अलेक्जेंडर की 'पवित्र संघ' योजना की असफलता एवं मेटरनिख द्वारा प्रतिपादित 'चतुर्राष्ट्र मैत्री संघ' की स्थापना एवं सफलता मेटरनिख की विदेश नीति के कौशल का एक जीता–जागता प्रमाण था। आस्ट्रिया, प्रशा, इंग्लैंड एवं रूस जैसी यूरोपीय शक्तियाँ इसके सदस्य थे, कालान्तर में फ्रांस के मिलने से यह 'पंचराष्ट्र मैत्री' संघ में परिवर्तित हो गया। एक तरह से यह संघ मेटरनिख के हाथ में यूरोपीय घोड़े की ऐसी लगाम था जिससे उसने अपनी विदेश नीति को वांछित दिशा, गति एवं अर्थ प्रदान किया।

(5) मेटरनिख एवं इंग्लैंड–इंग्लैंड के साथ अपने संबंधों में मेटरनिख ने एक कुशल दल–बदलू, कूटनीतिक, अवसरवादी राजनेता की भूमिका का निर्वाह किया। वियना कांग्रेस में उसे इंग्लैंड की आवश्यकता थी, अतः उसने उससे हरसम्भव सहयोग का आदान–प्रदान किया। मेटरनिख द्वारा प्रतिपादित 'चतुर्राष्ट्र मैत्री संघ' का सर्वप्रमुख समर्थक ब्रिटेन का विदेश मन्त्री कैसलरे ही था परन्तु बाद में यूरोपीय संयुक्त व्यवस्था के सभी सम्मेलनों में उसने दल बदल लिया और वह इंग्लैंड की अहस्तक्षेपवादी नीति का प्रबल विरोधी बन गया। उसने लगभग हर सम्मलेन में अपनी प्रतिक्रियावादी नीति द्वारा रूस, प्रशा एवं फ्रांस का सहयोग प्राप्त कर, इंग्लैंड को कूटनीतिक मात देते हुए उसे अलग–थलग कर दिया।

(6) मेटरनिख एवं जर्मनी–वियना कांग्रेस की व्यवस्था के अर्न्तगत जर्मनी को 39 राज्यों के एक ढीले परिसंघ में परिणित कर आस्ट्रिया को इस परिसंघ का अध्यक्ष बनाया गया था। जर्मनी में जब राष्ट्रवादी भावनाएँ लहरें हिलोरें मारने लगी तो एक्स–ला–शेपल सम्मेलन (1818 ई.) में मेटरनिख ने इन्हें दबाने की अनुमति प्राप्त कर ली। 1819 ई. में मेटरनिख ने कार्ल्सवाद की घोषणा (Carlsbad Decrees) द्वारा वहाँ विद्यार्थी आन्दोलनों, आमोद– प्रमोद की संस्थाओं एवं पुस्तकों व समाचार–पत्रों आदि पर प्रतिबन्ध लगाकर राष्ट्रवादी भावनाओं का क्रूर दमन किया। ए.जे.ग्राण्ट के अनुसार मेटरनिख ने जर्मनी को एक पुलिस राज्य के अतिरिक्त कुछ नहीं दिया और अपनी नीति को अत्यन्त क्रूरता से कार्यान्वित किया।

(7) मेटरनिख और इटली—वियना व्यवस्था के अन्तर्गत इटली पूर्णतः आस्ट्रिया के प्रभाव क्षेत्र में हो गया था। लोम्बार्डी, वेनेशिया पर उसका प्रत्यक्ष अधिकार था। मॉडेना, टस्कनी में आस्ट्रिया के हैप्सबर्ग वंश के राजकुमारों का शासन था। परमा की रानी मेरी लुइसा भी आस्ट्रिया की ही राजकुमारी थी। नेपल्स एंव पिडमॉण्ट में जब विद्रोह हुए तो मेटरनिख ने ट्रोपो एवं लाइबेख सम्मेलन में इंग्लैंड के विरोध के बावजूद इनके दमन की स्वीकृति प्राप्त कर यहाँ पुनः प्रतिक्रियावादी शासन स्थापित कराया। मेरियट ने इसलिए इटली में मेटरनिख की भूमिका पर प्रकाश डालते हुए लिखा है कि ''मेटरनिख इटली पर बिल्कुल वियना की तरह शासन करता था।''

इस प्रकार हम देखते हैं कि मेटरनिख की विदेश नीति, मात्र आस्ट्रिया की विदेश नीति न होकर पूरे यूरोप की विदेश नीति बन गयी थी। मेटरनिख युग (1815–18148 ई.) की सर्वप्रमुख विशेषता यही थी कि इस युग में समस्त यूरोप में ऐसा कोई देश नहीं था, जोकि प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से मेटरनिख की विदेश नीति से प्रभावित न हुआ हो।

मेटरनिख का पतन

उत्थान एवं पतन चूँकि प्रकृति का शाश्वत नियम है अतः मेटरनिख की सफलताओं के बावजूद उसका भी पतन हुआ। उसके पतन का प्रमुख कारण भी वही नीतियाँ बनीं जिन्होंने उसका उत्थान किया था। न केवल समस्त यूरोप अपितु मेटरनिख के गृह राज्य आस्ट्रिया तक की जनता उसकी प्रतिक्रियावादी नीति से तंग आ गयी थी। मेटरनिख अपनी समस्त राजनीतिक योग्यता, कुशलता एवं दूरदर्शिता के बावजूद इतिहास की इस जाहिर नसीहत को भूल गया कि 'अति सर्वत्र वर्जयते'। और अन्ततः उसकी प्रतिक्रियावादी नीति की अति ही उसके पतन का प्रमुख कारण बनी। यूरोप के विभिन्न देशों में 1830 ई. की क्रांति ने मेटरनिख एवं उसकी नीतियों को जबरदस्त चुनौती दी, इसके बावजूद उसने समय के प्रवाह को समझने की कोई कोशिश नहीं की और अन्ततः वह 1848 ई. की क्रांति की ज्वाला में झुलस गया। हंगरी में कौसिक नामक नेता के भाषणों ने मेटरनिख के विरुद्ध जनता की भावनाएँ भड़काने में अग्नि में घी की भाँति काम किया। 13 मार्च, 1848 ई. को उत्तेजित एवं कुद्ध जनता की भीड़ ने मेटरनिख मुर्दाबाद के नारे लगाते हुए मेटरनिख के घर को घेर लिया। मेटरनिख को अन्ततः त्यागपत्र देकर इंग्लैंड भागना पड़ा। एलीसन फिलिप्स महोदय ने मेटरनिख के पतन की तुलना फ्रांस में 1789 ई. में हुए बास्टील के पतन से की है। इस प्रकार मेटरनिख के पतन के साथ ही यूरोप में मेटरनिख युग की भी समाप्ति हुई। 1859 ई. में मेटरनिख की मृत्यु हो गयी। इस प्रकार नेपोलियन की भाँति ही मेटरनिख का भी दयनीय पतन हुआ।

मेटरनिख का मूल्यांकन

मेटरनिख अपने युग का निःसन्देह एक महान कूटनीतिक व्यक्ति था। 1818 ई. से 1848 ई. का युग उसके नाम पर मेटरनिख युग कहा गया है क्योंकि इस युग में 33 वर्षो तक वह पूर्णतः यूरोप पर छाया रहा। इसका प्रमुख कारण मेटरनिख की प्रभावशाली मुद्रा, कूटनीतिक कौशल समस्याओं को शीघ्र व अच्छी तरह से समझने की योग्यता, व्यक्ति विशेष की बारीक परख, षड्यन्त्रों को रचने की कुशलता एवं दृढ़ इच्छा शक्ति

टिप्पणी

का स्वामी होना था। सी.डी.एम. कैटलबी ने मेटरनिख के बारे में कहा है कि ''वह भँवरों के भरे हुए तालाब में मछली के समान सफल तैराक था, परन्तु उसे लोगों ने धोखेबाज, षड्यन्त्रकारी, अवसरवादी तथा प्रतिक्रियावादी कहा।''

वस्तुतः यही विशेषताएँ जो उसके उत्थान में सहायक हुईं, वही निसन्देह उसके पतन का भी कारण बनीं। इस तारतम्य में वियना कांग्रेस के सचिव एवं मेटरनिख के निकट सहयोगी गेंज ने लिखा था कि ''यदि मुझे पन्द्रह सालों का इतिहास लिखना पड़े तो उसमें मेटरनिख की आलोचना के सिवाय और कुछ नहीं होगा।''

मेटरनिख की दृढ़ इच्छा शक्ति का प्रमाण यह था, कि उसने साम, दाम, दण्ड, भेद इत्यादि सभी नीतियों के बल पर यूरोप में हर सम्भव शान्ति स्थापित करने का भरसक प्रयत्न किया परन्तु उसे इस शान्ति की भारी कीमत चुकानी पड़ी। मेटरनिख अपने लाख प्रयत्न के बावजूद अपनी प्रतिक्रियावादी नीति द्वारा न तो यथास्थिति कायम रख सका और न ही उदारवादी भावना को रोक सका। इसीलिए उसने स्वयं को इस युग के लिए अनुपयुक्त बताते हुए हुए लिखा था कि ''मैं संसार में या तो बहुत जल्दी आया हूँ या बहुत देरी से आया हूँ यदि मैं कुछ समय पहले आया होता तो (उस) युग का आनन्द लेता और यदि देर से आया होता, तो मैं नये युग के निर्माण में सहायक होता। आज तो मुझे संसार की सड़ी–गली संस्थाओं के निर्माण में जीवन की बाजी लगानी पड़ रही है।'' यह समय से भागने की मेटरनिख की स्वीकारोक्ति निश्चित रूप से यह स्पष्ट करती है कि वह अपने आप से हार गया था। इसी कारण वह अपनी नीतियाँ भी समय–समय पर समय के अनुसार ही परिवर्तित करता रहा। इसके समकालीन तैलीरां के अनुसार ''मेटरनिख सत्य और सम्मान की उपेक्षा करके सदैव अपनी नीति तथा उद्देश्य बदलने वाला अवसरवादी था।''

मेटरनिख को यद्यपि उसके युग में एवं वियना कांग्रेस के पश्चात् लगभग 40 वर्षो तक शान्ति स्थापित करने का श्रेय दिया जाता है, परन्तु यह शान्ति तात्कालिक एवं अस्थायी शान्ति थी। इस शान्ति में स्थायित्व के तत्वों का पूर्ण अभाव था। वस्तुतः मेटरनिख द्वारा स्थापित यूरोपीय व्यवस्था में मूलभूत दोष निहित थे। जिनके परिणाम आगामी यूरोप को भुगतने पड़े। मेटरनिख की नीतियों ने जिस तरह इंग्लैंड को यूरोपीय राजनीति से अलग–थलग किया था, उसके परिणाम भी आगामी समय में अच्छे सिद्ध नहीं हुए। उसके द्वारा प्राप्त सफलताएँ, सफलता की छाया मात्र ही थी।

उक्त सभी आलोचनाओं के बावजूद, वस्तुतः मेटरनिख उस समय की पुकार था। चूँकि उसके साम्राज्य में भिन्न–भिन्न जाति, धर्म, भाषा एवं संस्कृति के लोग रहते थे अतः आस्ट्रिया साम्राज्य के एवं यूरोप के तत्युगीन स्वरूप को देखते हुए उसकी यह नीति आवश्यक एवं अपरिहार्य भी थी। जो भी हो, उसने नेपोलियन के अनवरत युद्धों की विभीषिका से त्रस्त यूरोपीय जनता को मुक्ति दिलाकर लगभग 40 वर्षो तक उसे वांछित शान्ति प्रदान की। यूरोप के इतिहास में मेटरनिख की सर्वप्रमुख उपलब्धि यह थी, कि उसने अपनी राजधानी वियना को यूरोपीय राजनीति का प्रमुख केन्द्र बना दिया।

अपनी प्रगति जांचिए

5. हेजन के अनुसार "उन्नीसवीं शताब्दी के सभी राजनीतिज्ञों में ..... सर्वाधिक प्रख्यात एवं प्रभावशाली था!"

   (क) जार अलेक्जेंडर (ख) मेटरनिख

   (ग) जेम्स मुनरो (घ) प्रिन्स कानिज

6. मेटरनिख की विचारधारा के मुख्य आधार हैं–

   (क) परंपरावाद (ख) क्रांति विरोध एवं उदारवाद विरोध

   (ग) घोर प्रतिक्रियावाद (घ) उपर्युक्त सभी

2.5 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर

1. (ग)
2. (ख)
3. (क)
4. (ग)
5. (ख)
6. (घ)

2.6 सारांश

नेपोलियन बोनापार्ट का जन्म कार्सिका द्वीप के एक कुलीन परिवार में 15 अगस्त,1769 ई. को हुआ था। कार्सिका में इस परिवार का बड़ा महत्व था। नेपोलियन के जन्म के समय उसके माता–पिता कार्सिका स्वाधीनता संग्राम में व्यस्त थे। इसका नेपोलियन के व्यक्तिगत जीवन पर बड़ा प्रभाव पड़ा। अध्ययन काल में ही वह फ्रांसीसी दार्शनिकों मुख्यतः रूसो से प्रभावित हुआ।

फ्रांस में नेपोलियन का उत्थान न केवल यूरोप अपितु विश्व की एक महानतम घटना थी। नेपोलियन एक बौना व्यक्ति था मगर उसने अपने अदम्य साहस, शौर्य, प्रतिभा एवं कूटनीति से अपने व्यक्तित्व को विशालता प्रदान की। इंग्लैंड की 1688 ई. की रक्तहीन क्रांति की तरह यह भी फ्रांस की 1799 ई. की एक रक्तहीन एवं फ्रांस के लिए गौरवपूर्ण क्रांति थी।

वस्तुतः नेपोलियन एक क्रांति पुत्र था। जो कि क्रांति काल में ध्रुव की तरह अवतरित हुआ। उसने क्रांति की बागडोर डायरेक्टरी जैसे भ्रष्ट एवं अयोग्य हाथों से छीनकर अपने हाथ में संभाली और क्रांति को विराम एवं नई दिशा दी।

1802 ई. में नेपोलियन को जन्म भर के लिए कॉन्सुल बना दिया गया परन्तु वह इससे सन्तुष्ट नहीं हुआ और अन्ततः उसके संकेत पर 1804 में सीनेट ने उसको सम्राट घोषित कर दिया। सम्राट बनने के बाद उसने अपनी साम्राज्यवादी प्रवृत्ति को

पूरा करने का अथक् प्रयास किया। 1806 ई. तक वह पवित्र रोमन साम्राज्य का अन्त करने और आस्ट्रिया के सम्राट के पद एवं शक्ति का नाश करने में सफल हुआ। 25 अक्टूबर, 1806 को प्रशा को भी उसने पराजित किया और अब केवल ब्रिटेन और रूस ही शेष थे, जिन्हें पराजित करना आवश्यक था। 14 जून, 1807 को फ्रीडलैंड (Friedland) के मैदान में उसने रूसी सम्राट को पराजित किया, अतः रूसी सम्राट को संधि करने के लिए विवश होना पड़ा। इस युद्ध का परिणाम तिलसिट की संधि 8 जुलाई, 1807 ई. के रूप में सामने आया।

तिलसिट की संधि ने नेपोलियन को उसके उत्कर्ष की चरम सीमा पर पहुँचा दिया। 1807 ई. में विश्व की कोई भी शक्ति उससे टकराने की सोच भी नहीं सकती थी। अब वह उस फ्रांस का सम्राट था। जिसकी सीमाएँ पो नदी के उत्तरी सागर तक एवं पिरेनीज से लेकर राइन तक विस्तृत थी। इनके अलावा वह राइन संघ का संरक्षक, इटली का राजा और स्विस गणतन्त्र का अध्ययक्ष था। रूस उसका मित्र था और वेस्टफेलिया, हॉलैंड तथा नेपल्स में उसके संबंधी शासक थे। वस्तुतः 1807 ई. में वह एक ऐसा विश्व विधाता था जिसकी तूती सारे यूरोप में बोलती थी।

महाद्वीपीय व्यवस्था के परिणामस्वरूप नेपोलियन को जो युद्ध लड़ने पड़े, उनसे उसके पतन की पृष्ठ–भूमि का निर्माण हुआ। अगस्त 1813 ई. तक नेपोलियन के विरुद्ध यूरोप के राजाओं का चतुर्थ संघ तैयार हुआ और मित्र राष्ट्रों की शक्ति में अत्यन्त वृद्धि हुई। 2 अप्रैल, 1814 ई. को नेपोलियन को सिंहासन से उतार दिया गया, किन्तु एक बार पुनः उसने फ्रांस पर शासन स्थापित करने के प्रयत्न किये परन्तु उसके सुख का समय केवल 100 दिन तक सीमित रहा। इस बीच वियना सम्मेलन आरम्भ हो गया था, अतः सभी मित्र देश पुनः एकत्र हुए और उन्होंने वाटरलू के मैदान में नेपोलियन को अंतिम बार परास्त किया। नेपोलियन को सेंट हैलना द्वीप निर्वासित कर दिया गया। इसके उपरान्त वह 6 वर्ष तक जीवित रहा।

नेपोलियन बोनापार्ट ने अपने विजय अभियान से समस्त यूरोपीय मानचित्र को परिवर्तित कर दिया था। अतः वियना कांग्रेस के आयोजन का प्रमुख उद्देश्य नेपोलियन की विजयों से उत्पन्न राजनीतिक समस्याओं एवं परिवर्तनों का समाधान करना था। यह एक भव्य आयोजन था। जिसमें अस्ट्रिंया सम्राट प्रथम ने पैसा, पानी की तरह बहाया और इस कांग्रेस का सभापति था आस्ट्रिया का प्रधानमंत्री मेटरनिख। इस कांग्रेस में भाग लेने टर्की के अतिरिक्त समस्त यूरोप के शासक अथवा प्रतिनिधि आये थे। वियना कांग्रेस के तीन प्रमुख उद्देश्य थे– 1. विजयी राज्यों को पुरस्कार देना व हारे हुए राष्ट्रों को दण्डित करना, 2. फ्रांस की क्रांति के पूर्व की यूरोपीय सीमा व्यवस्था को पुनः लागू करना, 3. भविष्य में शान्ति बनाये रखने, युद्धों को टालने के लिए यूरोप में शक्ति सन्तुलन स्थापित करना।

1809 ई. से 1815 ई. तक मेटरनिख ने नेपोलियन की महत्वाकांक्षाओं से आस्ट्रिया की रक्षा की। जिस समय आस्ट्रिया की नौका मझधार में थी और आस्ट्रिया फ्रांस के साथ युद्ध में फँसा हुआ था और जिस समय प्रत्येक सैनिक पीछे हटना चाहता था, उस समय मेटरनिख ने ही आस्ट्रिया की नीति को प्रेरक बल दिया और उसके आधार पर वह नेपोलियन को पीछे हटा सका तथा पराजित कर पाया। 1815 ई. में सम्पन्न वियना सम्मेलन में उसने पूर्ण कुशलता, चातुर्य एवं दूरदर्शिता का परिचय दिया। उसके

द्वारा प्रतिपादित चतुर्राष्ट्र मैत्री संघ की योजना उसके राजनीतिक कौशल का प्रत्यक्ष उदाहरण थी। 1809 से 1848 ई. तक वह यूरोप के राजनीतिक क्षितिज पर पूर्णतः छाया रहा, इसी कारण यह युग मेटरनिख युग कहा जाता है।

मेटरनिख अपने युग का निःसन्देह एक महान कूटनीतिक व्यक्ति था। 1818 ई. से 1848 ई. का युग उसके नाम पर मेटरनिख युग कहा गया है क्योंकि इस युग में 33 वर्षो तक वह पूर्णतः यूरोप पर छाया रहा। इसका प्रमुख कारण मेटरनिख की प्रभावशाली मुद्रा, कूटनीतिक कौशल समस्याओं को शीघ्र व अच्छी तरह से समझने की योग्यता, व्यक्ति विशेष की बारीक परख, षड्यन्त्रों को रचने की कुशलता एवं दृढ़ इच्छा शक्ति का स्वामी होना था। वह भँवरों के भरे हुए तालाब में मछली के समान सफल तैराक था, परन्तु उसे लोगों ने धोखेबाज, षड्यन्त्रकारी, अवसरवादी तथा प्रतिक्रियावादी कहा।

2.7 मुख्य शब्दावली

- **हठधर्मिता** – दुराग्रह, कट्टरता
- **राष्ट्रीयता** – व्यक्ति और संप्रभु राज्य के बीच का कानूनी संबंध
- **कांग्रेस** – किसी विषय पर विचार–विमर्श हेतु आयोजित बड़ी सभा
- **प्रतिक्रियावादी** – वह सिद्धांत या मत जो उन्नति या नवीन मान्यताओं या क्रांति का विरोधी है।
- **दास व्यापार** – लोगों को बलपूर्वक बंदी बनाकर बेचना (बिना अधिकारों वाले कामगार के रूप में)

2.8 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास

लघु–उत्तरीय प्रश्न

1. प्रथम कॉन्सुल के रूप में नेपोलियन के प्रमुख आर्थिक सुधारों का उल्लेख कीजिए।
2. तिलसिट की संधि पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए?
3. नेपोलियन के पतन के कोई चार प्रमुख कारण बताइए।
4. वियना कांग्रेस के प्रमुख कूटनीतिज्ञों के नाम बताइए।
5. चतुर्मुखी मैत्री संघ के सदस्यों के नाम बताइए।
6. पवित्र संघ का दृष्टिकोण किसके द्वारा प्रतिपादित किया गया था?

दीर्घ–उत्तरीय प्रश्न

1. नेपोलियन के उत्थान के कारणों की विवेचना कीजिए।
2. नेपोलियन की महाद्वीपीय व्यवस्था की विवेचना कीजिए।
3. नेपोलियन के पतन के मुख्य कारणों की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिए।
4. 'नेपोलियन यूरोप का समुद्रगुप्त था' इस कथन की विवेचना कीजिए।

5. टिप्पणी लिखिए–
   (क) महाद्वीपीय व्यवस्था का ऐतिहासिक महत्व
   (ख) तिलसिट की संधि
   (ग) नेपोलियन की विधान संहिता
   (घ) नेपोलियन का चरमोत्कर्ष
6. वियना कांग्रेस के उद्देश्यों का वर्णन कीजिए। इन उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु इसने कौन–से सिद्धांत अपनाये? विवेचना कीजिए।
7. वियना सम्मेलन के प्रमुख राजनीतिज्ञ कौन थे एवं उन्होंने इसमें क्या भूमिका निभाई?
8. यूरोप की संयुक्त व्यवस्था का आलोचनात्मक विश्लेषण कीजिए।
9. मेटरनिख के उत्थान एवं पतन के कारणों की विवेचना कीजिए।
10. निम्न पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए–
    (क) 'पवित्र संधि'
    (ख) चतुर्राष्ट्र मैत्री संघ
    (ग) एक्स–ला शेपल का सम्मेलन (1818 ई.)
    (घ) जार एलैक्जैण्डर प्रथम

2.9 सहायक पाठ्य सामग्री

- ए. डब्लू. वार्ड (सं), दि कैम्ब्रिज मॉडर्न हिस्ट्री, जिल्द 1 से 10, 1902
- सी.डी.एम. कैटलबी, ए हिस्ट्री ऑफ मॉडर्न टाइम्स, 1964
- सी.डी.हैजन, मॉडर्न यूरोपियन हिस्ट्री, 1938
- सी.एच. फाइप, ए हिस्ट्री ऑफ मॉडर्न यूरोप, 1880
- एच.ए.एल. फिशर, ए हिस्ट्री ऑफ यूरोप, 1939
- पार्थ सारथी गुप्ता, आधुनिक पश्चिम का उदय, 1992
- डेविड थामसन, डेमोक्रेसी इन फ्रांस : दि थर्ड रिपब्लिक, 1946
- जे. पी. टी. बरी, फ्रान्स (1814–1940), 1949
- जे. एच. क्लेपहेम, इकॉनॉमिक डवलपमेण्ट ऑफ फ्रान्स एण्ड जर्मनी (1815–1914), 1928
- एल. एल. स्माइडर , फ्रॉम बिस्मार्क टू हिटलर, 1935
- पार्थ सारथी गुप्ता, यूरोप का इतिहास, 1987
- जे.एच. हेज, पॉलिटिकल एण्ड कल्चरल हिस्ट्री ऑफ मॉडर्न भाग–1 और 2, 1936
- सी.जी. राबर्टसन, बिस्मार्क, 1947

- आर.डब्ल्यू. सेटन वाटसन, डिजरेली, ग्लेडस्टन एण्ड दि इस्टर्न क्वेश्चन, 1935, राइज ऑफ नेशनलिटी न बाल्कन, 1917
- वी.जे. परियार, इंग्लैंड रशा एण्ड दि स्टेट्स क्वेशन (1844–56), 1931
- वर्मा, दीनानाथ, आधुनिक एशिया का इतिहास, 1993 एवं अंतर्राष्ट्रीय संबंध, 1985
- हेतु सिंह बघेला, आधुनिक एशिया का इतिहास, 1996
- जी.पी. गूच, ए हिस्ट्री ऑफ यूरोप, 1946 एवं जर्मनी, 1925
- अहमद मनाजिर एवं सभ्रवाल एस.पी., आधुनिक यूरोप का इतिहास (1789–1950), विशाल पब्लिकेशन, दिल्ली, 1996
- एरख आयक, बिस्मार्क एण्ड द जर्मन एम्पायर, 1928
- ए.जे.पी. टेलर, बिस्मार्क दि मेन स्टेट्समैन, 1965
- पांडेय, वी.सी.–यूरोप का इतिहास, केदारनाथ रामनाथ, मेरठ, 1976
- शर्मा, एम.एल–यूरोप का इतिहास, कालिज बुक डिपो, जयपुर
- Grant at temperaley - Europe in the 19th-20th Century
- Lipson - Europe in the 19th, 20th Century
- Hazen, C.D - Modern Europe up to 1945
- Ketelbey, C.D.M - A history of modern Europe
- Ludwig, Email - Bismark
- राहुल सांकृत्यायन, मध्य एशिया का इतिहास, खण्ड–1, 1956
- राहुल सांकृत्यायन, मध्य एशिया का इतिहास, खण्ड–2, 1957
- बुद्ध प्रकाश, एशिया के सामाजिक और सांस्कृतिक इतिहास की रूपरेखा, हिंदी समिति, लखनऊ, 1971
- वर्मा दीनानाथ, एशिया का आधुनिक इतिहास, भारती भवन, पटना, 1988
- शर्मा अम्बिका प्रसाद, एशिया का इतिहास, ज्ञानदा प्रकाशन, नई दिल्ली, 1995
- शर्मा मथुरालाल, अमेरिका का इतिहास, रिसर्च पब्लिकेशन, जयपुर, 2002
- श्रीवास्तव ब्रजेश कुमार, विश्व इतिहास की विषयवस्तु, SBPD पब्लिकेशन हाउस, आगरा, 2007
- श्रीवास्तव ब्रजेश कुमार, चीन एवं जापान का इतिहास, SBPD, आगरा, 2007

इकाई 3 क्रीमिया युद्ध एवं बर्लिन कांग्रेस के विशेष संदर्भ में पूर्वी समस्या (1815–1890), इंग्लैंड में उदारवाद, सुधार अधिनियम, चार्टिस्ट आंदोलन एवं अलेक्जेंडर व निकोलस के संदर्भ में रूस

संरचना

3.0 परिचय
3.1 उद्देश्य
3.2 क्रीमिया युद्ध तथा बर्लिन कांग्रेस के विशेष संदर्भ में पूर्वी समस्या (1815–1890)
  3.2.1 क्रीमिया का युद्ध 1854–56 ई.
  3.2.2 बर्लिन सम्मेलन 13 जून–13 जुलाई, 1878
3.3 इंग्लैंड में उदारवाद का उदय एवं विकास : 1832, 1867 एवं 1884 ई. के सुधार अधिनियम एवं चार्टिस्ट आन्दोलन
3.4 रूस (1815 से 1890 ई. तक) : अलेक्जेंडर प्रथम एवं निकोलस प्रथम के विशेष संदर्भ में
3.5 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
3.6 सारांश
3.7 मुख्य शब्दावली
3.8 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
3.9 सहायक पाठ्य सामग्री

3.0 परिचय

'परस्पर विरोधी जातियों, धर्मों एवं पृथक् स्थानों के संघर्ष से उत्पन्न जटिल, असाध्य तथा परिवर्तनशील समस्या को पूर्वी समस्या के नाम से जाना जाता है।'

–जॉन मार्ले

उन्नीसवीं शताब्दी में यूरोपीय समस्याओं में सर्वाधिक जटिल एवं महत्वपूर्ण समस्या पूर्वी समस्या थी। पूर्वी समस्या का संबंध बाल्कन प्रायद्वीप के निवासियों से है। बाल्कन तुर्की भाषा का एक शब्द है। इसका अर्थ पर्वत श्रृंखला है। राजनीतिक भूगोल की दृष्टि से बाल्कन क्षेत्र का प्रयोग डैन्यूब नदी और एजियन सागर के मध्य स्थित समस्त पहाड़ी क्षेत्र के लिए होता था। पूर्व–ऐतिहासिक काल से यह क्षेत्र विभिन्न जातियों का संगम स्थल था। जिसमें यूनानी, सर्ब, बल्गार, अल्बानियन एवं रूमानियन आदि कई जातियां निवास करती थीं। बाल्कन क्षेत्र के अधिकांश निवासी ईसाई धर्म के अनुयायी थे। जिन पर अनेक शताब्दियों तक मुस्लिम शासकों ने शासन किया। तुर्कों के क्रूर एवं बर्बर शासन से मुक्ति हेतु इन ईसाइयों में बेहद छट–पटाहट थी। अतः तुर्क साम्राज्य के पतन के पश्चात् ही पूर्वी समस्या अस्तित्व में आयी।

मध्य काल में टर्की का साम्राज्य, जिसे ओटोमन एम्पायर भी कहा जाता है, यूरोप का एक शक्तिशाली साम्राज्य था। क्षेत्रफल की दृष्टि से यह यूरोप में रूसी साम्राज्य

टिप्पणी

के बाद, सबसे बड़ा था। पूर्वी यूरोप के बोस्निया, सर्बिया, यूनान, रूमानिया, बल्गेरिया आदि क्षेत्र ओटोमन साम्राज्य के आधीन आते थे। इस विशाल साम्राज्य के अन्तर्गत आने वाले निवासियों में भाषा, जाति, धर्म, रक्त आदि में कोई मेल न था। एशियायी तुर्क साम्राज्य के अधिकांश निवासी मुसलमान थे। जिनमें तुर्क, अरब और कुर्द प्रमुख थे। जिनका धर्म इस्लाम था। जबकि यूरोपीय तुर्की साम्राज्य में तुर्क अल्पसंख्यक थे और स्लाव जाति के ईसाई बहुसंख्यक थे। सर्बजाति के लोग सर्बिया, मोनीनीग्रो, बोस्निया और हर्जगोबीना में रहते थे। रोमन लोग रूमानिया, मोल्डेविया और वोलेशिया में तथा ग्रीक जाति, यूनान में व सम्पूर्ण बाल्कन प्रायद्वीप में बिखरी हुई बस्तियों में आर्मेनियन और यहूदी रहते थे। वस्तुतः यह जातिगत विषमता भी पूर्वी साम्राज्य का प्रमुख आधार थी। ओटोमन साम्राज्य के अन्तर्गत आने वाली अधिकांश जातियां भाषा, धर्म, संस्कृति में तुर्कों से पूर्णतः भिन्न थीं। तुर्कों ने इन्हें अपने साथ आत्मसात् करने का कोई प्रयास नहीं किया। उलटे इनका शोषण ही किया। इसका परिणाम छोटे–मोटे विद्रोहों एवं पारस्परिक संघर्षों में सामने आया। अतः जॉन मार्ले ने उचित ही लिखा है कि ''परस्पर विरोधी जातियों, धर्मों एवं पृथक् स्थानों के संघर्ष से उत्पन्न जटिल, असाध्य तथा परिवर्तनशील समस्या को पूर्वी समस्या के नाम से जाना जाता है।''

फ्रांस की 1789 ई. की क्रांति का प्रभाव समस्त यूरोप पर पड़ा। इस क्रांति से फ्रांस में ही नहीं, समस्त यूरोप में सुधारों की माँग बलवती हुई। 1815 ई. में इंग्लैंड की आन्तरिक स्थिति अत्यन्त शोचनीय थी। रेम्जे म्योर के अनुसार, ''इंग्लैंड के इतिहास में शायद कभी भी सामाजिक, राजनीतिक एवं आर्थिक संकट इतना गम्भीर नहीं रहा था, जितना कि 1815 ई. में था।'' फ्रांस की क्रांति ने समानता के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया और विशेषाधिकारों के उन्मूलन का प्रबल समर्थन किया। किन्तु इंग्लैंड में स्पष्ट रूप से सामाजिक वर्गों के मध्य भेदभाव व्याप्त था। सत्ता कुलीन वर्ग एवं भद्र पुरूषों के संयुक्त स्वरूप कुलीनतन्त्र में निहित थी। काउण्टी सरकारों में अधिकांश महत्वपूर्ण पदों पर कुलीन वर्ग के व्यक्ति नियुक्त थे। बरो तथा नगर की सरकारों में उनका प्रभाव निर्णायक था। उच्च सदन (हाउस ऑफ लार्ड्स) तो मुख्यतः भू–स्वामियों का ही सदन था। जो कि प्रभावशाली सामाजिक वर्ग का रक्षक था। निम्न सदन (हाउस ऑफ कॉमन्स) भी प्रभावशाली वर्ग का ही प्रतिनिधित्व करता था।

फ्रांस की 1830 ई. की क्रांति से प्रभावित होकर जहाँ इंग्लैंड में 1832 ई. का सुधार अधिनियम पारित हुआ, वहीं फ्रांस की 1848 ई. की क्रांति का प्रभाव ब्रिटेन के चार्टिस्ट आन्दोलन में देखा जा सकता है। इस प्रकार इंग्लैंड में सुधारों का सिलसिला 1832 ई. के सुधार अधिनियम के साथ ही प्रारम्भ हुआ।

नेपोलियन बोनापार्ट के पतन में अभिनीत महत्वपूर्ण भूमिका के परिणामस्वरूप रूस की विएना कॉंग्रेस के उपरान्त यूरोपीय राजनीति में प्रभावशाली स्थिति हो गयी। इतिहास में पहली बार रूस ने यूरोप का नेतृत्व ग्रहण किया था और यूरोपीय शक्तियाँ विशेष रूप से इंग्लैंड और आस्ट्रिया गम्भीर भय एवं आशंका से ग्रस्त थीं। मैटरनिख के लिए रूस के सक्रिय समर्थन के बिना अपनी नीतियों को क्रियान्वित करना सम्भव नहीं था। अस्तु उसने रूस के जार अलेक्जेंडर प्रथम को अपने विचारों, नीतियों एवं भावनाओं के अनुकूल बनाने के लिए अथक प्रयास किया। विएना कॉंग्रेस के समय अलेक्जेंडर सर्वमान्य महत्वपूर्ण शक्ति था। सन् 1850 तक यूरोप के समस्त विवादों

जिसमें शक्तियों के सामूहिक हस्तक्षेप की आवश्यकता होती थी, के समाधान में रूसी प्रभाव एक महत्वपूर्ण तथ्य था। पूर्वी विवाद तो विशेष रूप से पूर्णतया उसके प्रभाव क्षेत्र में ही था। रूस ने बाल्कन क्षेत्र की निरन्तर परिवर्तनशील गतिविधियों एवं समस्याओं में प्रमुख भूमिका का निर्वाह किया।

इस इकाई में हम पूर्वी यूरोप की समस्या, क्रीमिया युद्ध, बर्लिन कांग्रेस, इंग्लैंड में उदारवाद, कुछ संशोधन अधिनियमों और चार्टिस्ट आंदोलन का अध्ययन करेंगे।

3.1 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप–

- तुर्क साम्राज्य के पतन के बाद अस्तित्व में आई पूर्वी समस्या (क्रीमिया युद्ध तथा बर्लिन कांग्रेस संदर्भ में) से अवगत हो पाएंगे;
- इंग्लैंड में उदारवाद के उदय और विकास का अध्ययन कर पाएंगे;
- विभिन्न अधिनियमों तथा चार्टिस्ट आंदोलन की जानकारी ले पाएंगे;
- अलेक्जेंडर I और निकोलस I के विशेष संदर्भ में 1815 से 1890 तक के रूस की स्थिति को समझ पाएंगे।

3.2 क्रीमिया युद्ध तथा बर्लिन कांग्रेस के विशेष संदर्भ में पूर्वी समस्या (1815–1890)

1299 ई. के लगभग तुर्की जाति ने उस्मान (Othman अथवा Osman) के नेतृत्व में तुर्क साम्राज्य अथवा आटोमन साम्राज्य की नींव रखी थी। 1453 ई. में आटोमन तुर्की ने पूर्वी रोमन साम्राज्य (विजेन्टाइन साम्राज्य) की राजधानी कुस्तुनतुनिया (Constantinople) को जीत लिया था। इसके पश्चात् आटोमन साम्राज्य एशिया, यूरोप तथा अफ्रीका तक विस्तृत हो गया। आटोमन साम्राज्य का यूरोपीय भाग बाल्कन प्रायद्वीप कहलाता था। बाल्कन प्रायद्वीप के लोग स्लाव नस्ल के थे और ईसाई धर्म को मानते थे तथा ग्रीक चर्च के अनुयायी थे। 18वीं शताब्दी से ही तुर्की साम्राज्य की शक्ति एवं वैभव में ह्रास के चिह्न दिखाई देने लगे थे। 1789 ई. की फ्रांस की क्रांति ने आटोमन साम्राज्य के अधीन आने वाली यूरोपीय जातियों में भी स्वतन्त्रता की भावना का संचार किया। 19वीं शताब्दी तक आटोमन साम्राज्य की शक्ति इतनी निर्बल हो चुकी थी कि, उसके अधीन ईसाई जातियों ने स्वतन्त्रता हेतु विद्रोह भी आरम्भ कर दिये थे। तुर्की साम्राज्य के पतन के लिए निम्न कारण जिम्मेदार थे–

(1) तुर्क सुल्तान बाल्कन प्रदेश की ईसाई प्रजा पर अनेक प्रकार के जुल्म करते थे, अतः बाल्कन राज्यों ने तुर्की दासता से मुक्ति हेतु संघर्ष आरम्भ किया।

(2) तुर्क सुल्तान इतने सक्षम एवं सामर्थ्यवान नहीं थे कि इस विस्तृत साम्राज्य पर नियन्त्रण रख सकें।

(3) तुर्की की वह सैनिक शक्ति अब पतित हो चुकी थी जिसका लोहा पूर्व में यूरोपवासी मानते थे।

(4) तुर्की के दूरस्थ प्रान्तों के गवर्नरों ने भी स्वतन्त्र होने हेतु विद्रोह प्रारम्भ कर दिये थे।

इस इकाई में हमारा अध्ययन का क्षेत्र 1871 ई. से प्रथम विश्व युद्ध तक पूर्वी समस्या का अध्ययन है। परन्तु इस अवधि के दौरान की पूर्वी समस्या को समझने के लिये इसके पूर्व की पृष्ठ भूमि को समझना अत्यन्त आवश्यक है। पूर्वी समस्या को परिभाषित करते हुए डॉ. मिलर ने कहा है कि 'यूरोप में तुर्की साम्राज्य के विघटन से उत्पन्न शून्यता को भरने की समस्या को ही पूर्वी समस्या कहा जाता है।' इस शून्य को भरने के लिये रूस, आस्ट्रिया, इंग्लैंड एवं फ्रांस जैसे बड़े राष्ट्र प्रयासरत थे। सभी के बाल्कन क्षेत्र में अपने–अपने निहित स्वार्थ थे। अपनी–अपनी स्वार्थ लिप्सा में ये बड़े राष्ट्र इतने उलझ गये कि इन्होंने पूर्वी समस्या को अत्यन्त जटिल बना दिया।

इन यूरोपीय राष्ट्रों की स्वार्थान्धता ने क्रीमिया युद्ध जैसे अत्यन्त व्यर्थ युद्ध को जन्म दिया। रूस ने सेन्ट स्टीफनों की संधि 1877 द्वारा बाल्कन क्षेत्र में वर्चस्व स्थापित किया। रूस का यह बढ़ता वर्चस्व भला इंग्लैंड, फ्रांस एवं आस्ट्रिया कैसे बर्दाश्त करते? फलतः 1878 ई. में बर्लिन सम्मेलन आयोजित किया गया। इस सम्मेलन में ईमानदार दलाल की भूमिका निभाने का वादा करने वाला बिस्मार्क ईमानदार नहीं रहा। आस्ट्रिया की ओर उसका झुकाव देखकर रूस नाराज हो गया। रूस की सेन्ट स्टीफनों में प्राप्त प्रतिष्ठा को बर्लिन सम्मेलन ने धोकर रख दिया। परिणामस्वरूप बर्लिन सम्मेलन ने और समस्यायें खड़ी कर दीं। अतः एक बार पुनः बाल्कन देशों को प्रथम एवं द्वितीय बाल्कन युद्धों से गुजरना पड़ा। ये बाल्कन युद्ध ही प्रथम विश्व युद्ध की पृष्ठभूमि बने।

इस इकाई में हम निम्नलिखित बिन्दुओं के अंतर्गत पूर्वी समस्या का 1871 से प्रथम विश्वयुद्ध तक विस्तृत अध्ययन प्रस्तुत करेंगे–

1. पूर्वी समस्या की पृष्ठ भूमि।
2. पूर्वी समस्या एवं यूरोपीय गुटबन्दी।
3. पूर्वी समस्या में विभिन्न प्रमुख यूरोपीय राष्ट्रों के स्वार्थ।
4. क्रीमिया युद्ध 1854–56 ई.: कारण, परिणाम एवं महत्व।
5. रूस तुर्की युद्ध : सेन स्टीफनों की संधि 1877–78।
6. बर्लिन सम्मेलन 1878।

पूर्वी समस्या एवं यूरोपीय गुटबन्दी

तुर्क साम्राज्य की पतनोन्मुखी स्थिति को देखते हुए, यह प्रश्न सर्वमहत्वपूर्ण बन गया कि तुर्की द्वारा रिक्त स्थान, यूरोप का कौन–सा देश लेगा। इसी प्रश्न के मद्देनजर डॉ. मिलर ने पूर्वी समस्या को स्पष्ट करते हुए लिखा है कि ''यूरोप में तुर्की साम्राज्य के क्रमशः विघटन से उत्पन्न शून्यता को भरने की समस्या को ही पूर्व की समस्या कहते हैं। ''जहाँ एक ओर फ्रांसीसी क्रांति (1789 ई.) द्वारा प्रसारित स्वतन्त्रता एवं राष्ट्रीयता की भावनाओं से प्रेरित होकर बाल्कन प्रायद्वीप के ईसाई लोग स्वतन्त्रता का स्वप्न देख रहे थे, वहीं यूरोप की विभिन्न बड़ी–बड़ी शक्तियाँ इस अवसर का लाभ अपने हितों के लिए उठाना चाहती थीं। अतएव तुर्की के भविष्य के प्रश्न को लेकर

यूरोपीय राज्य दो गुटों में बँट गये। पूर्वी समस्या को लेकर इस गुटबन्दी में दोनों गुटों के उद्देश्य निम्नवत् थे–

(1) एक गुट बाल्कन राज्यों में चलने वाले स्वतन्त्रता आन्दोलनों का समर्थक था। वह तुर्की साम्राज्य का पतन चाहता था। बाल्कन क्षेत्र से तुर्की साम्राज्य को उखाड़ फेंकने के समर्थन वाले इस गुट का प्रबल समर्थक रूस था।

(2) उपर्युक्त गुट के विपरीत दूसरा गुट किसी भी तरह तुर्की के विघटन को रोककर उसकी अखण्डता बनाये रखने का पक्षधर था। इस गुट का प्रबल समर्थक ब्रिटेन था।

इस प्रकार इन परस्पर विरोधी उद्देश्यों को लेकर इन गुटों में जो संघर्ष की समस्या सामने आयी, वही पूर्वी समस्या थी। इसीलिए मैरियट ने ठीक ही लिखा है कि ''पूरब की समस्या एक ऐसी समस्या थी। जिसने यूरोपीय देशों में पारस्परिक वैमनस्य उत्पन्न कर दिया'' और इस वैमनस्य का प्रमुख कारण था तुर्की का प्रश्न– इस तारतम्य में हेग ने उचित ही लिखा है कि ''इस समय यूरोपीय राष्ट्रों के समक्ष सबसे प्रमुख समस्या यह थी कि क्या तुर्की का यूरोप में नामोनिशान मिटा दिया जाय अथवा उसके अस्तित्व को यथास्थिति बनाये रखा जाय और यदि यूरोप से तुर्की का अस्तित्व मिटा दिया जाय, तो इसका स्थान कौन ले।''

पूर्वी समस्या में विभिन्न प्रमुख यूरोपीय राष्ट्रों के स्वार्थ

तुर्की पतनावस्था से यूरोप में जो पूर्वी समस्या सामने आयी, उसे लेकर यूरोप के विभिन्न प्रमुख राष्ट्रों के स्वार्थ निम्नवत् हैं–

पूर्वी समस्या में रूस के स्वार्थ–1774 ई. में कुचुक केनार्जी (Kuchuk Kainarji) की सन्धि के अन्तर्गत तुर्की के सुल्तान द्वारा रूस को आजोव (Ajov) का बन्दरगाह तो दे ही दिया था। साथ ही काला सागर में रूस के व्यापारिक जहाजों को आने–जाने का अधिकार भी प्रदान कर दिया गया था। साथ ही बाल्कन क्षेत्र में रहने वाले ग्रीक चर्च के अनुयायी ईसाइयों पर रूस का संरक्षण भी स्वीकार कर लिया गया था। कालान्तर में 1792 ई. की जासी की सन्धि के अंतर्गत नीस्टर नदी तक का क्षेत्र भी रूस की सीमा में आ गया था। इस प्रकार अठारहवीं सदी के अन्त तक आते–आते रूसी दैत्य की भूख दक्षिण की ओर निरन्तर बढ़ती गयी। वस्तुतः तुर्की के प्रभाव क्षेत्र में आने वाले बाल्कन प्रायद्वीय में रूसी स्वार्थ निम्नवत् थे–

(1) रूस एक महत्वाकांक्षी देश था। उसके पास व्यापार हेतु कोई समुद्र तट नहीं था। अतः वह काला सागर में अपना प्रभुत्व स्थापित करना चाहता था।

(2) डार्डेनलीज (Dardanelles) एवं बास्फोरस (Bosphorus) पर भी रूस की गिद्ध दृष्टि केन्द्रित थी।

(3) रूस तथा बाल्कन क्षेत्र के निवासी समान नस्ल (स्लाव) एवं समान चर्च (ग्रीक) के अनुयायी थे। अतः रूस बाल्कन क्षेत्र के ग्रीक चर्चानुयायी स्लावों की तुर्की से रक्षा करना अपना परम कर्तव्य मानता था।

उपर्युक्त कारणों से ही रूसी दैत्य निरन्तर दक्षिण की ओर मरणासन्न तुर्की को हजम करने हेतु बढ़ता रहा।

पूर्वी समस्या में इंग्लैंड के स्वार्थ–तुर्की के विघटन और रूस की महत्त्वाकांक्षाओं की पूर्ति का अर्थ था, इंग्लैंड के पूर्वी साम्राज्य को खतरा उत्पन्न होना, क्योंकि रूस द्वारा तुर्की का स्थान ले लेने से रूस की सीमाएँ इंग्लैंड के भारतीय साम्राज्य से टकराने लगती। अतः इंग्लैंड के राजनीतिज्ञ रसैल ने कहा भी था कि ''यदि रूस को डेन्यूब पर नहीं रोका गया तो हमें उसे सिन्धु पर रोकना पड़ेगा।'' अतः इंग्लैंड अपनी दूरदर्शिता पूर्ण सोच के कारण अपने पूर्वी साम्राज्य और व्यापार की रक्षा के लिए यथासम्भव मरणासन्न तुर्की को एक अभेद दीवार के रूप में बनाये रखना चाहता था।

पूर्वी समस्या और आस्ट्रिया के स्वार्थ–आस्ट्रिया रूस का निकटतम पड़ोसी था। अतः वह कदापि नहीं चाहता था कि तुर्की को नेस्तनाबूद करके रूस शक्तिशाली बने। डार्डेनलीज, बास्फोरस एवं डेन्यूब घाटी में रूस की महत्वाकांक्षाओं का पता चलने पर आस्ट्रिया रूस का विरोधी हो गया। अतः आस्ट्रिया भी रूस की महत्वाकांक्षाओं को रोकने के लिये तुर्की के विघटन के पक्ष में नहीं था।

पूर्वी समस्या और फ्रांस के स्वार्थ–नेपोलियन बोनापार्ट ने सर्वप्रथम फ्रांस के लिए तुर्की साम्राज्य की उपयोगिता की ओर लोगों का ध्यान आकर्षित किया था। फ्रांस अपनी औपनिवेशिक महत्वाकांक्षाओं के मद्देनजर तुर्की के अफ्रीकी साम्राज्य में व्यापारिक सुविधाएँ प्राप्त करना चाहता था। तुर्की साम्राज्य के अन्तर्गत पेलेस्टाईन में स्थित जेरूसलम के पवित्र तीर्थ स्थान में शाताब्दियों से ग्रीक एवं कैथोलिक संन्यासी रहते थे। तुर्क सम्राट सुलेमान ने 1535 ई. में पवित्र स्थानों के संरक्षण का काम कैथोलिकों को प्रदान कर फ्रांस को रोमन ईसाइयों का संरक्षक स्वीकार किया था। फ्रांस की क्रांति (1789 ई.) के समय से, कैथोलिकों ने यहाँ रूचि लेना बन्द कर दिया और उन पवित्र स्थानों पर यूनानी सन्यासियों (Greek Monks) का अधिकार हो गया। यूनानी संन्यासियों (ग्रीक चर्च) का मुखिया रूस था। अतः पवित्र स्थानों के संरक्षण का प्रश्न भी फ्रांस एवं रूस के मध्य मतभेद का केन्द्र था। अतः फ्रांस कैथोलिक (Latin) चर्च के अनुयायियों की रक्षा को अपनी प्रतिष्ठा का बिन्दु बनाकर तुर्की में अपना प्रभुत्व बनाये रखना चाहता था।

इस प्रकार यूरोप के सभी देश बाल्कन राज्यों की मुक्ति का नारा लगाकर अपने स्वार्थों को साधना चाहते थे परन्तु उनके स्वार्थ आपसी प्रतिद्वन्द्विता और टकराव के बिना पूरे नहीं हो सकते थे। इसका परिणाम यह हुआ कि, बाल्कन राज्यों की मुक्ति के पेचीदा मामले को यूरोपीय महाशक्तियों ने निहित स्वार्थों के वशीभूत और अधिक पेचीदा बना दिया।

यूरोपीय शक्तियों के स्वार्थों का केन्द्र बिन्दु तुर्की की पतनोन्मुख स्थिति थी इसीलिए इतिहासकारों ने तुर्की को यूरोप का बीमार (Sick Man of Europe) की संज्ञा दी है। यह संज्ञा इसलिए उचित प्रतीत होती है कि वास्तव में तुर्की एक ऐसा बीमार था जिसका कोई इलाज नहीं था और सही मायनों में यूरोपीय महाशक्तियाँ इस बीमारी का भी अपने–अपने हितों के अनुसार इलाज करना चाहती थीं। इससे पूर्वी समस्या की पेचीदगियाँ सुलझने के स्थान पर और अधिक उलझती ही चली गयीं।

3.2.1 क्रीमिया का युद्ध 1854–56 ई.

19वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में पूर्वी समस्या एक न सुलझने वाली और पेचीदा समस्या होती जा रही थी। जिसके 3 प्रमुख कारण हैं–

(1) टर्की की शक्ति का पतन होना।

(2) बाल्कन प्रदेश में छोटे–छोटे अनेक ईसाई राज्यों की स्थापना और उनके द्वारा मुक्ति आन्दोलन चलाना।

(3) प्रथम दोनों कारणों का यूरोपीय शक्तियों पर प्रभाव पड़ना और उनका उस समस्या में भाग लेना।

पूर्वी समस्या भले ही कितनी पेचीदा थी, परन्तु 1854 ई. तक इस समस्या को लेकर कोई यूरोपीय युद्ध नहीं हुआ था, परन्तु 1854 ई. में युद्ध टाला नहीं जा सका। यह युद्ध क्रीमिया के युद्ध के नाम से जाना जाता है।

युद्ध के कारण

इतिहासकारों ने इसे 19वीं शताब्दी का सर्वाधिक व्यर्थ और अनावश्यक युद्ध कहा है।

इंग्लैंड की महारानी क्वीन विक्टोरिया के अनुसार, ''जार निकोलस प्रथम की स्वार्थपरता एवं महत्वाकांक्षा इसका कारण बनी।''

किंग लेक के अनुसार, ''फ्रांस का शासक नेपोलियन III मुख्यतः इस युद्ध के लिए उत्तरदायी था।''

कुछ इतिहासकारों के अनुसार, ''इंग्लैंड, तुर्की में किसी भी देश के बढ़ते प्रभाव को ईर्ष्या की दृष्टि से देखता था अतः यह युद्ध हुआ।''

उपरोक्त सभी मतों में आंशिक सत्यता की झलक थी। क्रीमिया युद्ध के कुछ मुख्य परिणाम इस प्रकार हैं–

क्रीमिया युद्ध के परिणाम

परिणामों की दृष्टि से क्रीमिया का युद्ध 19वीं शताब्दी के इतिहास की एक महत्वपूर्ण घटना थी। इस युद्ध के पश्चात् तुर्की पर रूसी संरक्षण के स्थान पर यूरोपीय संरक्षण स्थापित हो गया। रूस एवं तुर्की की अर्थवव्यवस्था चरमरा गई, ब्रिटेन पर भी राष्ट्रीय कार्य बढ़ गया। विभिन्न देशों पर क्रीमिया युद्ध के प्रभाव पड़े जो इस प्रकार हैं–

(1) तुर्की पर प्रभाव–पेरिस की सन्धि से तुर्की को रूस का भय समाप्त हो गया। तुर्की को यूरोपीय संहिता (Concert of Europe) में शामिल कर लिया गया। इस प्रकार पेरिस की सन्धि ने यूरोप के इस बीमार को कुछ समय के लिए नवजीवन प्रदान कर दिया।

(2) रूस पर प्रभाव–पेरिस की सन्धि ने रूस की कनार्डजी, एड्रियानोपल एवं अंकियार स्केलेक्सी इत्यादि सन्धियों में प्राप्त उपलब्धियों पर पानी फेर दिया। पिछले डेढ़ सौ वर्षों से रूस निम्न उद्देश्यों के लिए प्रयत्नशील था–

(i) काला सागर में प्रभुत्व।

(ii) भूमध्य सागर तक पहुँचने हेतु जलमार्ग की प्राप्ति।

(iii) तुर्की साम्राज्य के अधीन ग्रीक चर्च के अनुयायी ईसाइयों पर संरक्षण इन तीनों उद्देश्यों को प्राप्त करने में रूस ने काफी सफलता प्राप्त भी कर ली थी,

टिप्पणी

परन्तु पेरिस की सन्धि ने इन सभी उपलब्धियों को धो डाला। काला सागर को तटस्थ बनाया जाना रूस की महत्वाकांक्षाओं पर गहरा आघात था। रूस आस्ट्रिया की बहुचर्चित मैत्री टूट गयी। रूस ने पूर्वी यूरोप में अपना मार्ग रूक जाने के कारण मध्य एशिया में ध्यान केन्द्रित किया। क्रीमिया युद्ध की पराजय से जार एलैक्जेण्डर द्वितीय ने कई आन्तरिक उपयोगी सुधार किये।

(3) ब्रिटेन पर प्रभाव–इस युद्ध में ब्रिटेन की अधिक जन–धन की हानि हुई और बदले में उसे न तो एक इन्च भूमि मिली और न ही युद्ध हर्जाने के रूप में धनराशि परन्तु तुर्की की अखण्डता को बनाये रखना एवं रूस के वर्चस्व की समाप्ति का उसका उद्देश्य पूर्ण हो गया। राष्ट्रीय कर्ज में वृद्धि हुई।

(4) फ्रांस पर प्रभाव–फ्रांस को भी कोई भू–भाग एवं हर्जाना भले ही न मिला लेकिन नेपोलियन तृतीय के साथ–साथ यूरोप में फ्रांस की प्रतिष्ठा में बहुत वृद्धि हुई।

(5) इटली पर प्रभाव–कैटलबी के अनुसार, ''क्रीमिया के कीचड़ से इटली का जन्म हुआ।'' क्रीमिया के युद्ध में मित्र राष्ट्रों का साथ देने से कैबूर को इटली के एकीकरण की समस्या को यूरोपीय राष्ट्रों के समक्ष रखने का सुअवसर मिला। इस हेतु इंग्लैंड व फ्रांस का समर्थन उसे प्राप्त हुआ। इस घटना से प्रभावित होकर कालान्तर में इटली के देशभक्तों ने अन्ततः इटली का एकीकरण सम्पन्न कर लिया।

(6) जर्मनी पर प्रभाव–क्रीमिया के युद्ध में तटस्थ रहकर प्रशा के प्रधानमन्त्री बिस्मार्क ने रूस की सहानुभूति प्राप्त कर ली थी। दूसरी ओर आस्ट्रिया एवं रूस के मध्य दूरियाँ बढ़ गयी थीं। अतः जर्मन एकीकरण हेतु होने वाले आस्ट्रिया जर्मन युद्ध में रूस भी तटस्थ रहा और आस्ट्रिया परास्त हुआ। इस तारतम्य में लार्ड फिज मारिस ने लिखा है कि ''यदि क्रीमिया का युद्ध न होता तो अगली दो शताब्दियों में संयुक्त इटली और संयुक्त जर्मनी का निर्माण न हो पाता।''

आस्ट्रिया पर प्रभाव–क्रीमिया के युद्ध ने आस्ट्रिया एवं रूस के बीच एक ऐसी खाई पैदा कर दी जो कि कभी भरी नहीं जा सकी। चूँकि आस्ट्रिया के अल्टीमेटम के कारण ही रूस को सन्धि की शर्तें स्वीकार करनी पड़ी थी अतः रूस आस्ट्रिया का घोर शत्रु बन गया था। फ्रांस एवं इंग्लैंड को भी आस्ट्रिया पर विश्वास न रहा, फ्रांस ने तो इटली को एकीकरण का आश्वासन तक दे दिया। अतः आस्ट्रिया मित्रहीन हो गया, इसी कारण कुछ ही वर्षों के पश्चात् इटली एवं जर्मनी का एकीकरण सम्पन्न हुआ।

क्रीमिया युद्ध का महत्व

ग्राण्ट और टेम्परले के अनुसार, ''विज्ञान के आधुनिक साधनों के बिना लड़ा जाने वाला यह अन्तिम बड़ा युद्ध था। इसके उद्देश्य और कूटनीतिक प्रणाली पर मध्ययुग की छाप थी। क्योंकि उसके कारणों में क्रूरोड के काल के समान, धार्मिक समस्याएँ भी एक कारण बन गयी थीं।'' क्रीमिया युद्ध का एक और महत्व यह था कि इस युद्ध में इंग्लैंड की एक महिला फ्लोरेंस नाइटिंगेल (Florence Nightingale) ने सैनिक शिविरों में जाकर घायलों एवं रोगियों की सेवा की एवं चिकित्या सुविधाएँ उपलब्ध कराने का पवित्र कार्य किया। कालान्तर में उनकी इन उल्लेखनीय सेवाओं के लिए उन्हें लेडी विद द लैम्प (Lady with the Lamp) की उपाधि से सम्मानित किया गया।

उन्हीं की प्रेरणा से 1864 ई. में आयोजित जिनेवा सम्मेलन में अन्तर्राष्ट्रीय रेडक्रॉस संस्था की स्थापना हुई।

क्रीमिया का युद्ध और पेरिस की सन्धि पूर्वी समस्या का स्थायी समाधान खोजने में असफल रही। पेरिस की सन्धि की स्याही अभी सूख भी नहीं पायी थी कि, इसकी शर्तों का उल्लंघन प्रारम्भ हो गया। रूस की शक्ति पूर्णतः समाप्त नहीं हुई थी। कुछ समय पश्चात् ही उसने पुनः पूर्व की समस्या में हस्तक्षेप प्रारम्भ कर दिया। 1870–71 ई. में रूस ने काला सागर सम्बन्धी धाराओं की धज्जियाँ उड़ाते हुए, पुनः यहाँ प्रभाव क्षेत्र स्थापित करना आरम्भ किया। अतः कैटलबी ने लिखा है कि ''क्रीमिया युद्ध घटना के रूप में मामूली, स्वरूप में अगौरवपूर्ण तथा उद्देश्यों की पूर्ति की दृष्टि से व्यर्थ था।'' पूर्वी समस्या भी सुलझने के स्थान पर और अधिक उलझ गयी और क्रीमिया युद्ध के पश्चात पूर्वी समस्या में कुछ नवीन समीकरण बने।

रूस–तुर्की युद्ध : सेन स्टीफनों की सन्धि 1877–78

सर्बिया को स्वशासन (1817), यूनान की स्वतन्त्रता (1830), एवं स्वतन्त्र रोमानिया राज्य का निर्माण (1862) आदि ने बाल्कन के पराधीन देशों में राष्ट्रीयता का विकास किया।

तुर्की सुल्तान ने 1856 की पेरिस सन्धि के द्वारा अपने साम्राज्य के ईसाइयों के प्रति अच्छा व्यवहार करने का आश्वासन दिया था। परन्तु यह कभी पूरा नहीं किया गया। अतः अखिल (सर्ब) स्लाव आन्दोलन ने जोर पकड़ा इस आन्दोलन को पेरिस सन्धि से असन्तुष्ट राष्ट्र रूस ने हवा दी। फलतः पूर्वी समस्या और अधिक उलझ गयी।

1874 ई. में बोस्निया और हर्जगोवीना में फसलों का खराब होना और तुर्क अधिकारियों द्वारा बलपूर्वक कर वसूलने के प्रश्न पर बाल्कन क्षेत्रों में विद्रोह हो गया। विद्रोह का विस्तार रोकने के लिये यूरोपीय राज्यों ने 1876 ई. में सुल्तान को वियना नोट भेजा। इसके बाद बर्लिन स्मृति पत्र भेजा परन्तु इन दोनों को ही इंग्लैंड का अनुमोदन प्राप्त नहीं था। इसी मध्य तुर्की सेना ने बल्गारों के विद्रोह को अमानुषिक ढंग से दबाया परिणाम यह हुआ कि सर्बिया तथा मान्टनीग्रो भी तुर्की के विरुद्ध युद्ध में आ गये।

इन्हीं परिस्थितियों में रूस ने तुर्की को चेतावनी दी और 24 अप्रैल, 1877 को तुर्की के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी।

रूस तुर्की युद्ध

रूस तुर्की युद्ध में तुर्की की सेनायें पराजित हुई। सोफिया और एड्रियानोपल पर रूसी सेनाओं का अधिकार हो गया। विवश होकर तुर्की सुल्तान को सन्धि पर हस्ताक्षर करने पड़े।

सेन स्टीफनों की सन्धि 3 मार्च, 1878

1. तुर्की ने सर्बिया और मोंटेनेग्रो की स्वतन्त्रता को स्वीकार कर लिया। दोनों को कुछ प्रदेश भी प्राप्त हुये।
2. रोमानिया की स्वतन्त्रता को स्वीकार किया गया और उससे बेसर्बिया लेकर दोग्रुजा का शेष भाग दिया गया।
3. तुर्की सुल्तान ने बोस्निया हर्जगोवीना में सुधार का वचन दिया।

टिप्पणी

4. तुर्की सुल्तान ने डेन्यूब नदी पर स्थित किलों को नष्ट करना स्वीकार किया।
5. रूस को दोग्रूजा, बेसर्बिया का कुछ भाग एवं अर्धहान, बातून, कार्स और बाइजीन के प्रदेश प्राप्त हुये।
6. वृहद् बल्गारिया के स्वतन्त्र राज्य का निर्माण हुआ।

सेन्ट स्टीफनों सन्धि का महत्व

(1) सेन स्टीफनों की सन्धि के फलस्वरूप रूस का बाल्कन क्षेत्रों पर प्रभावी नियन्त्रण स्थापित हो गया।

(2) तुर्की साम्राज्य की सीमायें सिकुड़ गयी।

(3) वृहत् बल्गारिया राज्य की स्थापना से यूरोपीय राष्ट्र चिन्तित हुये।

(4) रूस द्वारा प्राप्त लाभों को यूरोपीय देशों में ईर्ष्या और सन्देह की दृष्टि से देखा गया। तथा इसे काला सागर प्रदेश पर सम्भावित प्रभुत्व को खतरा माना।

इंग्लैंड तथा आस्ट्रिया ने सेनस्टीफनों की सन्धि पर पुनर्विचार के लिये यूरोपियन राज्यों का सम्मेलन बुलाने की माँग की।

3.2.2 बर्लिन सम्मेलन 13 जून–13 जुलाई, 1878

बाल्कन में राष्ट्रीयता का विकास तुर्की सुल्तान की हठधर्मिता और रूस के हस्तक्षेप के परिणामस्वरूप 1877–78 में रूस तुर्की युद्ध हुआ और तुर्की सुल्तान की पराजय हुई अतः मार्च 1878 में सेन स्टीफनों की सन्धि हुयी।

यूरोपीय राष्ट्र बाल्कन प्रश्न को यूरोपीय प्रश्न मानते हुए और सेनस्टीफनो की सन्धि पर पुनर्विचार के लिये यूरोपिय राज्यों का सम्मेलन बुलाना चाहते थे। परन्तु रूस इसके लिये तैयार न था। किंतु जब यूरोपीय राष्ट्रों ने रूस को युद्ध की धमकी दी तब उसे विवश होकर सन्धि पर पुनर्विचार की माँग को स्वीकार करना पड़ा।

बर्लिन सम्मेलन (1878)

सेनस्टीफनों की सन्धि पर पुनर्विचार के लिये बर्लिन में 13 जून से 13 जुलाई 1878 तक एक सम्मेलन हुआ जिसमें रूस और तुर्की के साथ–साथ यूरोप की सभी बड़ी शक्तियों ने भाग लिया। सम्मेलन में मुख्य निर्णायक भूमिका आस्ट्रियाई विदेश मंत्री एन्ड्रेसी, इंग्लैंड के डिजरायली और जर्मनी के चांसलर बिस्मार्क ने निभायी। सम्मेलन के अध्यक्ष जर्मनी के चांसलर बिस्मार्क ने ईमानदार दलाल (Honest Broker) की भाँति कार्य करने का आश्वासन दिया। सम्मेलन के महत्वपूर्ण निर्णय निम्नलिखित थे–

(1) वृहत् बल्गारिया को 3 भागों में विभक्त किया गया।

(अ) बल्गारिया–इसे तुर्की की अधीनता में स्वतन्त्र मान लिया गया।

(ब) पूर्वी रूमेलिया–इसका शासन यूरोपीय शक्तियों द्वारा अनुमोदित ईसाई गवर्नर द्वारा किया जाना था।

(स) मेसीडोनिया–यह तुर्की प्रभुत्व में बना रहा।

(2) बोस्निया तथा हर्जगोवीना तुर्की प्रभुत्व में बने रहे परन्तु इनका प्रशासन आस्ट्रिया को सौंप दिया गया।

(3) नोवी बाजार के संजक (गलियारा) में आस्ट्रिया को अपनी सेनायें रखने का अधिकार मिला।

(4) रोमानिया को स्वतन्त्र राष्ट्र के रूप में मान्यता मिली। उसे दोग्रूजा का प्रदेश मिला परन्तु बदले में इससे बेसर्बिया लेकर रूस को दे दिया गया।

(5) सर्बिया की स्वतन्त्रता को मान्यता दी गयी उसे नीस एवं वृहत् बल्गारिया का कुछ भाग प्राप्त हुआ।

(6) मोंटेनेग्रो की स्वतन्त्रता को मान्यता प्राप्त हुयी। उसे एड्रियाटिक पर एन्टवारी का बन्दरगाह प्राप्त हुआ।

(7) रूस को यूरोप में बेसर्बिया और एशिया में बातूम, कार्स तथा अर्धहान का भाग प्राप्त हुआ।

(8) तुर्की को अल्बानिया तथा मेसीडोनिया के भाग पुनः प्राप्त हुये सुल्तान ने अपनी ईसाई प्रजा की दशा सुधारने का वचन दिया।

(9) इंग्लैंड ने तुर्की से पृथक उपसन्धि की और रूसी आक्रमण की स्थिति में तुर्की की सहायता करने का वचन दिया। बदले में इंग्लैंड को साइप्रस द्वीप प्राप्त हुआ।

आलोचनात्मक समीक्षा

बर्लिन सम्मेलन के निर्णायकों ने बाल्कन क्षेत्र के मानचित्र में जो परिवर्तन किये उसमें अनेक दोष थे–

(1) बर्लिन सम्मेलन के निर्णायकों का मुख्य उद्देश्य पूर्वी समस्या का स्थायी एवं सन्तोषजनक समाधान खोजना था। परन्तु यह सम्मेलन ऐसा समाधान खोजने में असफल रहा।

(2) प्रत्येक बाल्कन राज्य असन्तुष्ट हुआ। डेविड थाम्पसन के अनुसार बर्लिन कांग्रेस के निर्णयों का विशिष्ट परिणाम यह निकला कि प्रत्येक राष्ट्र और अधिक चिन्तित और असन्तुष्ट हो गया।

(अ) सर्बिया, बोस्निया और हर्जगोवीना का प्रशासन आस्ट्रिया को देने से रूष्ट हो गया।

(ब) वृहत् बल्गारिया के विभाजन से बल्गारिया की राष्ट्रीय आकांक्षा ध्वस्त हो गयी। पूर्वी रोमानिया से उसका विभाजन राष्ट्रीयता की शिक्षाओं की उपेक्षा था।

(स) रोमानिया को अपना उपजाऊ प्रदेश बेसर्बिया रूस को देना पड़ा।

(द) यूनान ने थेसली, एपीरस और क्रीट की माँग की थी परन्तु उसे निराश होना पड़ा।

(3) बड़ी समस्याओं का जन्म

(अ) आस्ट्रिया को स्लाव क्षेत्र का प्रशासन देना पड़ा।

(ब) नोबी बाजार के संजक में आस्ट्रिया को सेना रखने का अधिकार मिला इसके कारण ही आस्ट्रिया एवं सर्बिया में तनाव बढ़ा जो अन्ततः प्रथम विश्वयुद्ध का तात्कालिक कारण बना।

(स) रूस की महत्वाकांक्षायें रोकी नहीं जा सकीं।

F.V. **वेन्स के अनुसार**

''सेन स्टीफनों में जो प्रतिष्ठा रूस को प्राप्त हुई थी उसे बर्लिन सन्धि ने धो दिया।''

(4) तुर्की सम्बन्धी ब्रिटेन की असफल नीति–इस विषय में लॉर्ड सेलसबरी ने कहा था, "In the Congress of Berlin Great Britain Backed the wrong horse." इंग्लैंड ने गलत घोड़े पर दाव लगाया क्योंकि इंग्लैंड तुर्की का विघटन हमेशा के लिये नहीं रोक पाया। तुर्की ने आर्मीनिया पर अत्याचार किये।

(5) ससम्मान शान्ति नहीं– बर्लिन से लौटने पर डिजरायली का यह कथन कि, I have come peace with honour. (मैं ससम्मान शांति लाया हूँ) निरर्थक साबित हुआ।

(अ) रूस के अफगानिस्तान की ओर विस्तार की नीति से भारत के उत्तर पश्चिम सीमान्त की सुरक्षा की नयी समस्या पैदा हुई।

(ब) मेसीडोनिया के ईसाईयों पर तुर्कों का कुशासन जारी रहा।

(स) तुर्की से साइप्रस को लेने के बावजूद ब्रिटेन उसे जिब्राल्टर नहीं बना पाया।

(द) सम्मेलन में आस्ट्रिया के हितों को अनावश्यक मान्यता दी गयी इससे समस्या और जटिल हुयी।

(6) ईमानदार दलाल का दावा गलत– बिस्मार्क ने आस्ट्रिया के हितों की रक्षा की खातिर रूसी हितों को तिलांजलि दी। इस प्रकार उसका ईमानदार दलाल की भूमिका निभाने का दावा गलत साबित हुआ।

(8) अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों पर प्रभाव

(अ) इंग्लैंड व रूस के मध्य दीर्घकालीन तनाव बना रहा।

(ब) रूस जर्मनी से विमुख हो गया। अतः त्रिराष्ट्र संघ टूट गया।

(स) 1879 की आस्ट्रिया जर्मन सन्धि इसका परिणाम थी।

(द) आस्ट्रिया–रूस, आस्ट्रिया–सर्बिया, बल्गारिया–सर्बिया में तनाव कायम हुआ।

(य) यूरोप में गुटबन्दी प्रणाली का आरम्भ हुआ।

यद्यपि बर्लिन सम्मेलन केकारण 1878 से 1913 तक बाल्कन प्रायःद्वीप दीर्घकाल तक युद्धों से मुक्त रहा इसीलिये प्रो. टेलर ने ''बर्लिन कांग्रेस को एक जल विभाजक रेखा माना।'' परन्तु यह भी सत्य है कि इस सम्मेलन ने महायुद्ध की ओर कदम बढ़ाया।

अपनी प्रगति जांचिए

1. क्रीमिया के कीचड़ से किस देश का जन्म हुआ :
   (क) जर्मनी (ख) इटली
   (ग) फ्रांस (घ) हॉलैंड
2. बर्लिन सम्मेलन कब आयोजित किया गया :
   (क) 1856 A.D. (ख) 1878 A.D.
   (ग) 1890 A.D. (घ) 1900 A.D.
3. बर्लिन कांग्रेस में एक ईमानदार दलाल की भूमिका किसने निभाई :
   (क) गॉरचकोव (ख) बिस्मार्क
   (ग) सेल्सबरी (घ) डिजरायली
4. बर्लिन से लौटने के पश्चात् किसने कहा कि 'मैं सम्मान सहित शान्ति लाया हूँ' :
   (क) बिस्मार्क (ख) सेल्सबरी
   (ग) डिजरायली (घ) केटलबी

3.3 इंग्लैंड में उदारवाद का उदय एवं विकास : 1832, 1867 एवं 1884 ई. के सुधार अधिनियम एवं चार्टिस्ट आन्दोलन

उदारवाद (Liberalism) वह विचारधारा है जिसके अंतर्गत मनुष्य को विवेकशील प्राणी मानते हुए सामाजिक संस्थाओं को मनुष्यों की सूझबूझ और सामूहिक प्रयास का परिणाम समझा जाता है। उदारवाद की उत्पत्ति को 17वीं शताब्दी के प्रारंभ से देखा जा सकता हैं। जॉन लॉक को उदारवाद का जनक माना जाता है। आरंभिक उन्नायकों में एडम स्मिथ और जेरमी बेंथम के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

उदारतावाद व्यक्तिगत स्वतंत्रता के समर्थन का राजनैतिक दर्शन है। वर्तमान विश्व में यह अत्यन्त प्रतिष्ठित धारणा है। पूरे इतिहास में अनेकों दार्शनिकों ने इसे बहुत महत्व एवं मान दिया। इस सिद्धांत के अनुसार बुद्धिमान व्यक्ति समाजिक संगठनों का निर्माण करते हैं।

उदारतावाद, भिन्न प्रसंगों में भिन्न–भिन्न अर्थ रखता था किंतु सर्वत्र एक धारणा समान थी, कि सामंतवादी व्यवस्था के अनिवार्य रूप– समाज के अभिजात नेतृत्व संबंधी विचार उखाड़ फेंके जाएँ। नव अभिजात वर्ग–मध्य वर्ग–विकासशील औद्योगिक केंद्रों के मजदूर वर्ग के सहयोग से इस क्रांति को संपन्न करे। (मध्य वर्ग धनोपार्जन के निमित्त राजनीतिक तथा आर्थिक स्वतंत्रता चाहता था।

अमरीकी स्वतंत्रता के घोषणापत्र (1776), फ्रांस की क्रांति और अन्य आंदोलनों से प्रेरित 19वीं शताब्दी के मध्य में इग्लैंड के उदारतावादी, पुराने ''व्हिग'' दल के

उत्तराधिकारी होते हुए भी, नागरिक तथा धार्मिक स्वतंत्रता के परंपरागत उपासक आभिजात्यों से पूर्णतया भिन्न थे। 1830 के पश्चात् तथा इस शताब्दी के उत्तरार्ध में 'उदारवाद' शब्द इंग्लैंड में भी आरम्भ हो गया तथा सम्मानित माना जाने लगा। इससे इस विचार ने प्रश्रय पाया कि मानव व्यक्तित्व मूल्यवान् है और यह भी कि, अच्छी अथवा बुरी, सभी प्रकार के राज्य नियंत्रण से मुक्त व्यक्तिगत शक्ति का स्वतंत्र आचरण ही प्रगति का मूल कारण है।

राजनीतिक क्षेत्र में इसकी उपलब्धि वैधानिकता तथा संसदीय लोकसत्ता की दिशा में हुई और आर्थिक क्षेत्र में स्वतंत्र व्यापार (लेसे फेयर) तथा कार्य प्रारंभ करने का अधिकार राज्यनियंत्रण से निर्बंध व्यक्ति को ही प्राप्त है, इस विचार का विस्तार होना था किंतु सामाजिक आवश्यकताओं ने परिवर्तन अनिवार्य कर दिया। जे. एस. मिल ने उदारतावादी विचारधारा को और भी व्यापक बनाया, जिसके अंतर्गत अब राज्य लोकहित में नियंत्रण लगाने के अधिकार से वंचित नहीं रहा। प्राचीन कट्टर व्यक्तिवादी विचारधारा को अधिकांशतः तिरस्कृत कर दिया गया। अब व्यक्तिवाद एवं समाजवाद के बीच एक असंतुलन स्थापित हो गया था।

1688 की रक्तहीन क्रांति से संसद की प्रभुता स्थापित हो गयी और राजा को कानून के अधीन कर दिया गया और निरंकुश राज्य समाप्त हो गया। इसी प्रकार समय–समय पर नए कानूनों के द्वारा नियमों को अधिकाधिक जन हितकारी बनाया गया। जैसे कि 1832 के अधिनियम द्वारा मताधिकार का विस्तार किया गया, और इसी समय से उच्च सदन (हाउस ऑफ लॉर्ड्स) की शक्तियां कम होना आरम्भ हो गयी। 1867 के अधिनियम ने पहली बार इंग्लैंड और वेल्स में शहरी पुरुष श्रमिक वर्ग को मताधिकार दिया। 1884 में, थर्ड रिफॉर्म एक्ट द्वारा, काउंटी निर्वाचन क्षेत्रों में मताधिकार को उसी आधार पर रखा गया था, जैसा कि 1867 में बोरो के लिए स्थापित किया गया था और वोट देने की योग्यता आयरलैंड के लिए बाकी यूनाइटेड किंगडम के समान ही थी। अन्य सभी काउंटी और सभी बड़े शहरों को नए एकल सदस्य निर्वाचन क्षेत्रों में विभाजित किया गया था। इन नियमों द्वारा अधिकाधिक लोगों को मताधिकार के दायरे में लाया गया। इन सभी अधिनियमों ने आधुनिक चुनाव प्रणाली की नींव रखी।

ब्रिटेन में सन् 1838 और 1848 के बीच राजनीतिक सुधारों के लिये श्रमिक वर्ग द्वारा किये गये आन्दोलन चार्टर आन्दोलन (Chartism) कहलाते हैं। यह नाम सन् 1838 में निर्मित 'पीपल्स चार्टर' से आया है। यह आन्दोलन विश्व के श्रमिक वर्ग का पहला विशाल आन्दोलन था। 'चार्टिज्म' नाम बहुत से स्थानीय समूहों का सामूहिक नाम था जिन्होंने 1837 से विभिन्न शहरों में अपने विरोध की आवाज बुलन्द की।

इन सभी विषयों का विस्तारपूर्वक अध्ययन निम्नानुसार किया जा सकता है।

इंग्लैंड में उदारवाद

1688 की रक्तहीन क्रांति ने इंग्लैंड में निरंकुश राजतंत्र का अन्त कर पार्लियामेंट की सर्वोच्चता स्थापित की। प्रजातंत्र एक उदारवाद की दिशा में यह प्रथम कदम माना जा सकता है। परन्तु पार्लियामेंट में अभी भी अभिजात वर्ग का प्रतिनिधित्व था आम जनता को सम्मिलित नहीं किया गया था। 1689 ई. में जान लॉक ने संसदीय प्रणाली में सुधार की माँग की। 1766 ई. में विल्कीज ने संसदीय सुधार के लिए हाउस ऑफ

कॉमन्स में विधेयक प्रस्तुत किया। 1780 ई. में हार्न हुक ने सुधारों की माँग की। व्हिग पार्टी के नेता जॉन रसैल ने 1820, 1822, 1823 एवं 1826 में लार्ड सभा में संसदीय सुधार के लिये प्रस्ताव प्रस्तुत किये। 1830 के चुनावों में व्हिग दल को बहुमत प्राप्त हुआ। जो संसदीय सुधारों के लिये बचनवद्ध था। इस प्रकार इंग्लैण्ड में उदारवाद का मार्ग प्रशस्त हुआ। इसके अर्न्तगत 1832, 1867 एवं 1884 के सुधार अधिनियम पारित किये गये।

क्रीमिया युद्ध एवं बर्लिन कांग्रेस के विशेष संदर्भ में पूर्वी समस्या (1815–1890), इंग्लैंड में उदारवाद, सुधार अधिनियम, चार्टिस्ट आंदोलन एवं अलेक्जेंडर व निकोलस के संदर्भ में रूस

टिप्पणी

उदारवार के उदय के कारण

(1) कैनिंग, पील एवं हस्किसन के प्रयास–टोरी दल रूढ़िवादी था। 1822 में जब प्रधानमंत्री लिवरपूल ने मंत्रिमण्डल का पुर्नगठन किया तो कैनिंग को विदेश मंत्री, पील को गृहमंत्री एवं हस्किसन को बोर्ड ऑफ ट्रेड का अध्यक्ष नियुक्त किया गया। ये तीनों उदारवादी टोरी थे। इनके प्रयासों से उदारवाद के उदय की भूमिका बनी।

(i) पील के सुधार–पील ने विधि न्याय एवं पुलिस विभाग में कई महत्वपूर्ण सुधार किये।

(ii) हस्किसन के सुधार–आर्थिक क्षेत्र में हस्किसन ने महत्वपूर्ण सुधार किये।

(iii) कैनिंग के सुधार–कैनिंग ने विदेश नीति में उदारवादी सिद्धान्तों का समावेश किया।

(iv) राबिन्सन वित्तीय सुधार–हस्किसन के सहयोगी राबिन्सन ने बजट पद्धति में सुधार किया, कर प्रणाणी को पुर्नगठित किया। अनेक करों को समाप्त किया।

(2) वेलिंगटन के प्रयास–प्रधानमंत्री ड्यूक ऑफ वेलिंगटन के काल में–

(i) शासकीय सेवा में धार्मिक आधार पर भेदभाव समाप्त कर दिया,

(ii) अनाज नियम में संशोधन किया,

(iii) कैथोलिक मुक्ति कानून लागू किया।

(3) व्हिग दल का सत्ता में आना–1830 के चुनावों में टोरी दल परास्त हुआ एवं व्हिग दल सत्ता में आया। अर्ल ग्रे प्रधानमंत्री बना। टोरी दल प्रशासनिक व आर्थिक सुधारों का पक्षधर था, संसदीय सुधारों का नहीं जबकि व्हिग दल संसदीय सुधारों का प्रबल पक्षधर था।

इस प्रकार उदारवादी टोरी मंत्री कैनिंग, पील एवं हस्किसन ने उदारवाद की भूमिका तैयार की एवं व्हिग दल के प्रधानमंत्री अर्ल ग्रे ने 1830 में सत्ता में आते ही उदारवाद का मार्ग प्रशस्त किया। उदारवाद के उदय के साथ ही इंग्लैंड में 1832 का सुधार अधिनियम पारित कर दिया गया। 1688 की रक्तहीन क्रांति द्वारा तो मात्र संसदीय प्रणाली आरम्भ हुई थी, परन्तु 1832 के सुधार अधिनियम द्वारा इस संसदीय प्रणाली को उदार बनाया गया। इसके बाद इंग्लैंड में सुधारों का सिलसिला आरम्भ हो गया।

1832 ई. का सुधार अधिनियम

1688 की वैधानिक (रक्तहीन) क्रांति के पश्चात् ब्रिटेन में प्रतिनिधित्व एवं मताधिकार के क्षेत्र में कोई परिवर्तन नहीं हुए थे। यद्यपि 18वीं शाताब्दी से इंग्लैंड में प्रतिनिधित्व प्रणाली में सुधार के लिए व्हिग पार्टी ने तथा अन्य सुधारवादी संस्थाओं ने सुधारों के

प्रयत्न किये थे परन्तु ब्रिटिश संसद में टोरी दल के प्रभुत्व में होने के कारण प्रत्येक प्रकार के परिवर्तन का विरोध हुआ।

1820 से 1830 के मध्य संसदीय सुधारों की माँग तीव्र हुई। यद्यपि संसद में टोरी दल का बहुमत था, फिर भी कैनिंग, पील, हर्स्किसन जैसे उदारवादी टोरियों के प्रवेश के कारण इंग्लैंड के राजनीतिक जीवन में महान परिवर्तन हुआ। विलियम चतुर्थ के राजा बनते ही 1830 ई. में हुए नये संसदीय चुनावों में व्हिग दल सत्तारूढ़ हुआ और संसदीय सुधारों का महान समर्थक अर्ल ग्रे प्रधानमंत्री बना। इसी के काल में 1832 ई. का प्रथम सुधार अधिनियम पारित हुआ।

1832 ई. से पूर्व इंग्लैंड की संसदीय प्रणाली के दोष–1832 ई. से पूर्व इंग्लैंड की कॉमन्स सभा एवं निर्वाचन क्षेत्रों की स्थिति निम्न प्रकार थी–

(1) 1815 ई. में इंग्लैंड की कॉमन्स सभा में कुल 658 सदस्य थे–

489	इंग्लैंड से
100	आयरलैंड से
45	स्कॉटलैंड से
24	वेल्स से
658	**कुल**

(2) देश में 3 प्रकार के निर्वाचन केन्द्र थे–

कांउटियाँ (देहाती क्षेत्र)	186
बरो (नगरीय क्षेत्र)	467
यूनिवर्सिटियाँ (विश्वविद्यालय)	5
कुल	**658**

1832 ई. से पूर्व इंग्लैंड की संसदीय प्रणाली में निम्नलिखित दोष थे–

(अ) प्रतिनिधित्व के क्षेत्र में दोष

(i) प्रत्येक काउंटी से 2 प्रतिनिधि निर्वाचित किये जाते थे और बरो से भी प्रायः 2 सदस्य लिये जाते थे। प्रतिनिधियों की संख्या का आधार जनसंख्या नहीं था।

(ii) कई बरो ऐसे थे जहाँ से 2 प्रतिनिधि भेजा जाना औचित्यपूर्ण नहीं था। उदाहरणार्थ, कुर्क केसिल एक उजाड़ क्षेत्र था। ओल्डसेरम एक घास का टीला था। होटल एफ पार्क का भाग था। डमविच समुद्र के गर्भ में चला गया था। अल्प जनसंख्या होते हुए भी यहाँ से प्रतिनिधि मनोनीत थे।

(iii) बरो 3 प्रकार के थे–

(a) पाकेट बरो

(b) रॉटन बरो

(c) स्वतन्त्र बरो

इन सभी में जमींदारों का प्रभाव स्थापित था।

(ब) मताधिकार के क्षेत्र में दोष

(i) मताधिकार जनसंख्या के अनुपात में अत्यंत कम व्यक्तियों को प्राप्त था।

(ii) मताधिकार उन्हीं को प्राप्त था जो भूमिपति या उनके आसामी थे।

(iii) काउण्टी तथा बरो में मताधिकार योग्यताएँ भिन्न–भिन्न थीं।

(स) अन्य दोष

(i) गुप्त मतदान की प्रथा नहीं थी। मतों को खरीदा एवं बेचा जाता था।

(ii) संसद सदस्यों को वेतन प्राप्त नहीं होता था।

(iii) चुनाव में अत्यधिक धन खर्च होता था।

(iv) संसद सदस्य अत्यधिक लाभ प्रापत करने की आशा रखते थे।

(v) लोक सभा की अवधि 7 वर्ष की थी जो अत्यधिक थी।

असमान प्रतिनिधित्व और जमींदारों के प्रभाव के कारण ही पिट ने कहा था, ''यह सदन ग्रेट ब्रिटेन के जन साधारण का प्रतिनिधित्व नहीं करता।'' उसका कहना था, ''यह विनष्ट एवं उजाड़ नगरों का, उच्च परिवारों, धनवान व्यक्तियों एवं विदेशी शासकों का भी प्रतिनिधित्व करता है।''

संक्षेप में, इंग्लैंड की तत्कालीन सरकार प्रतिनिधित्वपूर्ण न होकर कुलीन तन्त्रात्मक थी।

1832 ई. के सुधार अधिनियम को पारित करने के प्रयास

सुधारों की माँग विलियम काबेट के 'द वीकली पालीटिकल रजिस्ट्रर' से आरम्भ हुई थे परन्तु ग्रे के प्रधानमंत्री बनने के बाद ही इस ओर पर्याप्त ध्यान दिया गया।

प्रथम प्रयास–1831 में लार्ड जॉन रसेल ने सीटों के पुनर्विभाजन तथा एक–जैसी मतदान पद्धति को आधार बनाकर सुधार विधेयक प्रस्तुत किया। कॉमन्स सभा ने यह बिल पारित कर दिया परन्तु अन्तिम रूप से वह पारित न हो सका।

द्वितीय प्रयास–जून 1831 में नये चुनावों के पश्चात् रसेल ने संसद के समक्ष सुधार विधेयक पुनः प्रस्तुत किया परन्तु अक्टूबर 1831 में लॉर्ड सभा ने इसे अस्वीकार कर दिया। परिणामस्वरूप सारे देश में गृह युद्ध की–सी स्थिति उत्पन्न हो गयी।

अन्तिम एवं तृतीय प्रयास–दिसम्बर 1831 में रसेल ने पुनः विधेयक प्रस्तुत किया और राजा से बिल को पारित करने के लिए नवीन पीयर्स नियुक्त करने की माँग की। राजा ने इसे स्वीकार नहीं किया अतएव लार्ड ग्रे ने त्यागपत्र दे दिया, परन्तु शीघ्र ही पुनः ग्रे को आमंत्रित करना पड़ा तथा नवीन पीयर्स बनाने का आश्वासन दिया।

इन परिस्थितियों में टोरियों के लिए सुधार बिल का विरोध करना अर्थहीन रह गया। अन्ततोगत्वा 4 जून, 1832 को यह बिल पारित हो गया।

1832 सुधार अधिनियम की व्यवस्थाएँ–इस अधिनियम के 2 प्रमुख अंग थे–

(अ) निर्वाचन क्षेत्रों का पुनर्विभाजन

(i) 2,000 से कम जनसंख्या वाले 56 निर्वाचन क्षेत्र जो 111 सदस्य भेजते थे, अब उनसे यह अधिकार छीन लिया गया।

(ii) 2,000 से 4,000 के मध्य जनसंख्या वाले 30 बरो को 2 के स्थान पर अब एक प्रतिनिधि भेजने का अधिकार दिया।

(iii) वेमत और मेलकॉम्ब को भी एक प्रतिनिधि भेजने का अधिकार दिया गया।

(iv) पुनर्विभाजन से 143 (111. 30. 2) स्थान रिक्त हुए। उनका विवरण इस प्रकार है–

(a) 22 बड़े नगरों को	–	2 प्रतिनिधि	= 44
(b) 21 छोटे नगरों को	–	1 प्रतिनिधि	= 21
(c) कांउटियों से	–	65 प्रतिनिधि	= 65
(d) स्काटलैंड से –	8 प्रतिनिधि	= 8	
(e) आयरलैंड से –	5 प्रतिनिधि	= 5	
		कुल	**= 143 प्रतिनिधि**

(ब) मताधिकार में वृद्धि

बरो में सभी गृहस्वामियों को जो 10 पौण्ड सालाना लगान देते थे, मताधिकार प्राप्त हुआ। काउंटियों में निम्न प्रकार से मताधिकार दिया गया–

(i) 40 शिलिंग – फ्रीहोल्डर

(ii) 10 पौण्ड सालाना लगान देने वाले कॉपीहोल्ड

(iii) 50 पौण्ड लगान देने वाले लीजहोल्डर

(iv) 50 पौण्ड लगान देने वाले– टेनेण्ट एट बिल

इत्यादि को मताधिकार प्राप्त हुआ।

1832 सुधार अधिनियम का महत्व एवं परिणाम–1832 के सुधार अधिनियम को ट्रैवेलिचन ने आधुनिक मैग्नाकार्ता कहा है। निसंदेह इंग्लैंड के संवैधानिक इतिहास में इस अधिनियम का विशिष्ट स्थान है। इसका फ्रांस की जुलाई क्रांति 1830 से भी अधिक महत्व है।

इस रक्तहीन संवैधानिक क्रांति ने सत्ता मध्यम वर्ग के हाथों में पहुँचा दी। सुधार अधिनियम के कारण निर्वाचकों की संख्या 3 गुनी हो गयी। जनसंख्या की तुलना में मतदाताओं की संख्या 1 : 30 के अनुपात में हो गयी।

काउंटियों में निर्वाचन क्षेत्रों की संख्या में वृद्धि हुई और बरो में घटी। हाउस ऑफ कॉमन्स में व्यापारी और वकीलों के प्रतिनिधित्व में वृद्धि हुई।

अनेक औद्योगिक केन्द्रों को प्रथम बार प्रतिनिधि भेजने का अधिकार प्राप्त हुआ और उनका राजनीतिक महत्व बढ़ा।

इस अधिनियम में अनेक त्रुटियाँ भी थीं। 1831 और 1832 ई. में लोगों ने विशाल सभाएँ कीं, दंगे किये और जब सुधार बिल पारित हुआ, तब उन्हें आशाओं के विपरीत वह अनुभव हुआ कि उन्हें सच में कोई लाभ नहीं हुआ है।

सुधार अधिनियम ने धनी मध्यम वर्ग के मताधिकार को मान्यता प्रदान की परन्तु इंग्लैंड के श्रमिकों और निर्धन मध्यमवर्गीय लोगों को मान्यता प्रदान नहीं की गयी। टोरी दल के सदस्यों के अनुसार यह अधिनियम इंग्लैंड के पतन का सूचक था।

मेरियट के अनुसार, ''इस अधिनियम के द्वारा लॉर्ड्स को अपने मृत्यु वारंट पर हस्ताक्षर करने पड़े।''

जॉन रसेल ने इसे अन्तिम सुधार विधेयक कहा था, परन्तु न तो यह अन्तिम था, और न ही पतन का सूचक।

इसका सर्वाधिक महत्व यह था कि इसने संसदीय सुधारों की पहली बाधा को समाप्त करके आगे के सुधारों हेतु मार्ग प्रशस्त किया। एक बार सिद्धान्त स्वीकार कर लेने के बाद परिस्थितियों के अनुसार 1867, 1884 ई. और अन्य संसदीय सुधार कानून बने और इस प्रकार ब्रिटिश आधुनिक प्रजातन्त्रीय शासन की नींव पड़ी।

1832 के सुधार अधिनियम से असन्तुष्ट होकर ही चार्टिस्ट आन्दोलन आरम्भ हुआ।

चार्टिस्ट आन्दोलन

चार्टिस्ट आन्दोलन मजदूरों द्वारा आरम्भ किया गया। राष्ट्रीय जागृति का वह आन्दोलन था जिसका उद्देश्य मजदूरों का सर्वोन्मुखी विकास करना था। इस आन्दोलन के निम्नलिखित कारण थे–

(i) औद्योगिक क्रांति तथा उससे जुड़ी अनेक समस्याओं का उत्पन्न होना।

(ii) ओवेन, विलियम लॉवेट, एडवुड आदि के नेतृत्व में समाजवादी विचारधारा का प्रभाव पड़ा।

(iii) 1832 के सुधारों से मजदूरों और निम्न वर्ग के लोगों को राजनीतिक अधिकारों का प्राप्त न होना।

(iv) इंग्लैंड की शोचनीय आर्थिक दशा अर्थात् 'कार्न लॉ' एवं 'पुअर लॉ' में संशोधन के परिणाम।

1836 ई. में इस आन्दोलन के नेता विलियम लॉवेट ने लंदन में श्रमिक संघ की स्थापना की और पीपुल्स चार्टर द्वारा 6 सूत्री माँग सूची तैयार की–

(1) संसद का वार्षिक निर्वाचन हो।

(2) संसद सदस्यों को वेतन दिया जाये।

(3) संसद की सदस्यता के लिए सम्पत्ति की योग्यता को समाप्त किया जाये।

(4) प्रदेशों को समान जनसंख्या के निर्वाचन क्षेत्रों में विभक्त किया जाये।

(5) प्रत्येक वयस्क पुरुष को मताधिकार प्राप्त हो।

(6) गुप्त मतदान आरम्भ हो।

आन्दोलन का विकास–चार्टिस्टों के नेता कोकानेर के द्वारा प्रकाशित 'नार्दन स्टार' और एडवुड द्वारा स्थापित बर्मिंघम पालिटिकल यूनियन की स्थापना से इसका प्रचार बढ़ा। बर्मिंघम में समान निर्वाचन क्षेत्रों की माँग त्याग दी गयी।

इस आन्दोलन के आरम्भिक नेता विलियम लॉवेट शान्तिपूर्ण वैधानिकों उपायों के समर्थक थे। अतः उनके दल को मोटल फोर्स पार्टी कहा गया, जबकि 'उकाने' जो हिंसात्मक उपायों के समर्थक थे, को फिजिकल फोर्स पार्टी कहा गया।

1839 में चार्टिस्टों के प्रथम आवेदन पत्रों को जब संसद ने अस्वीकार कर दिया, तब हिंसात्मक आन्दोलनों और न्यूपोर्ट के युद्ध में फिजीकल फोर्स पार्टी समाप्त हो गयी।

1842 में चार्टिस्टों ने राष्ट्रीय चार्टिस्ट संघ के नेतृत्व में पुनः आवेदन दिया, किन्तु इसे भी अस्वीकृत कर दिया गया।

1848 की क्रांति से उत्साहित होकर चार्टिस्टों ने 50 लाख व्यक्तियों के हस्ताक्षर सहित एक आवेदन पत्र संसद में प्रस्तुत किया। परन्तु सिलैक्ट कमैटी की जांच से ज्ञात हुआ कि कई हस्ताक्षर जाली थे। अतः आन्दोलन मजाक और विनोद का विषय बन गया और स्वतः समाप्त हो गया।

आन्दोलन की असफलता के मुख्य कारण निम्नवत थे–

(i) सुयोग्य नेतृत्व का अभाव।

(ii) नेताओं में मतभेद।

(iii) मजदूरों का आन्दोलन के लिए शिक्षित न होना।

(iv) कृषि और व्यवसाय में सुधार।

कारलाई के अनुसार, ''आन्दोलन के सिद्धान्त मौलिक और व्यापक थे। असफलता के बावजूद इसका महत्व था। इसके प्रभाव में भविष्य में मताधिकार विस्तृत हुआ। कार्नला समाप्त हुआ, फैक्ट्री एक्ट पारित हुआ। अंग्रेजी साहित्य पर प्रभाव पड़ा और ऑक्सफोर्ड आन्दोलन आरम्भ हुआ।''

इसी आन्दोलन ने डिजरायली को कन्जर्वेटिव पार्टी के सिद्धान्तों को निश्चित करने की प्रेरणा दी।

1867 ई. का सुधार अधिनियम एवं महत्व

1832 से 1867 ई. तक कॉमन्स सभा की सीटों और मताधिकार के क्षेत्र में कोई परिवर्तन नहीं हुआ। अतएव निम्न, मध्यम वर्ग एवं श्रमिकों में असन्तोष व्याप्त था। अतः उन्होंने जॉन ब्राइट के नेतृत्व में आन्दोलन चलाये। 1832 ई., 1852 ई. एवं 1860 ई. में प्रस्तुत बिल पारित नहीं हो सके। 1866 में इंग्लैंड में अनुदार दल के नेता डर्बी ने मंत्रिमण्डल बनाया। यह दल संसद में अल्पमत में था और उसकी दृष्टि आने वाले वर्ष के चुनाव पर थी। अतः प्रधानमंत्री डर्बी और उसके सहयोगी डिजरायली ने निम्न कार्य किये–

(1) निम्न वर्ग का समर्थन प्राप्त करने के लिए तथा ग्लैडस्टन को श्रेय प्राप्त करने से रोकने के लिए सुधार करने के प्रयास किये।

(2) मार्च 1867 में डिजरायली ने सुधार अधिनियम प्रस्तुत किये और उदार दल द्वारा प्रस्तुत संशोधनों को स्वीकार करते हुए अगस्त 1867 ई. में बिल को पारित कर दिया। इसके अनुसार प्रतिनिधित्व और मताधिकार सम्बन्धी परिवर्तन हुए।

प्रतिनिधित्व सम्बन्धी सुधार

(i) दो–दो सदस्यों वाले बरो को एवं एक–एक सदस्यों वाले 40 बरो को प्रतिनिधि भेजने के अधिकार से वंचित किया गया।

(ii) जो 52 स्थान रिक्त हुए, उनका विभाजन इस प्रकार किया–

बरो	– 22 प्रतिनिधि
कांउटी	– 27 प्रतिनिधि
लंदन विश्वविद्यालय	– 1 प्रतिनिधि

इन्हें प्रतिनिधि भेजने का अधिकार प्रदान किया गया।

(iii) 12 नये बरो का निर्माण किया एवं अनेक बरो को पड़ोसी निर्वाचन क्षेत्रों में मिलाया गया।

(iv) बर्मिंघम, मेनचेस्टर, लीड्स, लिवरपूल जैसे बड़े नगरों को 3 प्रतिनिधि भेजने का अधिकार दिया गया किन्तु इन 3 में से मताधिकार सिर्फ 2 को ही दिया गया।

मताधिकार सम्बन्धी सुधार

(i) बरो में रहने वाले समस्त मकान मालिकों और 10 पौण्ड वार्षिक किराया देने वाले व्यक्तियों को मताधिकार प्रदान किया गया।

(ii) काउण्टियों में 5 पौण्ड सालाना लगान देने वाले कॉपीहोल्डर एवं

(iii) 12 पौण्ड लगान देने वाले टेनेण्ट एट बिल और 25 पौण्ड लगान देने वाले लीजहोल्डरों को मताधिकार प्रदान किया।

इस विधेयक के पारित होने के फलस्वरूप मतदाताओं की संख्या लगभग दुगुनी हो गयी। लगभग सभी बरो के उच्च श्रेणी श्रमिकों और काउण्टियों के कृषक आसामियों को मताधिकार प्राप्त हुआ। अतः इस अधिनियम द्वारा मताधिकार अनुपात 12 : 1 हुआ।

इन सुधारों ने सत्ता पर जमींदारों एवं पूँजीपतियों की पकड़ ढीली की और मध्यम वर्ग का प्रभुत्व स्थापित किया।

यह सुधार प्रस्ताव इतना अधिक प्रगतिशील था कि इंग्लैंड के प्रधानमंत्री लार्ड डर्बी ने भी इसे 'Leap in the Dark' कहा। कार्लाइल ने इसके भविष्य को अन्धकारपूर्ण बताते हुए 'SHOOTING NIAGRA' की भाँति कहा। ग्लैडस्टन ने इसे डिजरायली की शैतानी चालाकी कहा। सैल्सबरी ने इसे राजनीतिक विश्वास–घात की संज्ञा दी। राबर्ट ला ने इसकी तुलना तूफान भरे थैले से की।

इस अधिनियम ने स्त्रियों, खेतिहर मजदूरों और मजदूरों को मताधिकार प्रदान नहीं किये। मताधिकार पूर्व की भाँति सम्पत्ति की योग्यता से जुड़ा रहा। जनसंख्या के आधार पर निर्वाचन क्षेत्रों का पुनर्गठन न होना और गुप्त मतदान की व्यवस्था न होना, इस अधिनियम के अन्य दोष थे।

फिर भी अनेक त्रुटियों के बावजूद ब्रिटिश संसद के लोकतन्त्रीकरण की दृष्टि से यह एक महत्वपूर्ण कदम था।

1884 ई. का सुधार अधिनियम

1832 से 1867 ई. के सुधार विधेयकों ने काउंटियों और बरो में रहने वाली खेतिहर और श्रमिक वर्ग की जनता को मताधिकार नहीं दिया था। अतः ग्लैडस्टन (उदारवादी) के मन्त्रिमण्डल ने 1884 ई. में तीसरा सुधार विधेयक पारित किया। उसके द्वारा मताधिकार तथा 1884 ई. में निर्वाचन क्षेत्रों के पुनर्विभाजन की व्यवस्था की गयी। इस अधिनियम की महत्वपूर्ण विशेषता यह थी कि, बरो और काउंटियों के मध्य मताधिकार प्रणाली के भेद को समाप्त करने की चेष्टा की गयी। इसके अनुसार–

क्रीमिया युद्ध एवं बर्लिन कांग्रेस के विशेष संदर्भ में पूर्वी समस्या (1815–1890), इंग्लैंड में उदारवाद, सुधार अधिनियम, चार्टिस्ट आंदोलन एवं अलेक्जेंडर व निकोलस के संदर्भ में रूस

टिप्पणी

(i) बरो तथा काउंटियों दोनों में, मकान मालिकों और 10 पौण्ड वार्षिक किराया देने वाले पुरूषों को मताधिकार प्रदान किया गया।

(ii) 1500 से कम जनसंख्या वाले बरो को प्रतिनिधि भेजने का अधिकार नहीं रहा।

(iii) 50,000 तक आबादी वाले बरो को एक प्रतिनिधि भेजने का अधिकार दिया गया।

(iv) इसके द्वारा रिक्त 142 स्थानों को पुनर्विभाजित किया गया।

(v) कॉमन्स सभा के सदस्यों की संख्या 12 बढ़ा दी गयी।

इस सुधार अधिनियम के पारित होने का परिणाम यह हुआ कि काउंटियों के मतदाताओं की संख्या पहले की अपेक्षा दुगुनी हो गयी, परन्तु अभी भी मताधिकार की योग्यता सम्पत्ति की योग्यता से जुड़ी रही।

अपनी प्रगति जांचिए

5. 1822 में सत्तारूढ़ टोरी दल ..... था?

(क) रूढ़िवादी (ख) प्रगतिशील

(ग) मिलीजुली विचारधारा (घ) इनमें से कोई नहीं

6. 1830 में कौन सा राजनीतिक दल विजयी हुआ जो संसदीय सुधारों का प्रबल पक्षधर था?

(क) टोरी दल (ख) व्हिग दल

(ग) लेबर दल (घ) कांग्रेस दल

3.4 रूस (1815 से 1890 ई. तक) : अलेक्जेंडर प्रथम एवं निकोलस प्रथम के विशेष संदर्भ में

इन विषयों का निम्नानुसार अध्ययन किया जा सकता है–

रूस की सामाजिक स्थिति

यद्यपि उन्नीसवीं शाताब्दी में रूस एक महान् यूरोपीय शक्ति बन गया था लेकिन अनेक दृष्टियों से रूस अब भी यूरोप में सर्वाधिक पिछड़ा हुआ देश था। उसका समय की गति के अनुरूप आन्तरिक विकास नहीं हुआ था। उसकी सामाजिक एवं राजनीतिक संस्थाओं का चरित्र एवं स्वरूप पूर्ववत् मध्ययुगीन ही था। पीटर महान् एवं कैथरिन द्वितीय ने रूस को पाश्चात्य सभ्यता के अनुरूप ऊपरी तड़क–भड़क दी थी लेकिन यह भव्यता एवं शान–शौकत सामान्य जनता से बहुत दूर थी। समाज में मुख्य रूप से कुलीनों एवं कृषि दासों के दो वर्ग थे। निःसन्देह पादरी एवं मध्यवर्गीय व्यक्ति थे लेकिन सापेक्षिक दृष्टि से उनकी संख्या बहुत कम थी और एक वर्ग के रूप में वे महत्वहीन थे। सन् 1789 की महान् क्रांति से पूर्व फ्रांस के अनुरूप कुलीन वर्ग ने अपने कर्तव्यों एवं दायित्वों, जिन्होंने उनको पद एवं प्रतिष्ठा प्रदान की थी, का निर्वाह करना बन्द कर दिया था लेकिन इन पदों से सम्बद्ध विशेषधिकारों का पूर्ववत् उपयोग

कर रहे थे। कृषि दासों की आर्थिक स्थिति अत्यधिक निरीह एवं दयनीय थी। वह जमीन के साथ बँधे हुए थे और भू–स्वामी उनको कोड़े मार सकता था, बेच सकता था, साइबेरिया के लिए निष्कासित कर सकता था, और बिना किसी बाधा के हत्या कर सकता था। यथार्थ में कृषि दास अपने भू–स्वामियों के पशु धन सदृश माने जाते थे। जार निकोलस प्रथम जैसे प्रतिक्रियावादी शासक भी इस प्रचलित असमानता को मान्यता देता था और कृषकों को दासता से मुक्त करने के लिए कुछ प्रभावहीन उपाय किये। कृषि दास की समस्या रूस की उन्नीसवीं शताब्दी की सबसे बड़ी सामाजिक समस्या थी।

रूस की प्रशासनिक व्यवस्था–रूस की सामान्य जनता को कोई राजनीतिक अधिकार नहीं थे। कोई लोकतान्त्रिक संस्था नहीं थी। जार निरंकुश शासक था, अपनी इच्छानुसार दैवीय अधिकार से प्रेरित होकर शासन करता था। जार स्वयं द्वारा नियुक्त और स्वयं के प्रति उत्तरदायी मन्त्रिपरिषद् की सहायता से शासन करता था। उकासेस (Ukases), जो जार के व्यक्तिगत आदेश थे, जो उसके मन्त्रियों के परामर्श अथवा बिना उनकी सहमति के दिये गये थे, मात्र मान्य कानून थे। कोई संसद नहीं थी, प्रेस की स्वतन्त्रता नहीं थी, और न्यायाधीश स्वतन्त्र नहीं थे। प्रशासन के लिए अधिकारियों की बहुत बड़ी संख्या थी जो जार पर निर्भर थी और साम्राज्यिक पुलिस की सहायता से प्रान्तों का प्रशासन करते थे।

अलेक्जेंडर प्रथम, 1801–1825 – अलेक्जेंडर प्रथम ने स्विस शिक्षक ला हार्पे (La Harpe) से शिक्षा ग्रहण की थी। उसको अपने गुरु से विख्यात फ्रांस की क्रांति के उदारवादी विचार एवं सिद्धान्त प्राप्त हुए थे। वह एक आदर्शवादी और धार्मिक स्वप्न दृष्टा था। एक ऐसा चरित्र, जो विचित्र रूप से असन्तुलित था एवं वह कभी भी अपने उद्देश्य के प्रति आश्वस्त नहीं था। परिणामस्वरूप वह परस्पर विरोधी विचारों एवं दृष्टिकोणों से प्रभावित हो जाता था और उसने अस्थिर एवं असंगत व्यवहार व्यक्त किया। उसका उदारवाद निर्विवाद था, उसके सिद्धान्त महान् थे, वह निष्ठापूर्वक विश्वास करता था कि नेपोलियनकालीन उथल–पुथल के बाद यूरोप में पुनः शान्ति और सद्भावना स्थापित करने का उसका दैविक दायित्व था। इसी उद्देश्य से उसने पवित्र संघ (Holy Alliance) का गठन किया था। सुधारों में गहन रुचि थी और संविधान की लोकप्रिय माँग के प्रति सहानुभूति थी। उसको उदारवादी विचार, भावनाएँ एवं प्रवृत्तियाँ पोलैंड के लिए स्वीकृत संविधान और फिनलैंड, एक प्रान्त जिसका हाल ही में रूस में विलय किया गया था, के संविधान के प्रति अभिव्यक्त सम्मान में स्पष्ट रूप से दृष्टिगत होती हैं। उसने रूस के उत्तरी प्रान्तों के कृषि दासों को मुक्त कर दिया और दासता उन्मूलन का प्रबल समर्थन किया, लेकिन उसका उदारवाद उसको साम्राज्यिक नीति का अनुसरण करने से नहीं रोक सका। अलेक्जेंडर प्रथम ने ही फिनलैंड पर विजय प्राप्त की थी और नेपोलियन के साथ मिलकर तुर्कों के विभाजन का प्रयास किया था।

विएना काँग्रेस के समय वह निर्विवाद रूप से एक उदारवादी शक्ति था। लेकिन कालान्तर में वह मेटरनिख के प्रभाव में आ गया। मेटरनिख ने अलेक्जेंडर के समक्ष भीषण क्रांति का दृश्य प्रस्तुत करके भयभीत कर दिया था। अन्ततोगत्वा अपने अनुरूप प्रतिक्रियावादी बना दिया। उदारवाद का नशा उतर गया और वह नेपल्स, जर्मनी अथवा

स्पेन में विद्रोहों का दमन करने के लिए अपने प्रभाव अथवा सेना का आवश्यकतानुसार प्रयोग करने के लिए तैयार हो गया। मेटरनिख के परामर्श पर उसने अलेक्जेंडर हिपस्लान्टी (Alexander Hypsilanti) के नेतृत्व में यूनानी विद्रोह को समर्थन करने से मना कर दिया, यद्यपि रूस की जनता की उन्मुक्त रूप से विद्रोहियों के साथ पूर्ण सहानुभूति थी। उसके प्रतिक्रियावादी रूप में परिवर्तन से उदारवादी अत्यधिक निराश एवं क्षुब्ध थे और अनेक गुप्त समितियों का गठन किया। सन् 1825 में उसका निधन हो गया। वह विरोधों का विचित्र मिश्रण एवं रहस्यवाद, उदारवाद, साम्राज्यवाद एवं निरंकुशतावाद का यौगिक (एक रासायनिक मिश्रण जिसके अवयवों को किसी भी विधि से अलग नहीं किया जा सकता) था।

निकोलस प्रथम, 1825–1855–अलेक्जेंडर प्रथम के देहान्त के उपरान्त कुछ काल तक देश में उपद्रव होते रहे। सेना के अधिकारियों और गुप्त समितियों ने उस व्यवस्था जिसके द्वारा निकोलस प्रथम को उसके बड़े भाई कान्सटेन्टाइन (Constantine) की अपेक्षा सिंहासन का उत्तराधिकारी बनना था, के विरुद्ध विरोध स्वरूप सशस्त्र आक्रमण किया। वह माह जिसमें यह विद्रोह हुआ था, देसम्बरिस्टस (Decemberist) के नाम से विदित था, विद्रोहियों ने प्रतिक्रिया की लहर को रोकने का प्रयास किया। उन्होंने अपना उद्देश्य 'कान्सटेन्टाइन और कान्सटीट्यूशन' बनाया। रूस में उदारवाद की प्रगति कितनी अल्पज्ञ थी, इस तथ्य से अनुमान लगाया जा सकता है कि अनेक विद्रोही सैनिकों का विश्वास था कि ''कान्सटीट्यूशन कान्सटेन्टाइन की पत्नी थी।'' विद्रोह का कठोरतापूर्वक दमन कर दिया गया।

निकोलस प्रथम कट्टर रूढ़िवादी था और देसम्बरिस्टस विद्रोह ने उसके विचारों एवं दृष्टिकोण को पुष्ट किया। उसका दृढ़ मत था, कि रूस को पाश्चात्य उदारवादी सिद्धातों एवं विचारों से प्रभावित हुए बिना अपने अनुसार विकास करना चाहिए। उसने रूसी साहित्य को प्रोत्साहित किया लेकिन विदेशी पुस्तकों एवं खोज पत्रों को अलग कर दिया। वह स्वयं को दैवी शक्ति द्वारा नियुक्त कानून एवं व्यवस्था के प्रबल समर्थक के रूप में मानता था। अस्तु क्रांतियों का कट्टर विरोधी था। अपने 30 वर्ष के शासन काल में वह सदैव निरंकुशता और रूढ़िवादिता का प्रबल समर्थक रहा। उसने विदेशों में विद्रोहों का दमन करने के लिए रूसी सेना भेजी और देश में उदारवादी विचारों का दमन करने के लिए समस्त प्रकार के उपाय किये। उसने रूसवासियों की यात्रा को प्रतिबन्धित कर दिया, प्रेस की कठोर नियन्त्रक व्यवस्था स्थापित की, विश्वविद्यालयों में कर्मचारी वर्ग एवं पाठ्यक्रम की दृष्टि से पूर्ण नियन्त्रण रखा। देशद्रोह का पता लगाने और दण्ड देने के लिए व्यापक गुप्तचर व्यवस्था स्थापित की। इस प्रकार रूस को उदारवाद के संक्रामक कीटाणुओं से बचाने के लिए चारों ओर से बन्द कर दिया था। उसने सन् 1830 में पोलैंड के विद्रोह का कठोरता से दमन किया, अलेक्जेंडर प्रथम द्व ारा स्वीकृत संविधान को समाप्त कर दिया और पोलैंड का रूस में विलय कर लिया।

विदेशी विषयों में निकोलस प्रथम ने कैथरीन द्वितीय (Catharine) की विशद् आक्रमणात्मक नीति का, विशेष रूप से तुर्की के विषय में अनुसरण किया। इस दृष्टि से उसने स्वतन्त्र नीति का पालन किया और मैटरनिख, जिसने उसके भाई अलेक्जेंडर प्रथम को स्वतन्त्रता के लिए संघर्षरत यूनानियों के नाम पर हस्तक्षेप करने से रोक दिया था, के प्रभाव को पूर्ण रूप से समाप्त कर दिया। उसने यूनानियों के स्वतन्त्रता

संघर्ष का प्रबल समर्थन किया और तुर्की के साथ सन्धि का प्रस्ताव रखने में इंग्लैंड और फ्रांस के दल में सम्मिलित हो गया। तुर्की ने सन्धि के प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया था। परिणामस्वरूप रूस ने आक्रमण करके सन् 1827 में नैवोरिनों (Navarino) में स्थित तुर्की के नौ–सैनिक बेड़े को ध्वस्त कर दिया था। इसके बाद फ्रांस और इंग्लैंड इस विवाद से अलग हट गये लेकिन निकोलस ने स्वयं ही तुर्की के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी और तुर्की को पराजित करके उसको एड्रियानोपिल (Adrianople) की सन्धि के लिए विवश किया। इस सन्धि के प्रावधानों के अन्तर्गत यूनान अन्ततोगत्वा स्वतन्त्र हो गया और इसका श्रेय निकोलस को मिला। कुस्तुनतुनिया पर रूस का प्रभाव सर्वोपरि हो गया। स्थिति में इससे अधिक सुधार तब हुआ जब तुर्की को, मिस्त्र के महमत अली के आक्रमणात्मक दबाव के कारण रूस की सैनिक सहायता स्वीकार करनी पड़ी। तुर्की के साथ रूस की अनकेयर स्कैल्सी (Unkiar Skelessi) की सन्धि ने काला सागर को व्यावहारिक दृष्टि से रूस की झील के रूप में परिवर्तित करने की अनुमति दे दी। यह बाल्कन क्षेत्र में रूस की उत्कृष्ट उपलब्धि थी।

समीपवर्ती पूर्व से निकोलस प्रथम ने पश्चिम की ओर ध्यान दिया। सन् 1833 में क्रांतिकारी आन्दोलनों के विरुद्ध परस्पर सुधार की दृष्टि से और उदारवाद को कुचलने के उद्देश्य से आस्ट्रिया और प्रशा के साथ घनिष्ठ मैत्री सन्धि की। इस त्रिराष्ट्रीय सन्धि ने अनेक दृष्टियों से पवित्र मैत्री सन्धि (Holy Alliance) को पुनर्जीवित किया और निकोलस को यूरोपीय राजनीति में केन्द्र–बिन्दु बना दिया। रूस की प्रतिष्ठा में अत्यधिक वृद्धि हुई और रूस की सर्वोच्चता निर्विवाद हो गयी।

कुछ वर्षों बाद मिस्त्र के महमत अली की महत्वाकांक्षी योजनाओं को अवरुद्ध करने एवं यूरोपीय क्रांतियों के मुख्यालय फ्रांस को झिड़कने के उद्देश्य से चतुर्राष्ट्रीय सन्धि (Quadruple Alliance) की। सन् 1849 में उसने हंगरी में विद्रोह का दमन करने के लिए आस्ट्रिया के सम्राट फ्रान्सिस जोसेफ की सैन्य सहायता की। इस प्रकार लोकतन्त्र एवं उदारवाद के विरुद्ध निरंकुशता का समर्थन किया। इसी प्रकार उसने जर्मनी में राष्ट्रीय आन्दोलन के विरुद्ध सशस्त्र हस्तक्षेप की धमकी दी थी, और यह निकोलस प्रथम का शत्रुतापूर्ण दृष्टिकोण ही था, जिसके कारण फ्रेडरिक विलियम चतुर्थ को फ्रैन्कफर्ट में उसको प्रस्तावित राज–सिंहासन को अस्वीकार करने का निर्णय करना पड़ा। इस प्रकार अब तक विदेशी विषयों में रूस का प्रभाव सर्वोच्च था।

निकोलस प्रथम की दृष्टि तुर्की की पतनोन्मुख शक्ति पर केन्द्रित थी। अब तक उसकी नीति ओटोमन साम्राज्य का विनाश करने की अपेक्षा उस पर प्रभुत्व स्थापित करने की थी। इसी नीति के अनुरूप उसने स्वयं को सुल्तान के रूप में व्यक्त किया और महमत अली के सशस्त्र आक्रमण के विरुद्ध रक्षा की थी। लेकिन इंग्लैंड के प्रधानमन्त्री पामर्स्टन (Palmerston) की कूटनीति ने उसकी समस्त योजनाओं को निष्क्रिय कर दिया था, उसने सुल्तान के अधिकृत क्षेत्रों को टुकड़ों में विभाजित एवं खण्डित करने की रूस की पुरानी नीति का अनुसरण करना आरम्भ कर दिया। निकोलस प्रथम की घोषणा कि ''तुर्की एक बीमार व्यक्ति है'' के बाद इस प्रकार के दृष्टिकोण ने फ्रांस और इंग्लैंड में भय, आशंका एवं आक्रोश उत्पन्न कर दिया। परिणामस्वरूप क्रीमिया युद्ध (Crimean War) हुआ। इस युद्ध में रूस की पराजय से पीड़ित निकोलस प्रथम का सन् 1855 में देहावसान हो गया।

अलेक्जेंडर द्वितीय, 1855–1881–निकोलस प्रथम के देहान्त के बाद उसका पुत्र अलेक्जेंडर द्वितीय सन् 1855 में सिंहासनारूढ़ हुआ। उन्नीसवीं शताब्दी के रूस के इतिहास में अलेक्जेंडर द्वितीय का शासन काल (सन् 1855–1881) निःसन्देह महान् सुधारों का युग माना जाता है। खेद है कि स्वतन्त्रता देने वाला जार शिक्षा, विचारधारा और स्वभाव से उस भूमिका का निर्वाह करने के उपयुक्त नहीं था, जिसका उसने निर्वाह करने का प्रयास किया। युवावस्था से ही वह उत्तरदायित्वों से बचने का प्रयास करता था और न्यूनतम बाधाओं वाले कार्य करता था। उसकी राजनीतिक विचारधारा के कोई निश्चित सिद्धान्त नहीं थे। वह अपने पिता की अर्द्ध–तानाशाही वाली प्रशासनिक व्यवस्था और उसके नौकरशाही पर आधारित उपायों का प्रशासक था। अलेक्जेंडर प्रथम और निकोलस प्रथम के अनुरूप अलेक्जेंडर द्वितीय में भी उदारवादी और प्रतिक्रियावादी भावनाओं का सम्मिश्रण था। उसके राजनीतिक तथा सामाजिक सुधारों का असंगत स्वरूप इस तथ्य की पुष्टि करता है।

रूस के लिए क्रीमिया युद्ध केवल पराजय ही नहीं थी वरन् एक मोहभंग भी था। इस असफलता ने निकोलस प्रथम द्वारा निर्मित निरंकुशता प्रणाली को लज्जित किया था। युद्ध काल में अभिव्यक्त सरकारी अकुशलता ने रूस के अधिकारी तन्त्र को कलंकित किया था। सैन्य तन्त्र जिसकी निष्ठा, समर्पण एवं कार्यकुशलता पर निकोलस प्रथम को गर्व एवं अटूट आस्था थी, केवल विनाश और अपमान लाया था। समस्त रूस पराजय से उत्तेजित था और जनता ने सामाजिक एवं राजनीतिक संगठनों में आमूल परिवर्तनों की माँग की। वर्तमान प्रशासनिक व्यवस्था के विरुद्ध सुलगता हुआ असन्तोष विस्फोट के रूप में अभिव्यक्त हुआ। अलेक्जेंडर द्वितीय ने स्पष्ट अनुभव किया कि हाल में रूस की पराजय आंशिक रूप से निकोलस प्रथम की प्रशासनिक व्यवस्था की असफलता का परिणाम थी। समय की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए कुछ परिवर्तन अति आवश्यक थे। उसने शासन का प्रारम्भ अपने पिता की प्रशासनिक व्यवस्था की कठोरताओं का उन्मूलन करके किया। जीवित दिसम्बरिस्ट निर्वासितों को मुक्त कर दिया गया।

उसने अपने शासन काल के प्रारम्भिक वर्षों में शिक्षा पद्धति में आमूल परिवर्तन किये। समाचार–पत्रों पर नियन्त्रण प्रणाली शिथिल कर दी गयी। दिसम्बर, 1855 में कुख्यात 'बुतुइलिन समिति' को समाप्त कर दिया गया एवं समाचार–पत्रों को स्वतन्त्रता दी गयी। सन् 1845 से सन् 1854 की अवधि में केवल 19 पत्रिकाओं एवं 6 समाचार–पत्रों को प्रकाशन की अनुमति दी गयी थी। जबकि सन् 1855 से सन् 1864 की अवधि में इनकी संख्या बढ़कर क्रमशः 156 और 66 हो गयी। समाचार–पत्रों पर प्रतिबन्धों के हटने से वास्तविक स्वतन्त्रता मिली। 6 अप्रैल, 1865 के नियन्त्रण सम्बन्धी कानून से जनता सन्तुष्ट नहीं हुई क्योंकि इस कानून ने जनता की आशानुरूप पुराने कानूनों को रद्द नहीं किया था।

सन् 1855 से सन् 1861 की अवधि में विश्वविद्यालयों पर लगे हुए कठोर प्रतिबन्धों को समाप्त कर दिया गया। रूसी विद्वानों को विदेश जाने की अनुमति दी गयी। दर्शनशास्त्र और संवैधानिक कानून के प्राध्यापकों की पुनः नियुक्ति की गयी। सन् 1869 से सन् 1871 की अवधि में मास्को में महिलाओं के लिए कुछ अर्ध–सरकारी संस्थाएँ स्थापित की गयीं। माध्यमिक स्तर पर स्त्री शिक्षा के क्षेत्र में महत्वपूर्ण प्रगति हुई।

विद्यार्थियों पर लगे हुए समस्त प्रतिबन्धों को समाप्त कर दिया। तदुपरान्त उसने रूस की आर्थिक स्थिति में सुधार की ओर विशेष ध्यान दिया गया। उद्योगों एवं वाणिज्यिक गतिविधियों को प्रोत्साहित किया और विशद् रेलवे प्रणाली की योजना बनायी।

कृषि दासों की मुक्ति (Emancipation of the Serfs)– अलेक्जेंडर द्वितीय द्वारा कृषि दासों की समस्या के सफलतापूर्वक निदान ने अपूर्व स्थायी मान–सम्मान एवं प्रतिष्ठा अर्जित की। रूस की कुल कृषि योग्य भूमि के 9/10 भाग पर शाही वंशजों एवं 1,40,000 कुलीन वंशजों का स्वामित्व था। स्वामित्व छोटे अल्पमत के पास था, लेकिन रूस के 4,50,00,000 कृषि दास इस भूमि पर कृषि करते थे। कृषि दासों की स्थिति अत्यधिक दयनीय थी। कृषि दासों के साथ होने वाला व्यवहार भूमि स्वामियों के स्वभाव एवं चरित्र के अनुसार भिन्न–भिन्न था। सर्वाधिक खराब के अन्तर्गत पाशविक, नृशंस एवं बर्बर पशुओं के सदृश था। सर्वोत्कृष्ट के अन्तर्गत व्यक्तिगत स्वतन्त्रता से अलग अन्य अनेक दोषों पर ध्यान दिया जाता था। सन् 1828 से सन् 1854 की अवधि में कृषकों के 23 विद्रोह औसत प्रतिवर्ष होते थे। अलेक्जेंडर द्वितीय ने इस समस्या पर कृषि दासों की मुक्ति के निदान के लिए गम्भीरतापूर्वक, उदार एवं सहानुभूति पूर्ण हृदय से विचार किया। सर्वप्रथम उसने सन् 1858 में शाही परिवार की कृषि योग्य भूमि पर कार्यरत 2,30,00,000 कृषि दासों को मुक्त कर दिया। यह सम्राट की भूमि के कृषि दास थे, उनको स्वतन्त्र करने के लिए किसी प्रकार का कोई बन्धन नहीं था। उसने दृढ़ निश्चय एवं सतर्क समझौते के द्वारा स्वार्थी भू–स्वामियों के विरोध को शान्त कर दिया। परिणामस्वरूप सन् 1861 में अपनी विख्यात मुक्ति राजाज्ञा (Edic of Emancipation) जारी की। इस राजाज्ञा द्वारा समस्त रूस साम्राज्य में कृषि दास प्रथा समाप्त हो गयी। लेकिन जीवनयापन का उपयुक्त साधन प्रदान किये बिना स्वतन्त्र करने से मुक्ति द्वारा समस्या के समाधान की अपेक्षा अधिक गम्भीर समस्याओं के उद्भव की पूर्ण सम्भावना थी। इस सम्भावित समस्या का भी कुशलतापूर्वक समाधान किया गया। इस राजाज्ञा के मुख्य प्रावधान इस प्रकार थे। इस राजाज्ञा ने कृषकों को अपने स्वामियों के बन्धन से मुक्त कर दिया और कुलीन वर्ग का कृषि दासों पर विधिक क्षेत्राधिकार समाप्त कर दिया गया। दूसरे– ऐसी व्यवस्था की गयी कि कृषिदास कुलीन भू–स्वामी की जितनी भूमि पर अब तक कृषि कार्य करते थे, उसके आधे भाग पर कृषिदास का स्वामित्व हो जायेगा। यह भूमि राज्य ने भू–स्वामियों से खरीद ली थी और कृषकों को भावी 49 वर्षों में सरल किस्तों में भूमि के मूल्य का भुगतान करना था। यह भूमि कृषकों को व्यक्तिगत रूप से नहीं दी गयी, वरन् मीर (डपत) अथवा ग्राम समुदाय को दी गयी। मीर ही कृषकों के प्रयोग के लिए भूमि आवंटित करता था। मीर को ही ऋणमोचन राशि की वसूली के लिए उत्तरदायी बनाया गया एवं उनको इस उद्देश्य के लिए कराधान के लिए अधिकृत किया गया।

कृषि दासों की मुक्ति के परिणाम–यद्यपि ये सुधार प्रबुद्ध भावना से किये गये थे, लेकिन कृषकों के लिए निराशाजनक सिद्ध हुए। कृषकों ने स्वयं को करों के भार से दबा हुआ अनुभव किया और उस भूमि जिसके वे स्वामी बनाये गये थे, के मुआविजे के भुगतान का उन्होंने कठोर विरोध किया। कृषकों को आवंटित भूमि की मात्रा जीवनयापन के लिए पर्याप्त नहीं थी। कृषकों के लिए मीर भू–स्वामियों के अनुरूप ही कठोर, क्रूर एवं निर्मम था। कृषकों ने अनुभव किया कि अलेक्जेंडर द्वितीय की राजाज्ञा ने उनको भू–स्वामियों से मुक्त करवा दिया लेकिन राज्य का दास बना दिया। स्वाभाविक रूप

से कृषकों ने इस प्रश्न का उत्तर माँगा, ''तब क्या, क्या यह स्वतन्त्रता है?'' कृषकों की आपत्तियों के उपरान्त भी मुक्ति की राजाज्ञा ने रूस के विधिक एवं सामाजिक संगठन में महत्वपूर्ण परिवर्तन कर दिये। भू–स्वामियों को अपनी भूमि की क्षति हुई, साथ ही वे कृषकों पर नियन्त्रण से वंचित कर दिये गये। परिणामस्वरूप देश में भू–स्वामियों की प्रतिष्ठा, मान–सम्मान एवं प्रभुत्व में बहुत कमी हुई, लेकिन कृषकों की आर्थिक स्थिति, विचारों, भावनाओं, सामाजिक प्रतिष्ठा, मान–सम्मान एवं गतिविधियों में पर्याप्त सुधार हुआ। अन्य अनेक नये सुधार स्थापित स्थानीय संस्थाओं एवं संशोधित और परिष्कृत विधि प्रणाली में दृष्टिगत होते थे।

अन्य सुधार–कृषि दासों की मुक्ति के उपरान्त कुछ अन्य सुधार किये गये जिसके परिणामस्वरूप रूस भी पश्चिम के प्रगतिशील देशों के अनुरूप बन गया। स्थानीय स्व–शासन एवं न्यायिक प्रशासन में महत्वपूर्ण परिवर्तन किये गये। प्रत्येक जिले में स्थानीय परिषद् अथवा जेमस्तोवाज (Zemstovas) स्थापित किये गये। इसके सदस्य समाज के समस्त वर्गों का प्रतिनिविधत्व करने वाले व्यक्तियों द्वारा निर्वाचित होते थे। इन स्थानीय संस्थाओं को सड़कों और पुलों के निर्माण एवं मरम्मत करने, स्वच्छता की पर्याप्त व्यवस्था करने और प्राथमिक शिक्षा का प्रबन्ध करने का दायित्व दिया गया था। इनकी शक्तियाँ प्रान्तीय राज्यपालों में निहित निषेधाधिकार द्वारा नियन्त्रित थीं। यद्यपि इन स्थानीय संस्थाओं के अधिकार और दायित्व सीमित थे लेकिन ये परिषदें सार्वजनिक विषयों का कुशल प्रबन्धन का प्रशिक्षण देती थीं, अस्तु बहुत महत्वपूर्ण थीं। सत्ता के विकेन्द्रीकरण एवं स्वशासन की दिशा में सुधारों का यह महत्वपूर्ण कदम था।

न्यायिक सुधार–न्यायिक प्रणाली में सुधार भी समान रूप से महत्वपूर्ण थे। अब तक न्यायिक प्रशासन, भ्रष्टाचार, असमानता और गुप्त गतिविधियों एवं कार्यवाहियों से दूषित था। अलेक्जेंडर द्वितीय ने पूर्ण रूप से नई एवं परिष्कृत प्रणाली स्थापित की। न्यायिक प्रणाली को पृथक् कर दिया गया और कार्यपालिका से स्वतन्त्र कर दिया गया। न्यायिक प्रशासन अब नियमित प्रशासनिक तन्त्र की सहानुभूति, दया और कृपा पर पूर्वापेक्षा कम निर्भर था। न्यायालय की कार्यवाही को सार्वजनिक कर दिया, कानून के समक्ष समानता का आश्वासन दिया गया और जूरी द्वारा विवाद की सुनवाई का शुभारम्भ किया गया। सार्वजनिक निर्वाचन द्वारा चयनित शान्ति के न्यायाधीशों के न्यायालय छोटे विवादों की सुनवाई के लिए स्थापित किये गये।

इस प्रकार, कृषि दासों की मुक्ति, निर्वाचित स्थानीय परिषदों अथवा जेमस्तोवाज (Gemstovas) की स्थापना और न्यायालयों का संशोधित एवं परिष्कृत पुनर्गठन अलेक्लेंडर द्वितीय के प्रमुख सुधार थे। इस प्रकार शासन के प्रथम दशक में अनेक उत्साहवर्धक सुधार हुए और जनता में उदारवाद की आशा का संचार हुआ। रूस में नवीन चेतना, भावना एवं आकांक्षाओं का आविर्भाव हुआ और इनको साहित्य में अभिव्यक्ति मिली। लेकिन शीघ्र ही जनता का मोह भंग हो गया।

प्रतिक्रिया–पोलैंड में विद्रोह–सिंहासनारोहण के एक दशक बाद अलेक्जेंडर द्वितीय का सुधारों के लिए अपूर्व उत्साह क्षीण हो गया। अलेक्जेंडर द्वितीय अपने अन्तर्मन अथवा हृदय से कभी भी उदारवादी अथवा लोकतान्त्रिक नहीं था। उसके द्वारा किये गये सुधार उदारवादी दृष्टिकोण अथवा विचार का परिणाम नहीं थे वरन् समय की व्यावहारिक आवश्यकता थी। जब उसने अनुभव किया कि आवश्यकता पूरी हो गयी, उसने तत्काल रोक दिया।

अनेक कारण थे, जिन्होंने अलेक्जेंडर द्वितीय को उदारवादी सुधारों को छोड़ने के लिए बाध्य किया था। उसके सुधारों के तत्काल अपेक्षित परिणाम नहीं मिले, अस्तु वह निराश था। सन् 1863 में पोल समुदाय का विद्रोह जार की नीति में आमूल परिवर्तन के लिए निर्णायक तथ्य था। उसका अब तक पोलैंड के साथ समन्वयात्मक व्यवहार रहा था। निकोलस प्रथम की कठोर दमनकारी गतिविधियों एवं उपायों को शिथिल कर दिया गया था। लेकिन पोल समुदाय ने इन सुविधाओं अथवा शिथिलताओं को सरकार की दुर्बलता के रूप में समझा। इटली में राष्ट्रवादी उद्देश्यों की सफलता से उत्तेजित तथा रूस के कृषि दासों की मुक्ति से प्रोत्साहित पोलैंड में अति उग्रवादियों ने अपने विरोध बढ़ा दिये और अपने नये दावे किये। वे पोलैंड को एक स्वतन्त्र गणतन्त्र के रूप में बनाना चाहते थे और उन्होंने उन समस्त प्रान्तों के, जो सन् 1772 में विभाजन से पूर्व पोलैंड के अंग थे, पुनः पोलैंड में विलय की माँग की। रूस के जार ने पोल समुदाय के इस निरर्थक प्रचार को रोका। तदुपरान्त पोल समुदाय ने कपट, अनुचित गतिविधियों, षड्यन्त्र एवं हिंसा का आश्रय लिया। अन्ततोगत्वा सन् 1863 में सशस्त्र उन्मुक्त विद्रोह आरम्भ हो गया और फ्रांस से सशस्त्र सहायता का अनुरोध किया। पोल समुदाय की कोई नियमित सेना नहीं थी। अस्तु वे छोटे समूहों में जंगल में चले गये। जंगलों से ही वे निर्मम छापामार युद्ध कर रहे थे। शक्तियों विशेष रूप से इंग्लैंड और फ्रांस ने रूस के पोलैंड के साथ व्यवहार का कठोर विरोध किया, लेकिन प्रशा के चान्सलर बिस्मार्क स्वयं के अपने अनेक कारणों से रूस के जार के साथ घनिष्ठ मैत्री सम्बन्ध स्थापित करना चाहता था, अस्तु उसने रूस का प्रबल समर्थन किया। पोल समुदाय अकेला रह गया और सन् 1864 में पोल विद्रोह का क्रूरतापूर्वक दमन कर दिया गया। वास्तविक प्रतिक्रियावादी गतिविधियाँ आरम्भ हो गयीं।

सरकार ने पोल समुदाय के राष्ट्रीयता के अनिवार्य अवयवों का दमन करके उनके हृदय से राष्ट्रीय चेतना एवं भावना को समाप्त करने का प्रयास किया। पोलैंड को समस्त स्वायत्तता से वंचित कर दिया गया। समस्त विद्यालयों एवं विश्वविद्यालयों में पोलिश भाषा पर प्रतिबन्ध लगा दिया। राज्य के प्रत्येक विभाग से पोल अधिकारियों को हटा दिया और उनके स्थान पर रूसी अधिकारी नियुक्त कर दिये। रोमन कैथोलिकवाद के समस्त विशेषाधिकारों से पोल कैथोलिक धर्मावलम्बियों को वंचित कर दिया। कुलीन वर्ग, जो रूस का कट्टर शत्रु था, का पाशविक ढंग से दमन कर दिया गया। जहाँ तक सम्भव हुआ, उनको कृषक वर्ग से विलग कर दिया गया और कृषक वर्ग के साथ सहानुभूतिपूर्वक सहृदय व्यवहार किया गया। कार्यान्वित नीति 'रूसीकरण' की थी, जिसका उद्देश्य पोलैंड का रूस के साथ पूर्ण विलय था।

पोल समुदाय के विद्रोह ने रूस की सुधारात्मक प्रवृत्ति को अवरुद्ध करके पीछे की ओर उन्मुख कर दिया। अलेक्जेंडर द्वितीय उदारवादी नकाब उतारकर पुनः प्रतिक्रियावादी बन गया। प्रेस पर नियन्त्रण पुनः लगा दिया और कुख्यात गुप्त पुलिस को पुनर्जीवित एवं शक्तिशाली बनाया गया। शिक्षा को नियन्त्रित किया गया और विज्ञान के क्षेत्र में समस्त प्रगति को पाठ्यक्रम से अलग कर दिया।

विदेश नीति–अलेक्जेंडर द्वितीय ने अपने पिता की हस्तक्षेप करने की नीति को छोड़ दिया था और जहाँ तक सम्भव हुआ स्वयं को विदेशों की जटिल समस्याओं से अलग रखा। यद्यपि वह फ्रांस से अलग हो गया था, क्योंकि फ्रांस के नेपोलियन तृतीय ने पोल समुदाय के विद्रोहियों के प्रति सहानुभूति व्यक्त की थी। तदुपरान्त उसने प्रशा

की ओर दृष्टिपात किया, जहाँ बिस्मार्क अपनी मित्रता के हाथ बढ़ाने के लिए उत्सुक था। कालान्तर में रूस–प्रशा पुनर्मेल दोनों देशों के लिए लाभदायक सिद्ध हुआ। इसने प्रशा को, आस्ट्रिया को जर्मनी से निष्कासित करने में प्रशा की सहायता की और आस्ट्रिया के अपमान से रूस ने क्रीमिया युद्ध में आस्ट्रिया द्वारा अभिव्यक्त कृतध्नता का प्रतिशोध ले लिया। प्रशा के सक्रिय सशस्त्र समर्थन से शक्तिशाली रूस ने सन् 1870 में, पेरिस की सन्धि के उन प्रावधानों जिन्होंने काले सागर में रूस के प्रवेश को प्रतिबन्धित कर दिया था, को अस्वीकार करते हुए, क्रीमिया युद्ध में पराजय के कलंक को मिटा दिया।

अलेक्जेंडर द्वितीय ने बाल्कन क्षेत्र में रूस के प्रभाव को पुनर्जीवित करने का प्रयास किया। सन् 1877 में उसने तुर्की के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी और सैन स्टेफनो (San Stefno) की सन्धि द्वारा पर्याप्त लाभ प्राप्त किये। लेकिन बिस्मार्क ने आस्ट्रिया के साथ मैत्री सम्बन्ध स्थापित करने के उद्देश्य से रूस का परित्याग कर दिया। अस्तु अलेक्जेंडर द्वितीय अपनी विजय से पूर्ण रूप से लाभान्वित नहीं हो सका।

एशिया में रूस का विस्तार–यद्यपि अलेक्जेंडर द्वितीय को बाल्कन क्षेत्र में सीमित सफलता मिली लेकिन एशिया महाद्वीप में रूस के प्रभाव का पर्याप्त विस्तार हुआ। मध्य एशिया में रूस ने बार–बार सैन्य अभियानों के द्वारा अपना अधिकृत क्षेत्र मर्व (Merv) तक बढ़ा लिया था और फारस एवं अफगानिस्तान की सीमाओं तक पूर्ण नियन्त्रण हो गया था। रूस की मध्य एशिया में प्रगति से इंग्लैंड अत्यधिक भयभीत एवं चिन्तित था। चीन के साथ ऐगुन (Aigun) की सन्धि के प्रावधानों के अन्तर्गत रूस ने साइबेरिया के बहुत बड़े भू–भाग का रूस में विलय कर लिया। इसी सन्धि के अन्तर्गत व्लादिवोस्तक (Valdivostock) का बन्दरगाह भी मिला जो महान् ट्रान्स–साइबेरियन रेलवे का अन्तिम स्टेशन है और भूमध्य सागर में रूसी नौ–सैनिक बेड़े का आधार है। दक्षिण में काकेसस पर्वत तक रूस की अधिकृत सीमाओं का विस्तार हो गया था।

क्रांतिकारी आन्दोलनों का विकास–रूस में क्रांतिकारी आन्दोलन शेष यूरोप में सामान्य क्रांतिकारी आन्दोलन से सम्बन्धित था लेकिन यह अपेक्षाकृत अधिक संगठित एवं गहन था। ये क्रांतिकारी प्रवृत्तियाँ मुख्य रूप से पाश्चात्य यूरोपीय विचारों एवं उदाहरणों से प्रभावित एवं प्रेरित थीं। प्रशासन द्वारा आरोपित कठोर प्रतिबन्धों के उपरान्त भी पश्चिम के प्रवर्तित उदारवाद एवं लोकतान्त्रिक विचारों ने बुद्धिजीवियों को सर्वाधिक प्रभावित किया। अलेक्जेंडर द्वितीय के उदारवादी सुधारों ने बुद्धि जीवियों में नये उत्साह और आशा का संचार किया। जब पोल समुदाय के विद्रोह के परिणामस्वरूप जार पुनः प्रतिक्रियावादी हो गया और रूस की जनता ने पुनः पूर्व की निराशा, निरंकुशता तथा दमन का अनुभव किया। जारवादी के विरुद्ध विरोध ने स्वयं को संगठित करना आरम्भ कर दिया। अधिकारी तन्त्र की कुशल, सजग, सतर्क एवं कठोर प्रशासनिक गतिविधियों ने सरकार पर उन्मुक्त रूप से आक्रमण को असम्भव बना दिया था। परिणामस्वरूप विरोधी तत्व भूमिगत हो गये। लोकतान्त्रिक प्रणाली में जो संवैधानिक दृष्टि से विरोधी दल होते, वे क्रांतिकारी गुप्त समितियाँ बन गयीं। इस प्रकार भूमिगत षड्यन्त्रों के लिए रूसी क्रांतिकारियों ने अपूर्व कुशलता एवं चातुर्य प्रदर्शित किया लेकिन पुलिस अधकारी उनकी खोज करने में उतने ही कुशल थे। क्रूर एवं बर्बर उत्पीड़न ने क्रांतिकारियों को पूर्वापेक्षा अधिक हिंसात्मक बना दिया था

और उन्होंने आतंकवादी गतिविधियों एव बम का आश्रय लिया। सरकार ने भी इनका दमन करने के लिए पूर्वापेक्षा अधिक दमनकारी उपायों का प्रयोग किया। इस प्रकार चारों ओर का वातावरण अत्यधिक विषाक्त बन गया।

नाशवाद का विकास (Growth of Nihilism)–रूस में जारवादी शासन के अन्तर्गत विरोधियों के मध्य अनेक प्रकार की विचारधाराएँ एवं अवधारणाएँ थीं। सर्वप्रथम नाशवाद (Nihilism) था जिसका अर्थ उन्मूलन अथवा विनाश था। नाशवाद बुद्धिजीवियों का उग्रसुधारवादी समूह था। इसके अधिकांश सदस्य विश्वविद्यालयों एवं उच्च व्यावसायिक वर्गों के उत्कृष्ट बुद्धिजीवी थे। वे समाज का पूर्ण रूपान्तर चाहते थे। वे पश्चिमी यूरोप के अपेक्षाकृत अधिक उग्र सुधारवादी दार्शनिकों और वैज्ञानिकों की कृतियों का अध्ययन करते थे और उनको अपने देश की संस्थाओं एवं स्थितियों के आधार में प्रविष्ट कराना चाहते थे। वे सर्वाधिक विनाशकारी आलोचक थे। वे अत्यधिक व्यक्तिवादी थे और प्रत्येक मानव संस्था एवं परम्परा का तर्क की कसौटी पर परीक्षण करते थे। नाशवाद उनकी निन्दा करते थे। उनका दृष्टिकोण प्रारम्भ में बौद्धिक चुनौती का होता था, बाद में समस्त स्थापित व्यवस्था के विरुद्ध विद्रोह का होता था। वर्तमान समाज के स्थान पर समाजवादी सिद्धान्तों पर आधारित नये समाज का निर्माण करना चाहते थे। उन्होंने अपने विचारों एवं अवधारणाओं का व्यापक प्रचार किया। उनका मुख्य उद्देश्य ''वर्तमान सामाजिक संगठन के अवशोषों पर श्रमिक वर्गों के साम्राज्य को स्थापित करना था।''

तुर्गनेव (Turgeniev) ने नाशवाद की एक ऐसे व्यक्ति के रूप में व्याख्या की है, ''जो किसी सत्ता, के समक्ष झुकता नहीं है और अप्रमाणित किसी भी सिद्धान्त को स्वीकार नहीं करता है। वह पुराने शासन की हर चीज को नष्ट कर देगा। जार की निरंकुशता राज्य की सत्ता, चर्च की पवित्रता और सत्यता और समाज के दायित्वों को।'' इस प्रकार नाशवाद एक विनाशकारी पंथ, निषेध का सिद्धान्त था। इसका आदर्श वाक्य ''जनता के मध्य जाओ'' और इसके अनुयायियों ने इसका अक्षरशः पालन किया। उत्साही एवं कट्टर युवक एवं युवतियाँ नाशवाद के उग्र सिद्धान्तों का नगरों एवं ग्रामों के श्रमिकों के मध्य प्रचार करने के लिए जाते थे। प्रारम्भ में यह आन्दोलन शैक्षिक था। लेकिन शनैः–शनैः इसका आतंकवादी कोटि के क्रांतिकारी अराजकतावाद में विकास हो गया। जब सरकार ने इसका दमन करने का प्रयास किया, नाशवादियों ने षड्यन्त्र और उच्चाधिकारियों की हत्या का आश्रय लिया। सरकार के दमन में वृद्धि के साथ–साथ नाशवादियों की उग्र हिंसात्मक गतिविधियों में वृद्धि हो गयी। अन्ततोगत्वा अलेक्जेंडर द्वितीय ने समन्वयात्मक नीति का अनुसरण किया। सन् 1881 में उसने राजाज्ञा जारी करके नये सुधारों की सूची तैयार करने के लिए विशेष आयोग की नियुक्ति की। राजाज्ञा पर हस्ताक्षर करने वाले दिन ही उसका नाशवादियों द्वारा फेंके गये बम के विस्फोट से देहान्त हो गया। इस प्रकार 'जार मुक्तिदाता' का अन्त हो गया।

जार के जीवन पर घातक आक्रमण–सरकार की क्रूर एवं बर्बर दमनकारी गतिविधियों जैसे नृशंस हत्याएँ, कठोर कारावास एवं साइबेरिया के निर्वासन से उत्पीड़ित नाशवादियों ने अन्ततोगत्वा, घृणित, निरंकुश एवं दमनकारी गतिविधियों से मुक्ति के रूप में जार की हत्या करने का निर्णय किया। अप्रैल, 1879 में सोलोवीफ (Solovief) नाम के एक शिक्षक ने अलेक्जेंडर द्वितीय को निरर्थक पाँच गोलियाँ मारीं। उसी वर्ष दिसम्बर में क्रीमिया से आने वाली गाड़ी, जिसमें जार के होने की सम्भावना थी, को बारूद से

उड़ा दिया। जार उससे पहले की गाड़ी से गुप्त रूप से आ चुका था। फरवरी, 1880 में सेण्ट पीटर्सबर्ग स्थित शीतमहल में आयोजित रात्रिभोज में उसकी हत्या का प्रयास किया गया। डायनामाइट का विनाशकारी विस्फोट हुआ, सब कुछ ध्वस्त हो गया, लेकिन जार बच गया क्योंकि वह भोज में निश्चित समय पर नहीं गया।

यथार्थ में इस समय तक सेण्ट पीटर्सबर्ग पूर्ण रूप से आतंकित हो चुका था। अलेक्जेंडर द्वितीय ने लारिस–मेलिकाफ (Loris Melikoff) को व्यावहारिक दृष्टि से अधिनायक नियुक्त किया। उसने कुछ उदार शासन का सूत्रपात किया। सैकड़ों बन्दियों को मुक्त कर दिया और अनेक मृत्युदण्ड प्राप्त अपराधियों का दण्ड कम कर दिया। उसने जार से जनता को सरकार में कुछ भागीदारी देने का अनुरोध किया, जिससे नाशवाद आन्दोलन को शान्त किया जा सके। नाशवाद आन्दोलन सरकार की निरंकुश एवं अराजक प्रणाली के दुरूपयोग के प्रति राष्ट्रीय असन्तोष, कुंठा एवं आक्रोश की अभिव्यक्ति था। 13 मार्च, 1881 को जार ने राजाज्ञा जारी करके सुधारों का सूत्रपात किया था कि बम विस्फोट द्वारा हत्या कर दी गयी।

अलेक्जेंडर तृतीय–'जार मुक्तिदाता' के रूप में विख्यात अलेक्जेंडर द्वितीय की बम विस्फोट द्वारा हत्या से रूस के सुधार के प्रयासों को घातक आघात लगा और अलेक्जेंडर तृतीय (सन् 1881–1894) एवं निकोलस द्वितीय (सन् 1894–1917) के शासन काल में प्रतिक्रियावादी गतिविधियों का बाहुल्य रहा। प्रतिक्रियावाद ने क्रांतिकारी आन्दोलनों को प्रेरित एवं उत्तेजित किया। परिणामस्वरूप रूस का आन्तरिक इतिहास जारवादी सरकार एवं उदारवादी और क्रांतिकारी शक्तियों के मध्य संघर्ष की कहानी बन गया। क्रांतिकारी निरन्तर बम विस्फोट एवं हत्याएँ कर रहे थे और सरकार दमन करने के लिए मृत्यु दण्ड दे रही थी, यातनाएँ दे रही थी और क्रांतिकारियों को निष्कासित कर रही थी। रूस में जारशाही के पूर्ण विनाश के साथ ही इसका अन्त होना था।

अलेक्जेंडर द्वितीय के दुखान्त के बाद उसका 36 वर्षीय हृष्ट–पुष्ट, भव्य, एवं आकर्षक पुत्र अलेक्जेंडर तृतीय सिंहासनारूढ़ हुआ। उसको मुख्य रूप से सैनिक शिक्षा दी गयी थी। उसमें अपने पिता के अनुरूप सहानुभूति की भावना नहीं थी। उसका दृष्टिकोण अत्यधिक संकीर्ण था और विचार मध्यकालीन थे। उसका निरंकुशतावाद में दृढ़ विश्वास था और वह मजबूत, कठोर, कभी न झुकने वाला, प्रतिक्रियावादी और तत्कालीन नवीन भावनाओं एवं चेतना का अविश्वास करने वाला व्यक्ति था। उसका दृढ़ मत था कि रूस का पुनरूत्थान पश्चिम की संसदीय संस्थाओं एवं उदारवाद की अपेक्षा रूस के महान् प्राचीन सिद्धान्तों, रूढ़िवादिता, निरंकुशता और स्लाव राष्ट्रवाद द्वारा सम्भव था। उसके इस दृष्टिकोण का प्रबल एवं शक्तिशाली समर्थक पोब्येदनॉस्त्सेफ पवित्र सिनोद (Synod) का राज्यपाल था। उसने प्रतिक्रियावाद के वास्तविक दर्शन का विकास किया था। उसने विचार व्यक्त किया कि पश्चिमी यूरोप की सामाजिक और राजनीतिक संस्थाएँ स्वयं ही खराब थीं और रूस की अपनी परम्पराओं और मान्यताओं के अनुरूप नहीं थी, इस कारण उनको प्रयुक्त करना उचित नहीं था। रूस का एकमात्र आदर्श ''एक जार, एक चर्च, एक रूस'' होना चाहिए। यह आदर्श ही रूस को अराजकता और पश्चिमी यूरोप के संशयवाद और अविश्वास से बचा सकता है। रूस की अधिकांश जनता रूढ़िवादी थी। अस्तु कुछ समय के लिए जार की नीति भी सफल हुई।

अलेक्जेंडर तृतीय ने सर्वप्रथम देश में अनियन्त्रित एवं अनुशासनहीन उपद्रवी तत्वों की ओर ध्यान दिया। उसके पिता के हत्यारों का पता लगाया गया और कुछ को मृत्युदण्ड एवं अन्य को साइबेरिया निष्कासित कर दिया गया। अन्य नाशवादियों एवं आतंकवादियों को अपूर्व उत्साह एवं भयानक ढंग से खोज निकाला गया अतः कुछ काल के लिए क्रांतिकारी गतिविधियाँ बिल्कुल शान्त हो गयीं। प्रेस पर कठोर अंकुश लगा दिया, विद्यार्थियों एवं प्राध्यापकों पर कड़ी नजर रखी गयी और जेमस्त्वो (Zemstvo) की शक्तियों को कम कर दिया गया।

रूसीकरण की नीति–अलेक्जेंडर तृतीय ने रूस की समस्त अधीन जातियों के प्रति रूसीकरण की नीति को कार्यान्वित किया। दूसरे शब्दों में वह समस्त रूस में साम्राज्य की गैर–रूसी जनता (जैसे फिन और पोल Finns and Poles) के विशेषाधिकारों को समाप्त करके एकरूपीय स्थिति बनाना चाहता था। उसकी प्रबल इच्छा थी कि उसके साम्राज्य के हर भाग में एक भाषा, एक धर्म और एक कानून हो। हर कीमत पर एकरूपता प्रवृत्त होनी चाहिए और भिन्न–भिन्न आस्थाओं और कम महत्वपूर्ण भाषाओं को समाप्त कर देना चाहिए। दक्षिण के प्रोटेस्टेन्ट स्टनडिस्टिस (Protestant Stundists) को निर्ममतापूर्वक समाप्त कर दिया गया, उनके उपदेशों को नियन्त्रित किया गया और हर प्रकार के विरोध का उत्पीड़न किया गया। पोल, बाल्टिक क्षेत्र के जर्मन और फिन, सबने रूसीकरण की नीति के अन्तर्गत क्रूर एवं बर्बर उत्पीड़न सहन किया।

यहूदियों का उत्पीड़न–यहूदियों के अतिरिक्त अन्य किसी जाति अथवा वर्ग ने इतने अधिक कष्ट एवं पीड़ाएँ सहन नहीं कीं। उनको पश्चिम के कुछ नगरों में सीमित कर दिया गया, स्थानीय सरकार से अलग रखा गया, आंशिक रूप से शिक्षा से वंचित किया गया और कृषि कार्य करने अथवा उन नगरों जिसमें उनको सीमित किया गया था, के बाहर अचल सम्पत्ति के स्वामित्व पर कठोर प्रतिबन्ध किया गया व संगठित आक्रमणों जिनको पोगरोम्स (Pogrom) कहते थे, के लक्ष्य बनाये गए, उनकी सम्पत्ति को लूटा गया, और उनके घरों को आग लगा दी गयी। अधिकांश आक्रमणों एवं उत्पीड़नों में सरकार की निष्क्रिय सहमति थी। इसी समय बहुत बड़ी संख्या में यहूदियों ने संयुक्त राज्य अमेरिका को गमन करना आरम्भ कर दिया था।

रूस में औद्योगिक क्रांति–आतंक एवं प्रतिक्रिया के उपरान्त अलेक्जेंडर तृतीय का काल औद्योगिक एवं आर्थिक विकास के शुभारम्भ के लिए विख्यात था। काउण्ट विट्टे (Count Witte) अलेक्जेंडर तृतीय का एक मन्त्री, असाधारण ऊर्जा वाला एवं दूरदर्शी व्यक्ति था। उसके अथक प्रयासों के परिणामस्वरूप विदेशियों ने रूस में पूँजी निवेश किया। विदेशी रूस के अशोषित अमूल्य संसाधनों के प्रति आकर्षित थे। साथ ही कृषि दासों की मुक्ति से बहुत अधिक मात्रा में श्रम सहज ही उपलब्ध था। रूस ने व्यापक रेलवे के निर्माण द्वारा सहज और सुलभ संचार साधनों के अभाव की पूर्ति की। विट्टे के पद ग्रहण से पूर्व रूस में प्रतिवर्ष 400 मील से कम रेलवे का निर्माण हो रहा था लेकिन उसके बाद 1,400 मील प्रतिवर्ष रेलवे का निर्माण होने लगा। यूरोप को भूमध्यसागर से जोड़ने वाली रेल–सड़क विशाल परियोजना सर्वाधिक महत्वपूर्ण थी। यह महान् ट्रान्स–साइबेरियन रेल–सड़क परियोजना थी। इसके लिए रूस ने बहुत अधिक मात्रा में पश्चिमी यूरोप विशेष रूप से फ्रांस से ऋण लिया था। सन् 1909 में रूस में 41,000 मील रेलवे थी, जिसमें 28,000 मील रेलवे पर सरकार का पूर्ण नियन्त्रण

था। खनिज खदानों से खनिजों का निकलना आरम्भ हो गया, उद्योग स्थापित किये गये और बैंकों की संख्या में बहुत वृद्धि हुई। विट्टे ने गृह उद्योगों को प्रोत्साहित एवं विकसित करने के लिए सुरक्षात्मक सीमा–शुल्क नीति का अनुसरण किया। स्मरणीय है कि रूस का भौतिक विकास अधिकांश ऋणों, मुख्य रूप से फ्रांस से प्राप्त ऋणों से सम्भव हुआ। अलेक्जेंडर तृतीय ने, फ्रांस की ऋणों के रूप में अभिव्यक्त उदारता एवं सद्भावना के कारण फ्रांस के गणतन्त्रवाद के प्रति अपनी घृणा को विस्मृत कर सन् 1894 में विख्यात द्वि–राष्ट्रीय फ्रांस–रूस मैत्री सन्धि (Franco-Russian Alliance) की।

अपनी प्रगति जांचिए

7. अलेक्जेंडर प्रथम ने सन् ..... से ..... तक रूस पर शासन किया–
   (क) 1800–1825 (ख) 1801–1825
   (ग) 1805–1825 (घ) 1810–1825
8. अलेक्जेंडर प्रथम के देहान्त के उपरान्त निकोलस प्रथम सन् ..... में सिंहासनारूढ़ हुआ–
   (क) 1820 (ख) 1822
   (ग) 1824 (घ) 1825
9. निकोलस प्रथम ने सन् ..... में पोलैंड के विद्रोह का कठोरता से दमन किया–
   (क) 1820 (ख) 1825
   (ग) 1830 (घ) 1835

3.5 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर

1. (ख)
2. (ख)
3. (ख)
4. (ग)
5. (क)
6. (ख)
7. (ख)
8. (घ)
9. (ग)

3.6 सारांश

उन्नीसवीं शताब्दी में यूरोपीय समस्याओं में सर्वाधिक जटिल एवं महत्वपूर्ण समस्या पूर्वी समस्या थी। पूर्वी समस्या का संबंध बाल्कन प्रायद्वीप के निवासियों से है। बाल्कन तुर्की

भाषा का एक शब्द है। इसका अर्थ पर्वत श्रृंखला है। राजनीतिक भूगोल की दृष्टि से बाल्कन क्षेत्र का प्रयोग डैन्यूब नदी और एजियन सागर के मध्य स्थित समस्त पहाड़ी क्षेत्र के लिए होता था। पूर्व–ऐतिहासिक काल से यह क्षेत्र विभिन्न जातियों का संगम स्थल था। जिसमें यूनानी, सर्ब, बल्गार, अल्बानियन एवं रूमानियन आदि कई जातियां निवास करती थीं। बाल्कन क्षेत्र के अधिकांश निवासी ईसाई धर्म के अनुयायी थे। जिन पर अनेक शताब्दियों तक मुस्लिम शासकों ने शासन किया। तुर्कों के क्रूर एवं बर्बर शासन से मुक्ति हेतु इन ईसाइयों में बेहद छटपटाहट थी। अतः तुर्क साम्राज्य के पतन के पश्चात् ही पूर्वी समस्या अस्तित्व में आयी।

मध्य काल में टर्की का साम्राज्य, जिसे ओटोमन एम्पायर भी कहा जाता है, यूरोप का एक शक्तिशाली साम्राज्य था। क्षेत्रफल की दृष्टि से यह यूरोप में रूसी साम्राज्य के बाद, सबसे बड़ा था। पूर्वी यूरोप के बोस्निया, सर्बिया, यूनान, रूमानिया, बल्गेरिया आदि क्षेत्र ओटोमन साम्राज्य के अधीन आते थे। इस विशाल साम्राज्य के अन्तर्गत आने वाले निवासियों में भाषा, जाति, धर्म, रक्त आदि में कोई मेल न था। एशियायी तुर्क साम्राज्य के अधिकांश निवासी मुसलमान थे। जिनमें तुर्क, अरब और कुर्द प्रमुख थे। जिनका धर्म इस्लाम था। जबकि यूरोपीय तुर्की साम्राज्य में तुर्क अल्पसंख्यक थे और स्लाव जाति के ईसाई बहुसंख्यक थे। सर्बजाति के लोग सर्बिया, मोनीनीग्रो, बोस्निया और हर्जगोबीना में रहते थे। रोमन लोग रूमानिया, मोल्डेविया और वोलेशिया में तथा ग्रीक जाति, यूनान में व सम्पूर्ण बाल्कन प्रायद्वीप में बिखरी हुई बस्तियों में आर्मेनियन और यहूदी रहते थे। वस्तुतः यह जातिगत विषमता भी पूर्वी साम्राज्य का प्रमुख आधार थी। ओटोमन साम्राज्य के अन्तर्गत आने वाली अधिकांश जातियां भाषा, धर्म, संस्कृति में तुर्कों से पूर्णतः भिन्न थीं। तुर्कों ने इन्हें अपने साथ आत्मसात् करने का कोई प्रयास नहीं किया। उलटे इनका शोषण ही किया। इसका परिणाम छोटे–मोटे विद्रोहों एवं पारस्परिक संघर्षों में सामने आया।

1299 ई. के लगभग तुर्की जाति ने उस्मान (Othman अथवा Osman) के नेतृत्व में तुर्क साम्राज्य अथवा आटोमन साम्राज्य की नींव रखी थी। 1453 ई. में आटोमन तुर्की ने पूर्वी रोमन साम्राज्य (विजेन्टाइन साम्राज्य) की राजधानी कुस्तुनतुनिया (Constantinople) को जीत लिया था। इसके पश्चात् आटोमन साम्राज्य एशिया, यूरोप तथा अफ्रीका तक विस्तृत हो गया। आटोमन साम्राज्य का यूरोपीय भाग बाल्कन प्रायद्वीप कहलाता था। बाल्कन प्रायद्वीप के लोग स्लाव नस्ल के थे और ईसाई धर्म को मानते थे तथा ग्रीक चर्च के अनुयायी थे। 18वीं शताब्दी से ही तुर्की साम्राज्य की शक्ति एवं वैभव में ह्रास के चिन्ह दिखाई देने लगे थे। 1789 ई. की फ्रांस की क्रांति ने आटोमन साम्राज्य के अधीन आने वाली यूरोपीय जातियों में भी स्वतन्त्रता की भावना का संचार किया। 19वीं शताब्दी तक आटोमन साम्राज्य की शक्ति इतनी निर्बल हो चुकी थी कि, उसके अधीन ईसाई जातियों ने स्वतन्त्रता हेतु विद्रोह भी आरम्भ कर दिये थे।

इन यूरोपीय राष्ट्रों की स्वार्थान्धता ने क्रीमिया युद्ध जैसे अत्यन्त व्यर्थ युद्ध को जन्म दिया। रूस ने सेन्ट स्टीफनों की संधि 1877 द्वारा बाल्कन क्षेत्र में वर्चस्व स्थापित किया। रूस का यह बढ़ता वर्चस्व भला इंग्लैंड, फ्रांस एवं आस्ट्रिया कैसे बर्दाश्त करते? फलतः 1878 ई. में बर्लिन सम्मेलन आयोजित किया गया। इस सम्मेलन में ईमानदार

दलाल की भूमिका निभाने का वादा करने वाला बिस्मार्क ईमानदार नहीं रहा। आस्ट्रिया की ओर उसका झुकाव देखकर रूस नाराज हो गया। रूस की सेन्ट स्टीफनों में प्राप्त प्रतिष्ठा को बर्लिन सम्मेलन ने धोकर रख दिया। परिणामस्वरूप बर्लिन सम्मेलन ने और समस्यायें खड़ी कर दीं। अतः एक बार पुनः बाल्कन देशों को प्रथम एवं द्वितीय बाल्कन युद्धों से गुजरना पड़ा। ये बाल्कन युद्ध ही प्रथम विश्व युद्ध की पृष्ठभूमि बने।

तुर्क साम्राज्य की पतनोन्मुखी स्थिति को देखते हुए, यह प्रश्न सर्वमहत्वपूर्ण बन गया कि तुर्की द्वारा रिक्त स्थान, यूरोप का कौन–सा देश लेगा। इसी प्रश्न के मद्देनजर डॉ. मिलर ने पूर्वी समस्या को स्पष्ट करते हुए लिखा है कि ''यूरोप में तुर्की साम्राज्य के क्रमशः विघटन से उत्पन्न शून्यता को भरने की समस्या को ही पूर्व की समस्या कहते हैं। ''जहाँ एक ओर फ्रांसीसी क्रांति (1789 ई.) द्वारा प्रसारित स्वतन्त्रता एवं राष्ट्रीयता की भावनाओं से प्रेरित होकर बाल्कन प्रायद्वीप के ईसाई लोग स्वतन्त्रता का स्वप्न देख रहे थे, वहीं यूरोप की विभिन्न बड़ी–बड़ी शक्तियाँ इस अवसर का लाभ अपने हितों के लिए उठाना चाहती थीं। अतएव तुर्की के भविष्य के प्रश्न को लेकर यूरोपीय राज्य दो गुटों में बँट गये। पूर्वी समस्या को लेकर इस गुटबन्दी में एक गुट बाल्कन राज्यों में चलने वाले स्वतन्त्रता आन्दोलनों का समर्थक था। वह तुर्की साम्राज्य का पतन चाहता था। बाल्कन क्षेत्र से तुर्की साम्राज्य को उखाड़ फैंकने के समर्थन वाले इस गुट का प्रबल समर्थक रूस था। इस गुट के विपरीत दूसरा गुट किसी भी तरह तुर्की के विघटन को रोककर उसकी अखण्डता बनाये रखने का पक्षधर था। इस गुट का प्रबल समर्थक ब्रिटेन था। इस प्रकार इन परस्पर विरोधी उद्देश्यों को लेकर इन गुटों में जो संघर्ष की समस्या सामने आयी, वही पूर्वी समस्या थी।

परिणामों की दृष्टि से क्रीमिया का युद्ध 19वीं शताब्दी के इतिहास की एक महत्वपूर्ण घटना थी। इस युद्ध के पश्चात् तुर्की पर रूसी संरक्षण के स्थान पर यूरोपीय संरक्षण स्थापित हो गया। रूस एवं तुर्की की अर्थवव्यवस्था चरमरा गई, ब्रिटेन पर भी राष्ट्रीय कार्य बढ़ गया। विभिन्न देशों पर क्रीमिया युद्ध के प्रभाव पड़े।

बाल्कान में राष्ट्रीयता का विकास तुर्की सुल्तान की हठधर्मिता और रूस के हस्तक्षेप के परिणामस्वरूप 1877–78 में रूस तुर्की युद्ध हुआ और तुर्की सुल्तान की पराजय हुई अतः मार्च 1878 में सेन स्टीफनों की सन्धि हुयी।

यूरोपीय राष्ट्र बाल्कन प्रश्न को यूरोपीय प्रश्न मानते हुए और सेनस्टीफनो की सन्धि पर पुनर्विचार के लिये यूरोपिय राज्यों का सम्मेलन बुलाना चाहते थे। परन्तु रूस इसके लिये तैयार न था। किंतु जब यूरोपीय राष्ट्रों ने रूस को युद्ध की धमकी दी तब उसे विवश होकर सन्धि पर पुनर्विचार की माँग को स्वीकार करना पड़ा।

सेनस्टीफनों की सन्धि पर पुनर्विचार के लिये बर्लिन में 13 जून से 13 जुलाई 1878 तक एक सम्मेलन हुआ जिसमें रूस और तुर्की के साथ–साथ यूरोप की सभी बड़ी शक्तियों ने भाग लिया। सम्मेलन में मुख्य निर्णायक भूमिका आस्ट्रियाई विदेश मंत्री एन्ड्रेसी इंग्लैंड के डिजरायली और जर्मनी के चांसलर बिस्मार्क ने निभायी। सम्मेलन के अध्यक्ष जर्मनी के चांसलर बिस्मार्क ने ईमानदार दलाल (Honest Broker) की भाँति कार्य करने का आश्वासन दिया।

1688 की रक्तहीन क्रांति ने इंग्लैंड में निरंकुश राजतंत्र का अन्त कर पार्लियामेंट की सर्वोच्चता स्थापित की। प्रजातंत्र एक उदारवाद की दिशा में यह प्रथम कदम माना

जा सकता है। परन्तु पार्लियामेंट में अभी भी अभिजात वर्ग का प्रतिनिधित्व था आम जनता को सम्मिलित नहीं किया गया था। 1689 ई. में जान लॉक ने संसदीय प्रणाली में सुधार की माँग की। 1766 ई. में विल्कीज ने संसदीय सुधार के लिए हाउस ऑफ कॉमन्स में विधेयक प्रस्तुत किया। 1780 ई. में हार्न हुक ने सुधारों की माँग की। व्हिग पार्टी के नेता जॉन रसैल ने 1820, 1822, 1823 एवं 1826 में लार्ड सभा में संसदीय सुधार के लिये प्रस्ताव प्रस्तुत किये। 1830 के चुनावों में व्हिग दल को बहुमत प्राप्त हुआ। जो संसदीय सुधारों के लिये बचनवद्ध था। इस प्रकार इंग्लैण्ड में उदारवाद का मार्ग प्रशस्त हुआ। इसके अर्न्तगत 1832, 1867 एवं 1884 के सुधार अधिनियम पारित किये गये।

1830 के चुनावों में टोरी दल परास्त हुआ एवं व्हिग दल सत्ता में आया। अर्ल ग्रे प्रधानमंत्री बना। टोरी दल माँग प्रशासनिक व आर्थिक सुधारों का पत्रधर था, संसदीय सुधारों का नहीं व्हिग दल संसदीय सुधारों का प्रबल पक्षधर था।

इस प्रकार उदारवादी टोरी मंत्री कैनिंग, पील एवं हस्किसन ने उदारवाद की भूमिका तैयार की एवं व्हिग दल के प्रधानमंत्री अर्ल ग्रे ने 1830 में सत्ता में आते ही उदारवाद का मार्ग प्रशस्त किया। उदारवाद के उदय के साथ ही इंग्लैंड में 1832 का सुधार अधिनियम पारित कर दिया गया। 1688 की रक्तहीन क्रांति द्वारा तो मात्र संसदीय प्रणाली आरम्भ हुई थी, परन्तु 1832 के सुधार अधिनियम द्वारा इस संसदीय प्रणाली को उदार बनाया गया। इसके बाद इंग्लैंड में सुधारों का सिलसिला आरम्भ हो गया।

1832 के सुधार अधिनियम को ट्रैवेलिचन ने आधुनिक मैग्नाकार्ता कहा है। निसंदेह इंग्लैंड के संवैधानिक इतिहास में इस अधिनियम का विशिष्ट स्थान है। फ्रांस की जुलाई क्रांति 1830 से भी इसका अधिक महत्व है।

इस रक्तहीन संवैधानिक क्रांति ने सत्ता मध्यम वर्ग के हाथों में पहुँचा दी। सुधार अधिनियम के कारण निर्वाचकों की संख्या 3 गुनी हो गयी। जनसंख्या की तुलना में मतदाताओं की संख्या 1 : 30 के अनुपात में हो गयी।

काउण्टियों में निर्वाचन क्षेत्रों की संख्या में वृद्धि हुई और बरो में घटी। हाउस ऑफ कॉमन्स में व्यापारी और वकीलों के प्रतिनिधित्व में वृद्धि हुई।

अनेक औद्योगिक केन्द्रों को प्रथम बार प्रतिनिधि भेजने का अधिकार प्राप्त हुआ और उनका राजनीतिक महत्व बढ़ा।

इस अधिनियम में अनेक त्रुटियाँ भी थीं। 1831 और 1832 ई. में लोगों ने विशाल सभाएँ कीं, दंगे किये और जब सुधार बिल पारित हुआ, तब उन्हें आशाओं के विपरीत वह अनुभव हुआ कि उन्हें सच में कोई लाभ नहीं हुआ है।

सुधार अधिनियम ने धनी मध्यम वर्ग के मताधिकार को मान्यता प्रदान की परन्तु इंग्लैंड के श्रमिकों और निर्धन मध्यमवर्गीय लोगों को मान्यता प्रदान नहीं की गयी। टोरी दल के सदस्यों के अनुसार यह अधिनियम इंग्लैंड के पतन का सूचक था।

1832 से 1867 ई. तक कॉमन्स सभा की सीटों और मताधिकार के क्षेत्र में कोई परिवर्तन नहीं हुआ। अतएव निम्न, मध्यम वर्ग एवं श्रमिकों में असन्तोष व्याप्त था। अतः उन्होंने जॉन ब्राइट के नेतृत्व में आन्दोलन चलाये। 1832 ई., 1852 ई. एवं 1860 ई. में प्रस्तुत बिल पारित नहीं हो सके। 1866 में इंग्लैंड में अनुदार दल के नेता डर्बी

टिप्पणी

ने मंत्रिमण्डल बनाया। यह दल संसद में अल्पमत में था और उसकी दृष्टि आने वाले वर्ष के चुनाव पर थी। अतः प्रधानमंत्री डर्बी और उसके सहयोगी डिजरायली ने निम्न वर्ग का समर्थन प्राप्त करने के लिए तथा ग्लैडस्टन को श्रेय प्राप्त करने से रोकने के लिए सुधार करने के प्रयास किये। मार्च 1867 में डिजरायली ने सुधार अधिनियम प्रस्तुत किये और उदार दल द्वारा प्रस्तुत संशोधनों को स्वीकार करते हुए अगस्त 1867 ई. में बिल को पारित कर दिया। इसके अनुसार प्रतिनिधित्व और मताधिकार सम्बन्धी परिवर्तन हुए।

1832 से 1867 ई. के सुधार विधेयकों ने काउण्टियों और बरो में रहने वाली खेतिहर और श्रमिक वर्ग की जनता को मताधिकार नहीं दिया था। अतः ग्लैडस्टन (उदारवादी) के मन्त्रिमण्डल ने 1884 ई. में III सुधार विधेयक पारित किया। उसके द्वारा मताधिकार तथा 1884 ई. में निर्वाचन क्षेत्रों के पुनर्विभाजन की व्यवस्था की गयी। इस अधिनियम की महत्वपूर्ण विशेषता यह थी कि, बरो और काउण्टियों के मध्य मताधिकार प्रणाली के भेद को समाप्त करने की चेष्टा की गयी।

यद्यपि उन्नीसवीं शाताब्दी में रूस एक महान् यूरोपीय शक्ति बन गया था लेकिन अनेक दृष्टियों से रूस अब भी यूरोप में सर्वाधिक पिछड़ा हुआ देश था। उसका समय की गति के अनुरूप आन्तरिक विकास नहीं हुआ था। उसकी सामाजिक एवं राजनीतिक संस्थाओं का चरित्र एवं स्वरूप पूर्ववत् मध्ययुगीन ही था। पीटर महान् एवं कैथरिन द्वितीय ने रूस को पाश्चात्य सभ्यता के अनुरूप ऊपरी तड़क–भड़क दी थी लेकिन यह भव्यता एवं शान–शौकत सामान्य जनता से बहुत दूर थी। समाज में मुख्य रूप से कुलीनों एवं कृषि दासों के दो वर्ग थे। निःसन्देह पादरी एवं मध्यवर्गीय व्यक्ति थे लेकिन सापेक्षिक दृष्टि से उनकी संख्या बहुत कम थी और एक वर्ग के रूप में वे महत्वहीन थे। सन् 1789 की महान् क्रांति से पूर्व फ्रांस के अनुरूप कुलीन वर्ग ने अपने कर्तव्यों एवं दायित्वों, जिन्होंने उनको पद एवं प्रतिष्ठा प्रदान की थी, का निर्वाह करना बन्द कर दिया था लेकिन इन पदों से सम्बद्ध विशेषधिकारों का पूर्ववत् उपयोग कर रहे थे। कृषि दासों की आर्थिक स्थिति अत्यधिक निरीह एवं दयनीय थी। वह जमीन के साथ बँधे हुए थे और भू–स्वामी उनको कोड़े मार सकता था, बेच सकता था, साइबेरिया के लिए निष्कासित कर सकता था, और बिना किसी बाधा के हत्या कर सकता था। यथार्थ में कृषि दास अपने भू–स्वामियों के पशु धन सदृश माने जाते थे। जार निकोलस प्रथम जैसे प्रतिक्रियावादी शासक भी इस प्रचलित असमानता को मान्यता देता था और कृषकों को दासता से मुक्त करने के लिए कुछ प्रभावहीन उपाय किये। कृषि दास की समस्या रूस की उन्नीसवीं शताब्दी की सबसे बड़ी सामाजिक समस्या थी।

अलेक्जेंडर प्रथम ने स्विस शिक्षक ला हार्पे (La Harpe) से शिक्षा ग्रहण की थी। उसको अपने गुरू से विख्यात फ्रांस की क्रांति के उदारवादी विचार एवं सिद्धान्त प्राप्त हुए थे। वह एक आदर्शवादी और धार्मिक स्वप्न दृष्टा था। एक ऐसा चरित्र, जो विचित्र रूप से असन्तुलित था एवं वह कभी भी अपने उद्देश्य के प्रति आश्वस्त नहीं था। परिणामस्वरूप वह परस्पर विरोधी विचारों एवं दृष्टिकोणों से प्रभावित हो जाता था और उसने अस्थिर एवं अंसगत व्यवहार व्यक्त किया। उसका उदारवाद निर्विवाद था, उसके सिद्धान्त महान् थे, वह निष्ठापूर्वक विश्वास करता था कि नेपोलियनकालीन

उथल–पुथल के बाद यूरोप में पुनः शान्ति और सद्भावना स्थापित करने का उसका दैविक दायित्व था। इसी उद्देश्य से उसने पवित्र संघ (Holy Alliance) का गठन किया था। सुधारों में गहन रूचि थी और संविधान की लोकप्रिय माँग के प्रति सहानुभूति थी। उसको उदारवादी विचार, भावनाएँ एवं प्रवृत्तियाँ पोलैंड के लिए स्वीकृत संविधान और फिनलैंड, एक प्रान्त जिसका हाल ही में रूस में विलय किया गया था, के संविधान के प्रति अभिव्यक्त सम्मान में स्पष्ट रूप से दृष्टिगत होती हैं। उसने रूस के उत्तरी प्रान्तों के कृषि दासों को मुक्त कर दिया और दासता उन्मूलन का प्रबल समर्थन किया, लेकिन उसका उदारवाद उसको साम्राज्यिक नीति का अनुसरण करने से नहीं रोक सका। अलेक्जेंडर प्रथम ने ही फिनलैंड पर विजय प्राप्त की थी और नेपोलियन के साथ मिलकर तुर्कों के विभाजन का प्रयास किया था।

अलेक्जेंडर प्रथम के देहान्त के उपरान्त कुछ काल तक देश में उपद्रव होते रहे। सेना के अधिकारियों और गुप्त समितियों ने उस व्यवस्था जिसके द्वारा निकोलस प्रथम को उसके बड़े भाई कान्सटेन्टाइन (Constantine) की अपेक्षा सिंहासन का उत्तराधिकारी बनना था, के विरुद्ध विरोध स्वरूप सशस्त्र आक्रमण किया। वह माह जिसमें यह विद्रोह हुआ था, देसम्बरिस्टस (Decemberist) के नाम से विदित था, विद्रोहियों ने प्रतिक्रिया की लहर को रोकने का प्रयास किया। उन्होंने अपना उद्देश्य 'कान्सटेन्टाइन और कान्सटीट्यूशन' बनाया। रूस में उदारवाद की प्रगति कितनी अल्पज्ञ थी, इस तथ्य से अनुमान लगाया जा सकता है कि अनेक विद्रोही सैनिकों का विश्वास था कि ''कान्सटीट्यूशन कान्सटेन्टाइन की पत्नी थी।'' विद्रोह का कठोरतापूर्वक दमन कर दिया गया।

निकोलस प्रथम कट्टर रूढ़िवादी था और देसम्बरिस्टस विद्रोह ने उसके विचारों एवं दृष्टिकोण को पुष्ट किया। उसका दृढ़ मत था, कि रूस को बिना पाश्चात्य उदारवादी सिद्धातों एवं विचारों से प्रभावित हुए अपने अनुसार विकास करना चाहिए। उसने रूसी साहित्य को प्रोत्साहित किया लेकिन विदेशी पुस्तकों एवं खोज पत्रों को अलग कर दिया। वह स्वयं को दैवी शक्ति द्वारा नियुक्त कानून एवं व्यवस्था के प्रबल समर्थक के रूप में मानता था। अस्तु क्रांतियों का कट्टर विरोधी था। अपने 30 वर्ष के शासन काल में वह सदैव निरंकुशता और रूढ़िवादिता का प्रबल समर्थक रहा। उसने विदेशों में विद्रोहों का दमन करने के लिए रूसी सेना भेजी और देश में उदारवादी विचारों का दमन करने के लिए समस्त प्रकार के उपाय किये। उसने रूसवासियों की यात्रा को प्रतिबन्धित कर दिया, प्रेस की कठोर नियन्त्रक व्यवस्था स्थापित की, विश्वविद्यालयों में कर्मचारी वर्ग एवं पाठ्यक्रम की दृष्टि से पूर्ण नियन्त्रण रखा। देशद्रोह का पता लगाने और दण्ड देने के लिए व्यापक गुप्तचर व्यवस्था स्थापित की। इस प्रकार रूस को उदारवाद के संक्रामक कीटाणुओं से बचाने के लिए चारों ओर से बन्द कर दिया था। उसने सन् 1830 में पोलैंड के विद्रोह का कठोरता से दमन किया, अलेक्जेंडर प्रथम द्वारा स्वीकृत संविधान को समाप्त कर दिया और पोलैंड का रूस में विलय कर लिया।

3.7 मुख्य शब्दावली

- **पूर्वी समस्या** – पूर्वी यूरोप पर आधिपत्य का प्रश्न
- **उदारवाद** – सभी विचारधाराओं के प्रति सहनशीलता
- **अधिनियम** – लोगों द्वारा चुने गए प्रतिनिधियों द्वारा पारित विधान
- **चार्टिस्ट आंदोलन** – 19वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में इंग्लैंड में मजदूर वर्ग के हितों के संरक्षण हेतु चलाया गया आंदोलन
- **नाशवाद** – रूस में जारवादी शासन के विरोधियों में प्रचलित एक विचारधारा जिसमें वे समाज का पूर्ण रूपांतरण चाहते थे।

3.8 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास

लघु–उत्तरीय प्रश्न

1. पूर्वी समस्या से आप क्या समझते हैं? साररूप में बताइए।
2. आटोमन साम्राज्य के अधीन आने वाले पूर्वी यूरोप के देशों के नाम बताइए।
3. यूरोप का बीमार किस देश को कहा जाता था?
4. यूरोप के बड़े राष्ट्रों के नाम बताइए जो पूर्वी समस्या से संबद्ध थे।
5. उदारवाद पर प्रकाश डालिए।
6. 1832 के सुधार अधिनियम की विशेषताएँ बताइए।
7. 1867 के सुधार आन्दोलन के प्रमुख बिंदु बताइए।
8. चार्टिस्ट आन्दोलन की असफलता के कारण बताइए।
9. किस रूसी शासक ने यूरोप में शांति और सद्भावना स्थापित करने को स्वयंमेव ही अपना दैविक दायित्व माना?
10. निकोलस प्रथम की कट्टर रूढ़िवादिता दर्शाने वाले कुछ उदाहरण बताइए।

दीर्घ–उत्तरीय प्रश्न

1. क्रीमियन युद्ध तथा बर्लिन के संदर्भ में पूर्वी समस्या का विवेचनात्मक अध्ययन कीजिए।
2. क्रीमियन युद्ध की पृष्ठभूमि, तात्कालिक कारणों और इसके प्रभावों का विश्लेषण कीजिए।
3. बर्लिन कांग्रेस के विभिन्न पक्षों की विवेचना कीजिए।
4. ''ब्रिटेन का उदारवादी युग सुधारवादी युग था।'' कथन की विवेचना कीजिए।
5. इंग्लैंड में सन् 1832 ई. के सुधार अधिनियम की पृष्ठभूमि एवं महत्व की विवेचना कीजिए।
6. इंग्लैंड में उन्नीसवीं सदी के सुधार अधिनियमों की विवेचना कीजिए।
7. ब्रिटेन के चार्टिस्ट आन्दोलन की पृष्ठभूमि एवं महत्व का वर्णन कीजिए।

8. निम्न पर टिप्पणी लिखिए–
   (i) चार्टिस्ट आन्दोलन की माँगें।
   (ii) 1884 ई. का सुधार अधिनियम।
9. 1815 से 1890 के मध्य रूस की सामाजिक व प्रशासनिक व्यवस्था का विश्लेषण कीजिए।
10. कृषि दासों की मुक्ति के परिणामों का विवेचन कीजिए।
11. अलेक्जेंडर प्रथम की विदेशी नीति पर प्रकाश डालिए।
12. रूस–तुर्की युद्ध के कारणों की व्याख्या कीजिए।
13. निकोलस प्रथम के शासन के महत्व का विस्तारपूर्वक उल्लेख कीजिए।

3.9 सहायक पाठ्य सामग्री

- ए. डब्लू. वार्ड (सं), दि कैम्ब्रिज मॉडर्न हिस्ट्री, जिल्द 1 से 10, 1902
- सी.डी.एम. कैटलबी, ए हिस्ट्री ऑफ मॉडर्न टाइम्स, 1964
- सी.डी.हैजन, मॉडर्न यूरोपियन हिस्ट्री, 1938
- सी.एच. फाइप, ए हिस्ट्री ऑफ मॉडर्न यूरोप, 1880
- एच.ए.एल. फिशर, ए हिस्ट्री ऑफ यूरोप, 1939
- पार्थ सारथी गुप्ता, आधुनिक पश्चिम का उदय, 1992
- डेविड थामसन, डेमोक्रेसी इन फ्रांस : दि थर्ड रिपब्लिक, 1946
- जे. पी. टी. बरी, फ्रांस (1814–1940), 1949
- जे. एच. क्लेपहेम, इकॉनॉमिक डवलपमेण्ट ऑफ फ्रांस एण्ड जर्मनी (1815–1914), 1928
- एल. एल. स्माइडर , फ्रॉम बिस्मार्क टू हिटलर, 1935
- पार्थ सारथी गुप्ता, यूरोप का इतिहास, 1987
- जे.एच. हेज, पॉलिटिकल एण्ड कल्चरल हिस्ट्री ऑफ मॉडर्न भाग–1 और 2, 1936
- सी.जी. राबर्टसन, बिस्मार्क, 1947
- आर.डब्ल्यू. सेटन वाटसन, डिजरेली, ग्लेडस्टन एण्ड दि इस्टर्न क्वेश्चन, 1935, राइज ऑफ नेशनलिटी न बाल्कन, 1917
- वी.जे. परियार, इंग्लैंड रशा एण्ड दि स्टेट्स क्वेशन (1844–56), 1931
- वर्मा, दीनानाथ, आधुनिक एशिया का इतिहास, 1993 एवं अंतर्राष्ट्रीय संबंध, 1985
- हेतु सिंह बघेला, आधुनिक एशिया का इतिहास, 1996
- जी.पी. गूच, ए हिस्ट्री ऑफ यूरोप, 1946 एवं जर्मनी, 1925

- अहमद मनाजिर एवं सभ्रवाल एस.पी., आधुनिक यूरोप का इतिहास (1789–1950), विशाल पब्लिकेशन, दिल्ली, 1996
- एरख आयक, बिस्मार्क एण्ड द जर्मन एम्पायर, 1928
- ए.जे.पी. टेलर, बिस्मार्क दि मेन स्टेट्समैन, 1965
- पांडेय, वी.सी.–यूरोप का इतिहास, केदारनाथ रामनाथ, मेरठ, 1976
- शर्मा, एम.एल–यूरोप का इतिहास, कालिज बुक डिपो, जयपुर
- Grant at temperaley - Europe in the 19th-20th Century
- Lipson - Europe in the 19th, 20th Century
- Hazen, C.D - Modern Europe up to 1945
- Ketelbey, C.D.M - A history of modern Europe
- Ludwig, Email - Bismark
- राहुल सांकृत्यायन, मध्य एशिया का इतिहास, खण्ड–1, 1956
- राहुल सांकृत्यायन, मध्य एशिया का इतिहास, खण्ड–2, 1957
- बुद्ध प्रकाश, एशिया के सामाजिक और सांस्कृतिक इतिहास की रूपरेखा, हिंदी समिति, लखनऊ, 1971
- वर्मा दीनानाथ, एशिया का आधुनिक इतिहास, भारती भवन, पटना, 1988
- शर्मा अम्बिका प्रसाद, एशिया का इतिहास, ज्ञानदा प्रकाशन, नई दिल्ली, 1995
- शर्मा मथुरालाल, अमेरिका का इतिहास, रिसर्च पब्लिकेशन, जयपुर, 2002
- श्रीवास्तव ब्रजेश कुमार, विश्व इतिहास की विषयवस्तु, SBPD पब्लिकेशन हाउस, आगरा, 2007
- श्रीवास्तव ब्रजेश कुमार, चीन एवं जापान का इतिहास, SBPD, आगरा, 2007

इकाई 4 अमेरिकी गृह युद्ध, इटली का एकीकरण, जर्मनी का एकीकरण, बिस्मार्क युग : बिस्मार्क की गृहनीति एवं विदेश नीति

संरचना

4.0 परिचय
4.1 उद्देश्य
4.2 अमेरिका का गृह युद्ध
4.3 इटली का एकीकरण तथा जर्मनी का एकीकरण
  4.3.1 इटली का एकीकरण
  4.3.2 जर्मनी का एकीकरण
4.4 बिस्मार्क युग : गृहनीति एवं विदेश नीति
  4.4.1 बिस्मार्क की गृह नीति
  4.4.2 बिस्मार्क की विदेश नीति
4.5 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
4.6 सारांश
4.7 मुख्य शब्दावली
4.8 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
4.9 सहायक पाठ्य सामग्री

4.0 परिचय

अमेरिका के उत्तरी एवं दक्षिणी भाग में रहने वाले लोगों के मध्य कई बातों पर पारस्परिक मतभेद थे और इन्हीं मतभेदों के चलते इनके बीच 1861 ई. में जो संघर्ष हुआ, वह इतिहास में अमेरिका के गृह युद्ध के नाम से जाना जाता है।

अब्राहम लिंकन जिस समय अमेरिका के राष्ट्रपति बने, उस समय अमेरिका की स्थिति काफी शोचनीय थी। उत्तर व दक्षिण के मध्य वैमनस्य की भावना विद्यमान थी। परम्परागत रूप से जहाँ अमेरिका का उत्तरी भाग उद्योग–प्रधान था, वहीं दक्षिणी भाग की अर्थव्यवस्था का प्रमुख आधार कृषि था। अतः इनके मध्य विद्वेष का कारण यह भी था, कि जो नीतियाँ उत्तरी भाग हेतु लाभदायक थीं, वे दक्षिणी भाग के लिए हानिकारक थीं। कृषि आधारित अर्थव्यवस्था के कारण दक्षिणी लोग दास प्रथा को निहित स्वार्थवश बरकरार रखना चाहते थे, जबकि उत्तरवासी उसे ईश्वरीय कानून के विरुद्ध मानकर समाप्त करना चाहते थे। इनके अलावा और भी कई मतभेदों के चलते जहाँ दक्षिणी लोग अमेरिकी संघ से अलग होना चाहते थे, वहीं उत्तरी लोग संघ के विघटन को रोकना चाहते थे। अब्राहम लिंकन ने घोषणा भी की थी कि ''इस संघर्ष में परम लक्ष्य संघ का संरक्षण है, न कि दास प्रथा का पोषण अथवा विनाश।''

इस संघर्ष की स्थिति के समय अमेरिका के प्रसिद्ध देशभक्त नेता जार्ज वांशिगटन, हैमिल्टन एवं थॉमस जेफरसन आदि का देहान्त हो चुका था। इनके पश्चात् के अमेरिकी नेताओं में योग्यता तो थी परन्तु, देश के प्रति समर्पण की भावना कुछ कम थी। युद्ध के उत्तरदायित्व को लेकर भी इतिहासकारों में मतभेद हैं। कुछ

इतिहासकार इस गृह युद्ध के लिए उत्तर वालों को इस आधार पर उत्तरदायी मानते हैं, कि उत्तर में दास प्रथा विरोधी संस्थाओं का गठन हुआ, स्वतन्त्र भूमि दल बना एवं अन्य दक्षिण विरोधी कार्य हुए, जबकि कुछ इतिहासकार दक्षिण वालों को इस आधार पर गृह युद्ध के लिए जिम्मेदार मानते हैं कि, दक्षिण में दास प्रथा विरोधी लोगों पर हमले हुए तथा दक्षिणवासियों की हिंसात्मक प्रवृत्ति भी युद्ध के लिए उत्तरदायी थी।

इटली का एकीकरण– 1871 ई. के पूर्व, कई शताब्दियों तक इटली एक भौगोलिक अभिव्यक्ति मात्र था। आठवीं शताब्दी में इटली पवित्र रोमन साम्राज्य का एक अंग था। कालान्तर में रोमन साम्राज्य के पतन के बाद इटली अनेक छोटी–छोटी इकाइयों में विभक्त हो गया। 15वीं शताब्दी से 18वीं शताब्दी के बीच इटली की कमजोरी का लाभ उठाकर यूरोप के विभिन्न देशों मुख्यतः आस्ट्रिया व फ्रांस ने इटली के प्रदेशों को हस्तगत करने का प्रयास किया। वस्तुतः इटली उस समय अनेक छोटे–छोटे राज्यों में बँटा हुआ था। जिन पर अनेक वंशों के निरंकुश शासक राज्य करते थे। इनमें अधिकांश शासकों को विदेशी राजवंशों से सम्बन्धित होने के कारण इटली के राष्ट्रवाद से कोई सरोकार न था। इटली की इसी दुर्बलता के कारण वह यूरोपीय शक्तियों की स्वार्थसिद्धि का अखाड़ा (Cockpit to European State) बन चुका था।

भौगोलिक दृष्टि से जर्मनी यूरोप के मध्य में स्थित है। 1789 ई. की फ्रांसीसी क्रान्ति से पूर्व जर्मनी यूरोपीय राष्ट्रों में राजनीतिक दृष्टि से सर्वाधिक विभक्त देश था। जिसमें 200 से अधिक छोटे–बड़े राज्य थे। जर्मनी के उत्तर में बाल्टिक सागर, पूर्व में पोलैण्ड एवं रूस, पश्चिम में बेल्जियम तथा फ्रांस एवं आस्ट्रिया स्थित हैं। जर्मनी के सभी राज्यों में विभिन्न प्रकार की शासन प्रणालियाँ, व्यवस्थाएँ, कानून एवं धार्मिक परम्पराएँ विद्यमान थीं। अतः इन राज्यों में राष्ट्रीय भावना का अभाव था और यहाँ के शासक भी स्वार्थोन्मुख शासन संचालित करते थे। अतः इटली की भाँति जर्मनी भी एक भौगोलिक अभिव्यक्ति मात्र ही था। इटली की तरह ही आस्ट्रिया भी जर्मनी के एकीकरण के मार्ग की प्रमुख बाधा था। इटली की ही तरह नेपोलियन बोनापार्ट ने यहाँ एकीकरण का बीजारोपण किया परन्तु जहाँ इटली के एकीकरण को कावूर, मैजिनी तथा गैरीबाल्डी ने पूर्णता प्रदान की, वहीं जर्मनी के एकीकरण का महानायक प्रशा का चांसलर लौह पुरुष बिस्मार्क था।

यूरोप के इतिहास में बिस्मार्क का महत्वपूर्ण स्थान है। प्रशा के चांसलर के रूप में उसका पदार्पण जर्मन रियासतों के लिए युगान्तरकारी सिद्ध हुआ था। 1870 ई. में फ्रांस की पराजय के परिणाम स्वरूप ''18 जनवरी 1871 को जर्मनी का एकीकरण हुआ एवं उसी दिन लौकिक यूरोप ने 'बिस्मार्क युग' में पदार्पण किया'' (रॉबर्टसन)। निःसन्देह उसके नेतृत्व में न केवल जर्मनी अपितु समस्त केन्द्रीय यूरोप की राजनीति एक निश्चित दिशा की ओर अग्रसर हुई, जिसका मुख्य उद्देश्य जर्मनी को उस कूटनीतिक शिखर पर पहुँचाना था जो कभी फ्राँस अथवा आस्ट्रो–जर्मन सम्राट की थी। जर्मनी को समृद्ध एवं शक्तिशाली बनाने के कार्य में वह सभी संबंधित व्यक्तियों का सहयोग चाहता था और इस कार्य में उसे जो अच्छा लगा वह उसने किया।

1871 ई. में जर्मनी ने एक नये युग में पदार्पण किया। 1871 से 1890 ई. तक का काल जर्मनी के इतिहास में बिस्मार्क के युग के नाम से जाना गया है।

इस इकाई में हम अमेरिका के गृह युद्ध, इटली के एकीकरण, जर्मनी के एकीकरण तथा बिस्मार्क एवं उसकी गृह नीति एवं विदेश नीति का विस्तारपूर्वक अध्ययन करेंगे।

4.1 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप–

- अमेरिका के गृह युद्ध की पृष्ठभूमि, महत्व एवं परिणामों को समझ पाएंगे;
- इटली के एकीकरण तथा जर्मनी के एकीकरण के सभी पक्षों का अध्ययन कर पाएंगे;
- बिस्मार्क के युग, उसकी गृहनीति एवं विदेश नीति का विश्लेषण कर पाएंगे।

4.2 अमेरिका का गृह युद्ध

प्रो. रिचर्ड करेंट के अनुसार, "In the perspective of world history the civil war is the first of modern war. It was a war of material as well as men"

इस गृह युद्ध की पृष्ठभूमि, कारण, संचालन एवं प्रभावों का अध्ययन अमेरिकी इतिहास का उल्लेखनीय भाग है।

गृह युद्ध के कारण–अमेरिकी गृह युद्ध के प्रमुख कारण निम्नवत हैं–

(1) दूरवर्ती कारण–संयुक्त राज्य अमेरिका के उत्तरी तथा दक्षिणी भागों में आपसी मनमुटाव गृह युद्ध का कारण बना। उत्तर एवं दक्षिणी भागों के बीच मतभेद निम्न प्रश्नों पर था–

(i) दासता का प्रश्न, 1820।

(ii) टेक्सॉस के विलय का प्रश्न।

(iii) मैक्सिको का युद्ध।

उपर्युक्त प्रश्नों ने उत्तर–दक्षिण के बीच की खाई को और चौड़ा किया।

(2) दास प्रथा–एल्सन के अनुसार गृह युद्ध का मौलिक कारण उत्तर तथा दक्षिण के दास प्रथा को लेकर एक दूसरे के विरोधी तथ्य थे।

(i) दक्षिण के दास मालिकों ने दास प्रथा की रक्षा के लिए ऐसे तर्क दिये और कार्य किये जिनसे उत्तरवासियों के दिल में अविश्वास एवं रोष पैदा हुआ। दक्षिणवासियों ने इसे पवित्र जीवन का आधार, दासों की सुरक्षा एवं गोरे लोगों की प्रभुता हेतु न्यायोचित ठहराया।

(ii) उत्तरवासी दास प्रथा को ईश्वरीय कानून के विरुद्ध स्वार्थपूर्ण प्रवृत्ति पर आधारित, समानता व स्वतन्त्रता की घोषणा के विरुद्ध तथा दक्षिण की प्रगति को रोकने वाला बताकर उसका विरोध करते थे।

इन तर्क–वितर्कों के चलते कोई भी पक्ष झुकने को तैयार नहीं था। दासता के बढ़ते प्रभाव पर एक ने व्यंग्यात्मक लहजे में कहा था–

''अमेरिकी झण्डे से तारों का प्रकाश और प्रभात की लाल किरणें मिटा देनी चाहिए और इस पर कोड़े तथा बेड़ियाँ अंकित करनी चाहिए।''

(3) राजनीतिक भाषणबाजी–उत्तर और दक्षिण के नेताओं के तर्कों और नारों ने दोनों ओर भय तथा ऊँच–नीच की भावना जागृत की। दासता उन्मूलनकारी आन्दोलन ने दक्षिण में यह भय पैदा किया कि इससे ऐतिहासिक श्रम प्रणाली भंग हो जायेगी तथा जातिगत संघर्ष आरम्भ हो जायेंगे।

दूसरी ओर दक्षिणवासियों द्वारा दास प्रथा के समर्थन से उत्तर के लिंकन जैसे नेताओं को भय हुआ कि यह दास प्रथा सम्पूर्ण देश को चपेट में ले सकती है। उत्तर के विभिन्न पत्रकारों, पादरियों और राजनीतिज्ञों ने दास प्रथा की बुराइयों को बढ़ा–चढ़ाकर बताया। इस प्रकार गृह युद्ध की पृष्ठभूमि तैयार हुई।

(4) लिंकन का निर्वाचन–1860 के राष्ट्रपति चुनाव में डेमोक्रेटिक पार्टी के विभाजन के परिणामस्वरूप रिपब्लिकन पार्टी के उम्मीदवार अब्राहम लिंकन विजयी हुए जिन्होंने चुनाव में दासता के प्रश्न को महत्व दिया था। लिंकन की विजय से दक्षिणी राज्यों को चिन्ता हुई, कि नयी सरकार उनकी संस्थाओं एवं विशिष्ट सभ्यता को खण्डित कर देगी। इस भावना ने दक्षिणी के राज्यों को संघ से अलग होने को प्रेरित किया।

(5) दास मालिकों की गलतियाँ–दक्षिण के दास मालिकों ने दुस्साहसपूर्वक संविधान की धज्जियाँ उड़ा दीं। उन्होंने संघ से हटने और युद्ध आरम्भ करने के पूर्व–

(i) अपनी शक्ति का आकलन नहीं किया।

(ii) उत्तरी मित्रों से नाता तोड़ लिया।

(iii) संघीय भावना की उपेक्षा की।

(iv) वे यह भूल गये कि उन्हें विदेशी सहायता और मान्यता दासता के प्रश्न पर नहीं मिल सकती।

(6) राज्यों का पृथक् होना–लिंकन की विजय दक्षिण के राज्यों पर एक वज्र के समान पड़ी। उन्होंने संघ से पृथक् होने के लिए कार्यवाही आरम्भ की एवं तर्क दिया कि ''संयुक्त राज्य अमेरिका सम्प्रभु राज्यों का संघ है अतः राज्य अपनी इच्छानुसार संघ से अलग हो सकते हैं।''

दक्षिण केरोलिना ने 20 दिसम्बर, 1860 को संघ से पृथक् होने की घोषणा की। शीघ्र ही मिसीसिपी, फ्लोरिडा, अलबामा, जार्जिया, ल्यूसियाना, टेक्सॉस और अन्य राज्यों ने संघ से पृथक् होकर दक्षिण परिसंघ बनाया। परिसंघ ने माण्टगोमरी (अलबामा) में संयुक्त कन्वेंशन बुलाई। अस्थायी संविधान स्वीकार किया तथा प्रावधिक (अस्थायी) राष्ट्रपति तथा उपराष्ट्रपति का निर्वाचन किया। उत्तरी राज्यों ने इस कार्यवाही को विद्रोह घोषित किया।

(7) संघ की रक्षा–गृह युद्ध की उल्लेखनीय विशेषता यह थी कि दक्षिणी राज्य दास प्रथा की रक्षा के लिए संघ से अलग हो रहे थे, जबकि उत्तरी राज्य संघ की रक्षा के लिए युद्ध लड़ रहे थे।

(8) आर्थिक लक्ष्य–उत्तरी राज्य आर्थिक हितों की रक्षा हेतु प्रतिबद्ध थे। इसी कारण लिंकन को मध्य पश्चिम के किसानों का अधिक समर्थन मिला।

(9) प्रजातन्त्र और स्वतन्त्रता के आदर्शों की रक्षा–उत्तर के लोग प्रजातन्त्रात्मक सरकार को खतरे में मानते हुए दक्षिणी राज्यों को जब चाहें, तब संघ तोड़ने का अधिकार देने को तैयार नहीं थे। परिसंघ के अलग हो जाने का अर्थ यह था कि लोकप्रिय सरकार अपनी रक्षा नहीं कर सकती।

(10) समझौता प्रयासों की असफलता–न्यूयार्क, बोस्टन और फिलाडेल्फिया की सभाओं, वजीर्निया शान्ति कांग्रेस (वाशिंगटन की), सीनेटर क्रीटेनडन के प्रस्ताव आदि समझौता प्रयास असफल हुए। अतएव गृह युद्ध अवश्यम्भावी हो गया।

युद्ध– युद्ध का आरम्भ 12 अप्रैल, 1861 में हुआ। गृह युद्ध आरम्भ होने के समय दोनों पक्षों ने एक दूसरे की शक्ति का अनुमान गलत लगाया अतः युद्ध 4 वर्ष चला और तभी समाप्त हुआ, जबकि दक्षिण के लोग थककर चूर हो गये।

रिचर्ड करेंट के अनुसार, "A comparison of the competition of war reveals that all the great material factor were on the side of the north."

अमेरिकी गृह युद्ध का महत्व –

अमेरिकी गृह युद्ध के निम्नांकित प्रभाव परिलक्षित हुए–

(i) युद्ध में दोनों पक्षों का व्यापक नरसंहार हुआ।

(ii) एल्सन के अनुसार कुल युद्ध व्यय 10 अरब डालर से अधिक ही था।

(iii) दक्षिण का आर्थिक विनाश हुआ।

(iv) दास प्रथा की समाप्ति हुई। 1865 में सीनेट ने संविधान में दास मुक्ति सम्बन्धी संशोधन स्वीकार किये।

(v) राज्य सम्प्रभुता की समाप्ति हुई।

(vi) औद्योगिक प्रसार बढ़ा एवं तकनीकी प्रणाली विकसित हुई।

(vii) धन अधिकारों के भूखे लोगों ने देश की सामाजिक स्थिति पर बुरा प्रभाव डाला।

(viii) संघीय सरकार पर रिपब्लिकन पार्टी का एकाधिकार बढ़ा।

एच.डब्लयू. एल्सन के अनुसार यह युद्ध एक ऐसी शल्य चिकित्सा थी। जो काफी पीड़ादायक थी, परन्तु एक राष्ट्र के स्वस्थ जीवन के लिए अत्यन्त आवश्यक थी और इसका जो परिणाम हुआ, वह संयुक्त राज्य अमेरिका के लिए वरदान साबित हुआ।

युद्ध के उपरान्त देश में एकता की भावना दृढ़ हुई तथा स्वशोषण का स्थान, व्यावहारिकता ने ले लिया जो 'स्थायी सत्य' बन गया।

अब्राहम लिंकन की हत्या

4 मार्च, 1865 ई. से अब्राहम लिंकन का राष्ट्रपति के रूप में द्वितीय कार्यकाल आरम्भ हुआ। परन्तु अमेरिका के इस महान नेता की जॉन विक्सन ब्रुश द्वारा 14 अप्रैल, 1865 ई. को हत्या कर दी गयी। यह एक विडम्बना ही थी, कि जिस व्यक्ति ने अमेरिका की एकता का मार्ग प्रशस्त किया, वह अपने स्वप्नों को साकार होते न देख सका। जार्ज वाशिंगटन एवं थॉमस जेफरसर की परम्परा का निर्वाह करते हुए अब्राहम लिंकन भी अमेरिका का एक महान नेता था। लिंकन ने अपना परम लक्ष्य संघ का संरक्षण माना था और पूर्ण प्रतिबद्धता के साथ उन्होंने अपना लक्ष्य प्राप्त भी किया। वस्तुतः लिंकन

ने यथार्थ रूप से अमेरिका के संयुक्त राष्ट्र रूप का निर्माण किया। दासता जैसी बुराई को दूर कर अमेरिकी समाज को एक नव ज्योति प्रदान की। अमेरिका की उन्नति को देखने के लिए लिंकन जीवित भले ही नहीं रहे परन्तु उनके प्रयासों का प्रतिफल यह था कि अमेरिका निरन्तर उन्नति के पथ पर बढ़ता रहा।

अमेरिकी गृह युद्ध के परिणाम

अमेरिकी गृह युद्ध अमेरिका के इतिहास की एक महत्वपूर्ण घटना थी। इस गृह युद्ध के पश्चात् अमेरिका में एक नव युग का प्रादुर्भाव हुआ। इस गृह युद्ध की विध्वंसकता में भी रचनात्मकता निहित थी। इस गृह युद्ध ने अमेरिका के राजनीतिक, आर्थिक एवं सामाजिक स्वरूप को काफी हद तक प्रभावित किया जिसका वर्णन निम्नवत् है–

(1) राजनीतिक परिणाम–इस गृह युद्ध ने दीर्घकाल से चले आ रहे प्रान्तीय एवं संघीय विवाद को हल कर अमेरिका की राजनीतिक स्थिति को मजबूत किया। संविधान के 14वें व 15वें अनुच्छेद के अन्तर्गत दासों को भी मताधिकार के साथ–साथ नागरिक अधिकार भी प्राप्त हुए। एच.सी. पार्किन्स के अनुसार, ''गृह युद्ध में उत्तर की विजय ने राष्ट्रीय एकता की शक्तियों को मजबूत बनाया और राज्यों के अधिकारों के सिद्धान्त को अन्तिम पराजय दी।''

(2) औद्योगिक प्रगति–गृह युद्ध के पश्चात् ही अमेरिका में औद्योगिक प्रगति का मार्ग प्रशस्त हुआ। औद्योगिक प्रगति का प्रतिफल यह रहा कि, अमेरिका में नगर निर्माण, यातायात तथा रेल उद्योग का विकास हुआ। औद्योगिक प्रगति के परिणामस्वरूप ही अमेरिका कालान्तर में पूँजीवाद की ओर अग्रसर हुआ। कृषि के क्षेत्र में भी नवीन कृषि तकनीकों के उपयोग से उत्पादन में वृद्धि हुई।

(3) सामाजिक परिणाम–गृह युद्ध का सर्वाधिक प्रमुख सामाजिक परिणाम यह हुआ, कि युद्ध के पश्चात् उत्तर एवं दक्षिण के लोगों के हृदय आपस में मिल गये। युद्धोपरान्त, युद्ध काल में बने 5 लाख सैनिक, सामान्य जनता में ऐसे मिल गये, जैसे कि कुछ हुआ ही न हो। युद्धोपरान्त मात्र 25 हजार सैनिकों को ही नियमित सेना में रखा गया। एक और सामाजिक परिणाम यह हुआ कि श्रमिकों की स्थिति सुधारने एवं उन्हें शिक्षित करने का भी प्रयास आरम्भ हुआ। इससे अमेरिका में नवीन सामाजिक मूल्यों का विकास हुआ।

गृह युद्ध के पश्चात् अमेरिका में आर्थिक, सामाजिक एवं राजनीतिक क्षेत्र में अभूतपूर्व प्रगति हुई। सही अर्थों में अमेरिका के पुनर्निर्माण का मार्ग प्रशस्त हुआ। इसीलिए कई राष्ट्रवादी लेखकों ने अमेरिका के गृह युद्ध को एक आशीर्वाद माना है।

अपनी प्रगति जांचिए

1. अमेरिकी गृह युद्ध कब आरम्भ हुआ?
   (क) 1850 (ख) 1855
   (ग) 1861 (घ) 1865
2. अमेरिकी गृह युद्ध के समय अमेरिका के राष्ट्रपति थे–
   (क) थॉमस जेफरसन (ख) अब्राहम लिंकन
   (ग) वाशिंगटन (घ) एडम्स
3. अमेरिका के गृह युद्ध का कारण था–
   (क) दासता का प्रश्न (ख) टेक्सॉस के विलय का प्रश्न
   (ग) मैक्सिको का युद्ध (घ) उपर्युक्त सभी।
4. दास प्रथा के समर्थक थे–
   (क) दक्षिण अमेरिका (ख) उत्तर अमेरिका
   (ग) समस्त अमेरिका (घ) इनमें से कोई नहीं

4.3 इटली का एकीकरण तथा जर्मनी का एकीकरण

इन विषयों का अध्ययन निम्न प्रकार से किया जा सकता है।

4.3.1 इटली का एकीकरण

इटली के एकीकरण के मार्ग में प्रमुख बाधाएँ निम्नलिखित थीं–

(1) इटली पर विदेशी प्रभाव–इटली के एकीकरण की सर्वप्रमुख बाधा वहाँ के विभिन्न राज्यों पर विदेशी राजवंशों से सम्बन्धित शासकों का अधिकार होना था। लोम्बार्डी एवं वैनेशिया पर आस्ट्रिया का प्रभुत्व था। मोडेना तथा टस्कनी पर आस्ट्रिया के हैप्सबर्ग वंशीय शासकों का आधिपत्य था। परमा की शासिका मेरी लुइसा नेपोलियन बानेापार्ट की पत्नी एवं आस्ट्रिया की राजकुमारी थी। नेपल्स एवं सिसली पर बूर्बो वंश का शासन था, परन्तु इटली के एकीकरण के मार्ग का सर्वप्रमुख बाधक तत्व आस्ट्रिया था। जिसे कावूर ने भी इटली की स्वतन्त्रता का शत्रु कहा था।

(2) पोप का प्रभुत्व–इटली के एकीकरण की एक और बाधा पोप का इटली पर अत्यधिक प्रभुत्व होना भी था। पोप के प्रभुत्व को लेकर इटली दो भागों में विभक्त था। पोप को यूरोप के अधिकांश शक्तिशाली राष्ट्रों का समर्थन भी प्राप्त था। 1848 ई. की क्रान्ति से प्रभावित होकर मैजिनी एवं गैरीबाल्डी ने 'पोप पायस नवम्' को अपदस्थ कर गणराज्य की स्थापना कर दी थी परन्तु फ्रांस के नेपोलियन तृतीय ने इन्हें परास्त कर 'पोप पायस नवम्' को पुनः पदस्थ कराया। अतः अब निश्चित हो चुका था कि जब तक पोप की सत्ता रहेगी, इटली का एकीकरण असम्भव है।

(3) राष्ट्रीय एकता का अभाव–राष्ट्रीय एकता का अभाव भी इटली के एकीकरण के मार्ग में बाधक था। कटलबी के अनुसार, ''सन् 1815 ई. से 1850 ई. तक का इटली

का इतिहास फूट विदेशी आधिपत्य और प्रत्यक्ष रूप से निरर्थक संघर्ष का इतिहास था।'' यद्यपि नेपोलियन बोनापार्ट ने वहाँ एक संगठित एवं एकस्व शासन स्थापित कर इटलीवासियों में एकता व स्वतंत्रता की भावना का संचार किया था परन्तु वियना कांग्रेस के प्रतिक्रियावादी निर्णयों ने इटली को पुनः प्राचीन विघटन, फूट एवं विदेशी आधिपत्य जैसी स्थिति में पहुँचा दिया। मेटरनिख ने भी कहा था, ''इटली में 'प्रान्त' प्रान्तों के, 'नगर' नगरों के, 'परिवार' परिवारों के तथा 'व्यक्ति' व्यक्तियों के विरोधी हैं।''

(4) मेटरनिख–आस्ट्रिया का प्रधानमंत्री मेटरनिख भी इटली के एकीकरण की एक प्रमुख बाधा था। मेटरनिख राष्ट्रीयता और उदारवाद का कटटर शत्रु था। 1830 ई. की फ्रांसीसी क्रान्ति के कारण जब इटली–वासियों ने पोप के राज्य, परमा एवं मोडेना में विद्रोह का झण्डा बुलन्द किया तो मेटरनिख ने आस्ट्रिया की सेनाएँ भेजकर विद्रोह को कुचल दिया था। अतः मेटरनिख के प्रभाव के कारण इटली में राष्ट्रीयता और उदारवाद का सफल होना असम्भव था। यही कारण था कि 1848 ई. में मेटरनिख के पतन के पश्चात् ही इटली के एकीकरण का मार्ग प्रशस्त हो सका था।

(5) राजनीतिक विविधता–इटली के सभी राज्यों में राजनीतिक विविधता स्पष्टतः देखी जा सकती थी। इटली के उत्तर–पश्चिम भाग में सर्डीनिया पिडमॉण्ट का राज्य था। जहाँ सेवाय वंश के विक्टर इमैन्युअल प्रथम का निरंकुश राजतन्त्रीय शासन था। वह प्राचीन शासन का समर्थक था। उसने फ्रांस के कानून एंव संस्थाओं को समाप्त कर दिया था। उत्तर–पूर्व में लोम्बार्डी तथा वेनेशिया पर आस्ट्रिया का आधिपत्य था। मध्य भाग में पोप का राज्य था जहाँ 'पोप पायस सप्तम्' का रूढ़िवादी शासन था। उत्तर मध्य में स्थित डचीज में परमा राज्य था। जहाँ नेपोलियन बोनापार्ट की पत्नी मेरी लुइसा का शासन था। टस्कनी पर आस्ट्रिया का भी प्रभाव था। दक्षिणी भाग में नेपल्स और सिसली में बूर्बो वंश के फर्डीनेण्ड प्रथम का शासन था। इटली की यह राजनीतिक विविधता भी उसके एकीकरण में बाधक थी।

(6) परस्पर विरोधी विचारधारा–इटली के एकीकरण के पश्चात् वहाँ स्थापित होने वाले शासन के सम्बन्ध में भी विभिन्न विचारधाराएँ विद्यमान थीं। मैजिनी व उसके अनुयायी यहाँ गणतन्त्रात्मक शासन चाहते थे। कुछ लोग रोम के पोप के नेतृत्व में एक संघीय सरकार की स्थापना चाहते थे एवं कुछ लोग सार्डीनिया तथा पिडमॉण्ड के नेतृत्व में संवैधानिक राजतन्त्र चाहते थे। अतः ये परस्पर विरोधी विचारधाराएँ भी इटली के एकीकरण के मार्ग में कुछ अंश तक बाधक थीं।

वियना कांग्रेस द्वारा इटली में नवनिर्मित व्यवस्था निम्नानुसार थी –

राज्य		शासक एवं वंश
1.	परमा	आस्ट्रियन राजकुमारी एवं नेपोलियन बोनापार्ट की पत्नी मेरी लुइसा (हैप्सबर्ग वंश)
2.	मोडेनो	फ्रांसिस चतुर्थ (हैप्सबर्ग वंश)
3.	टस्कनी	फर्डीनेण्ड तृतीय (हैप्सबर्ग वंश)
4.	वेनिश एवं लोम्बार्डी	आस्ट्रिया को प्राप्त राज्य
5.	रोम	पोप पायस सप्तम्
6.	नेपल्स एवं सिसली	फर्डीनेण्ड प्रथम (बूर्बो वंश)

उक्त प्रत्येक राज्य में पुनस्थापित शासकों ने फ्रांस की क्रान्ति (1789 ई.) की व्यवस्थाओं की पूर्णतः उपेक्षा कर प्राचीन शासन के आदर्श एवं सिद्धान्तों को कार्यान्वित किया। वियना कांग्रेस द्वारा प्रतिपादित इटली की इस व्यवस्था में आस्ट्रिया का प्रभाव था ही, परमा, मोडेना एवं टस्कनी के शासक भी आस्ट्रिया से निर्देश प्राप्त करते थे। नेपल्स के फर्डीनेण्ड ने तो एक सन्धि द्वारा यह वचन ही दे दिया था कि वह ऐसा कोई प्रशासनिक कार्य नहीं करेगा जो आस्ट्रिया को मान्य न हो। अतः मैजिनी ने उचित ही कहा था कि ''वियना कांग्रेस ने कलम के झटके से हमारी स्वतन्त्रता, सुधारों, आशाओं को समाप्त कर दिया जो पुराने शासन को बदलने की भावना से उदित हुए है।'' इटली की इस विभाजित व्यवस्था पर शोक प्रकट करते हुए ही मैजिनी ने लिखा था कि ''हमारा न कोई विशेष झण्डा है, न कोई राजनीतिक नाम, न तो यूरोपीय राष्ट्रों के बीच हमारा कोई स्थान है, न कोई सम्मिलित बाजार, हम आठ राज्यों में विभक्त हैं।''

कई शताब्दियों तक इटली एक भौगोलिक अभिव्यक्ति मात्र रहा, परन्तु 1789 ई. में फ्रांसीसी क्रान्ति के बाद नेपोलियन बोनापार्ट ने स्थानीय जन समूह में स्वतन्त्रता, समानता तथा बन्धुत्व की अलख जगाते हुए उसे पुनः 3 राज्यों में संगठित कर एक गणतन्त्र की स्थापना की परन्तु वियना कांग्रेस (1815) ने उसे पुनः 8 राज्यों मे विभिक्त कर विभिन्न राजवंशों के अधीन किया एवं आस्ट्रिया ने वहाँ अपने हितों के कारण प्रत्येक राष्ट्रीय एवं उदारवादी विचारधाराओं को दबाया।

एकीकरण के प्रारम्भिक असफल प्रयास

(i) कार्बोनरी–फिलिपो वनारोयटी द्वारा नेपल्स में स्थापित यह एक गुप्त संस्था थी। इटली के कुछ देशभक्त एंव लोकतन्त्र समर्थक स्वतन्त्रता की प्राप्ति हेतु इन विदेशी शासकों का जुआ उतारकर विदेशी शासकों से मुक्ति चाहते थे। फलस्वरूप कुछ गुप्त संस्थाओं में से एक, कार्बोनरी की स्थापना हुई परन्तु उद्देश्यों में एकरूपता, सूत्रबद्धता तथा स्पष्ट एवं प्रभावशाली नेतृत्व के अभाव में कार्बोनरी असफल सिद्ध हुई।

(ii) 1820 के स्पेन विद्रोह की लहर के चलते जनता ने नेपल्स पीडमाण्ड लोम्बार्डी के शासकों को उखाड़ फेंका परन्तु मेटरनिख ने इन्हें पुनस्थापित किया।

(iii) 1830 ई. की फ्रांसीसी क्रान्ति की लहर ने परमा, मोडेना को प्रभावित किया, किन्तु यहाँ भी आस्ट्रिया के मेटरनिख, के हस्तक्षेप ने यथास्थिति बहाल की।

(iv) यंग इटली–इन्हीं असफलताओं के चलते मैजिनी का आशीर्वाद उभरकर सामने आया। कार्बोनरी से विश्वास उठने के बाद उसने 1831 ई. में यंग इटली की स्थापना की। जिसका उद्देश्य राष्ट्रीयता एवं गणतन्त्र के विचारों का प्रसार करना था, किन्तु बिना विदेशी सहायता के मैजिनी का कोरा आदर्शवाद एकीकरण के लिए पर्याप्त न था।

इस समय इटली में मुख्यतः 3 विचारधाराएँ कार्यरत थीं–

1. **गणतन्त्रवादी**–मैजिनी व उसके अनुयायी इस विचारधारा के समर्थक थे।
2. **संघवादी**–पोप एवं जियोवार्डी इस विचारधारा में विश्वास करते थे।
3. **संवैधानिक राजतन्त्र**–सेवाय वंश संवैधानिक राजतन्त्र चाहता था।

1848 ई. की फ्रांस की क्रान्ति– गणतन्त्रवादी एवं संघवादी कुछ अधिक न कर सके। तब 1848 ई. की फ्रांसीसी क्रान्ति के बाद मेटरनिख का पतन हुआ, यद्यपि आपसी फूट के कारण चार्ल्स एल्बर्ट नोबारा में आस्ट्रिया से पराजित हुआ तथापि स्वतन्त्रता संग्राम का नेतृत्व पीडमाण्ट के सेवाय राजवंश को प्राप्त हुआ।

विक्टर इमैन्युअल व कावूर का उदय–नोबारा की हार के बाद चार्ल्स एल्बर्ट ने सिंहासन त्याग दिया। उसके बाद विक्टर इमैन्युअल द्वितीय पीडमण्ट का शासक (1849) बना। वह एक वीर सैनिक, सच्चा देशभक्त एवं ईमानदार शासक था। 'यथा राजा तथा मन्त्री' के रूप में उसे काउंट कैमिलो द कावूर जैसे कूटनीतिज्ञ व दूरदर्शी व्यक्ति की सेवाएँ (1850) प्राप्त हुईं।

मैजिनी के काव्यात्मक एवं कल्पनात्मक विचारों की तुलना में कावूर व्यावहारिक तथा क्रियात्मक बुद्धि का था। उसके उद्देश्य निम्न थे–

1. सार्डीनिया पीडमाण्ड के राजतन्त्र के अन्तर्गत इटली का एकीकरण पूर्ण करना।
2. इटली को आस्ट्रिया के प्रभाव से मुक्त करना
3. इटली की स्वतन्त्रता के लिए यूरोपीय देशों की मित्रता और सहयोग प्राप्त करना।

विदेश नीति के विभिन्न चरण

(i) क्रीमिया युद्ध–क्रीमिया युद्ध में कावूर ने इंग्लैंड और फ्रांस को सहयोग किया, यह एक अवसरवादी कदम था, परन्तु इसके कारण ही क्रीमिया युद्ध के बाद पेरिस के सम्मेलन में इटली को भाग लेने का सुअवसर मिला। इस सम्मेलन में कावूर ने इटली के प्रश्न को यूरोपीय प्रश्न बनाकर अन्य देशों की सहानुभूति प्राप्त की अतः कहा जाता है– ''क्रीमिया के कीचड़ से इटली का नवनिर्माण हुआ।

(ii) प्लम्बियर्स समझौता, 1858 ई.–आस्ट्रिया के एकाधिकार को चुनौती देने के लिए कावूर ने फ्रांस (नेपोलियन तृतीय) से प्लम्बियर्स का समझौता किया। जिसके अनुसार–

(अ) नेपोलियन ने सार्डीनिया–आस्ट्रिया युद्ध में, कावूर को सैनिक मदद का आश्वासन दिया।

(ब) पीडमाण्ड को लोम्बार्डी और वेनेशिया प्राप्त होने का आश्वासन मिला।

(स) बदले में नीस एवं सेवाय फ्रांस को मिलेंगे।

सार्डीनिया–आस्ट्रिया युद्ध, 1858 ई.–फ्रांसीसी सेना की सहायता से आस्ट्रिया को परास्त करते हुए सार्डीनिया ने लोम्बार्डी पर अधिकार किया। इससे पूर्व कि वेनेशिया पर सार्डीनिया का अधिकार हो, नेपोलियन तृतीय ने अपनी सैन्य मदद वापस लेते हुए आस्ट्रिया के साथ 11 जुलाई, 1859 ई. को विलाफ्रेंका की सन्धि की। इसके अनुसार लोम्बार्डी पर पिडमाण्ट का एवं वेनेशिया पर आस्ट्रिया का अधिकार माना गया। कावूर इससे नाराज हुआ, वह यह युद्ध जारी रखना चाहता था परन्तु विक्टर इमेन्युअल इस समय कावूर से अधिक बुद्धिमान सिद्ध हुआ। उसने आवेश में कोई निर्णय नहीं लिया। नाराज होकर कावूर ने त्यागपत्र दे दिया। उधर विक्टर ने ''ज्यूरिख सन्धि' कर विलाफ्रेंका सन्धि की पुष्टि की।

मध्य इटली का एकीकरण–इस समय मध्य इटली के विभिन्न राज्यों परमा, मोडेना, टस्कनी तथा पोप के राज्य (बुलांग्ना और रोमाग्ना) में राष्ट्रीय भावनाएँ प्रबल हो गयी थीं। अतः जनता ने शासको के विरुद्ध विद्रोह कर उन्हें प्रदेशों से निष्कासित किया एवं मार्च 1860 ई. में जनमत संग्रह द्वारा अपने प्रदेशों का समावेश सार्डीनिया के राज्य में करने की घोषणा की। कावूर ने अपना त्यागपत्र वापस ले लिया था एवं उसने कूटनीति का प्रयोग कर नीस और सेवाय के प्रदेश नेपोलियन तृतीय को देकर इन प्रदेशों को इटली में मिलाने की अनुमति प्राप्त की।

गैरीबाल्डी का योगदान एवं 'नेपल्स, 'सिसली' का इटली में एकीकरण–1821–1860 ई. तक नेपल्स व सिसली का इतिहास अत्याचारपूर्ण निरंकुशता का था। अतः वहाँ के राष्ट्रवादियों ने एक महान क्रान्तिकारी नेता गैरीबाल्डी से, निरंकुश शासक फ्रांसिस द्वितीय के विरुद्ध सहायता की माँग की। गैरीबाल्डी स्वतन्त्रता का पुजारी था और लालकुर्ती दल का संरक्षक था। उसने 5 मई, 1860 ई. को स्वयं सेवकों के साथ सिसली पर अधिकार किया एवं सितम्बर में नेपल्स पर भी अधिकार कर लिया था। अब वह रोम पर आक्रमण की योजना बनाने लगा।

गैरीबाल्डी की योजना ने कावूर को चिन्तित कर दिया। नेपोलियन तृतीय से युद्ध की सम्भावनाओं को वह टालना चाहता था। अतएव विक्टर इमेन्युनल ने उसके आग्रह पर रोम को छोड़कर उसके आस–पास के प्रदेशों पर अधिकार कर लिया।

अक्टूबर 1860 में सिसली और नेपल्स की जनता ने जनमत संग्रह के द्वारा पिडमाण्ट में विलय का निर्णय किया। इसके पश्चात् विक्टर इमेन्युअल नेपल्स में प्रविष्ट हुआ। गैरीबाल्डी ने अपने जीते हुए प्रदेश सहर्ष विक्टर इमेन्युअल को सौप दिये एवं बिना कोई पुरस्कार प्राप्त किये अपने द्वीप कैपेश चला गया।

17 मार्च, 1861 ई. को विक्टर इमेन्युनल द्वितीय संयुक्त इटली का सम्राट घोषित हुआ। ट्यूरिन (कावूर का जन्म स्थान) इसकी राजधानी बनी।

कावूर की मृत्यु–इटली के नवनिर्माण में वेनेशिया और रोम मिलना ही शेष थे, कि इसी बीच जून 1861 में कावूर की मुत्यु हो गयी। मृत्यु पूर्व उसने कहा था, "Italy is made all safe." (इटली सर्वतः सुरक्षित बन चुका है)

वेनेशिया पर अधिकार–1866 ई. में आस्ट्रिया और प्रशा के मध्य युद्ध हुआ तो बिस्मार्क ने इटली के शासक से आस्ट्रिया के विरुद्ध सहायता माँगी एवं बदले में वेनेशिया दिलवाने का आश्वासन दिया। प्रशा द्वारा सैडोवा के युद्ध में आस्ट्रिया पराजित हुआ एवं प्राग की सन्धि के अनुसार इटली को वेनेशिया प्राप्त हुआ।

रोम पर अधिकार–रोम पर अधिकार करने में सबसे बड़ी बाधा फ्रांस था। 1870 ई. में फ्रांस प्रशा का युद्ध आरम्भ होने पर नेपोलियन तृतीय को रोम से अपनी सेनाएँ बुलानी पड़ीं। सीडान में नेपोलियन तृतीय की पराजय का समाचार पाते ही इटली की सेनाओं ने रोम पर आक्रमण कर उस पर 20 सितम्बर 1870 ई. को अधिकार कर लिया।

1856 ई. में कावूर ने कहा था, ''मुझे विश्वास है कि इटली एक एकीकृत राष्ट्र बनेगा और रोम उसकी राजधानी बनेगी।''

("I am confident that Italy will become a single state and that Rome will be her capital.")

अतः उसका स्वप्न पूरा हुआ और रोम इटली की राजधानी बना। देवेन्द्र सिंह चौहान ने लिखा है कि –

''इस प्रकार एक दीर्घकालीन संघर्ष के बाद मैजिनी के नैतिक बल, गैरीबाल्डी की तलवार, कावूर की कूटनीति एवं विक्टर इमेन्युअल की सूझबूझ और व्यावहारिक बुद्धि तथा असंख्य देशभक्तों के बलिदान से इटली एकीकरण का महायज्ञ पूर्ण हुआ।''

4.3.2 जर्मनी का एकीकरण

वियना कांग्रेस 1815 ई. के प्रतिक्रियावादियों ने नेपोलियन बोनापार्ट द्वारा निर्मित राइन राज्य संघ की (Loose Confederation of the Rhine) की व्यवस्था को भंग कर, 38 जर्मन राज्यों का एक ढीला–सा परिसंघ (Loose Confederation of 38 German States) बना दिया। 1817 ई. में 39वाँ राज्य हेस्सी होमवर्ग भी इसमें शामिल हो गया। इन राज्यों के प्रशासन के लिए एक संघीय संसद (Federal Diet) का गठन किया गया। आस्ट्रिया के शासक को स्थायी रूप से इस संघीय संसद का अध्यक्ष बना दिया एवं उप–प्रधान प्रशा को बनाया गया। संघीय संसद के सदस्य जनता के प्रतिनिधि न होकर सम्बन्धित राज्य के शासक द्वारा मनोनीत सदस्य होते थे। इस प्रकार वियना कांग्रेस द्वारा पुनः जर्मनी राज्यों पर पुराने तथा प्रतिक्रियावादी शासकों का शासन स्थापित कर दिया। अतः नेपोलियन द्वारा जर्मनी के एकीकरण हेतु प्रशस्त मार्ग इटली की तरह ही वियना कांग्रेस के द्वारा अवरुद्ध कर दिया गया।

जर्मनी के एकीकरण के मार्ग की प्रमुख बाधाएँ

इटली की तरह ही जर्मनी के एकीकरण के मार्ग में कई बाधाएँ थीं जिनका विवरण निम्न प्रकार है–

(1) एकता का अभाव–जर्मनी के 39 राज्यों के ढीले परिसंघ के सभी राज्यों में किसी भी प्रकार की एकता का पूर्ण अभाव था। उक्त सभी राज्यों में धार्मिक, राजनीतिक, सामाजिक एवं आर्थिक असमानताएँ विद्यमान थीं।

(2) आस्ट्रिया का हस्तक्षेप–वियना व्यवस्था द्वारा जर्मनी की संघीय संसद का अध्यक्ष आस्ट्रिया को बनाया गया। इस समय आस्ट्रिया का प्रधानमंत्री मेटरनिख एक घोर प्रतिक्रियावादी शासक था। जर्मनी की राजनीति पर आस्ट्रिया पूर्णतः हावी था, वह कदापि नहीं चाहता था कि जर्मन रियासतें कभी एकत्रित हों। प्रशा के सम्राट ने जब समस्त जर्मनी परिसंघ के राज्यों को एकत्र कर एकीकरण के प्रयास किये तो आस्ट्रिया ने इसका प्रबल विरोध किया। जर्मनी पर अपना वर्चस्व स्थापित रखने एवं एकीकरण के किसी भी प्रयास को निष्फल करने के लिए आस्ट्रिया ने घोर प्रतिक्रियावादी नीति अपनायी।

(3) कार्ल्सवाद का अध्यादेश (1819 ई.)–जर्मनी में किसी भी प्रकार की राष्ट्रीयता एवं उदारवादी विचारधारा के प्रसार को रोकने के लिए मेटरनिख ने प्रशा के सम्राट फ्रैडरिक तृतीय के सहयोग से 1819 ई. में जर्मन संघीय संसद की बैठक कार्ल्सवाद (Carlsbad) में आयोजित की। इस बैठक में राष्ट्रीयता की भावनाओं के दमन हेतु कुछ दमनाकारी कानून पारित किये जिन्हें कार्ल्सवाद का अध्यादेश कहा जाता है। इस अध्यादेशों में व्यवस्था की गयी कि–

(i) जर्मन परिसंघ का कोई भी राज्य पृथक् संविधान का निर्माण नहीं करेगा।

(ii) विश्वविद्यालयों में विद्यार्थियों एवं प्राध्यापकों की गतिविधियों पर कड़ी नजर रखने हेतु एक सरकारी प्रतिनिधि नियुक्त किया जायेगा।

(iii) प्रेस एवं समाचार–पत्रों पर भी नियन्त्रण स्थापित किया गया।

हेजन के अनुसार, ''कार्ल्सवाद अध्यादेश मध्य यूरोप के इतिहास में महत्वपूर्ण परिवर्तन के द्योतक थे। उन्होंने आस्ट्रिया व जर्मनी में मेटरनिख के प्रभुत्व को सिद्ध कर दिया।''

(4) एकीकरण के स्वरूप में मतभेद–इटली की तरह ही जर्मनी में भी एकीकरण के स्वरूप को लेकर भी मतभेद व्याप्त थे। कुछ राज्य प्रशा के नेतृत्व में जर्मनी का एकीकरण चाहते थे, तो कुछ सामन्तवादी स्वरूप के पोषक थे। कुछ लोग हैप्सबर्ग वंश के अधीन जर्मन साम्राज्य का संगठन चाहते थे तो कुछ लोग वहाँ गणतन्त्रात्मक व्यवस्था चाहते थे। यही कारण था कि जर्मनी के एकीकरण की गति अत्यन्त मन्द रही।

(5) विदेशी शक्तियों की रुचि–फ्रांस एवं इंग्लैंड जैसी विदेशी यूरोपीय शक्तियाँ भी जर्मनी के मामलों में रुचि रखती थीं। फ्रांस, दक्षिण जर्मनी के रोमन कैथोलिकों में रुचि रखता था। इंग्लैंड की रुचि हनोवर में थी, जबकि आस्ट्रिया वहाँ हैप्सबर्ग राजवंश की प्रधानता बनाये रखने हेतु दृढ़ प्रतिज्ञ था।

(6) प्रभुत्व को लेकर आस्ट्रिया एवं प्रशा के मध्य वैमनस्य–जर्मनी में प्रभुत्व एवं नेतृत्व को लेकर आस्ट्रिया एवं प्रशा के मध्य वैमनस्य था। जहाँ प्रशा अपने नेतृत्व में जर्मनी को राष्ट्रीयता के आधार पर संगठित करना चाहता था, वहीं आस्ट्रिया राष्ट्रीयता की भावनाओं के दमन हेतु जर्मनी में अपना प्रभुत्व बरकरार रखना चाहता था। प्रशा एवं आस्ट्रिया के इस पारस्परिक वैमनस्य ने भी एकीकरण के मार्ग को काफी समय तक अवरुद्ध किया।

जर्मनी के एकीकरण में सहायक तत्व

जर्मनी के एकीकरण के मार्ग में अत्यधिक बाधाओं के कारण 1815 ई. से 1850 ई. तक इसके एकीकरण के लिए किये गये प्रयासों की गति काफी मन्द रही परन्तु 1815–1850 ई. के मध्य ही कुछ ऐसी प्रवृत्तियों का विकास भी हुआ जिन्होंने जर्मनी के एकीकरण के मार्ग को प्रशस्त किया। जर्मनी के एकीकरण में सहायक तत्व निम्नलिखित हैं–

(1) जर्मनी में बौद्धिक जागृति–फ्रांसीसी क्रान्ति (1789 ई.) के पश्चात् जर्मनी में भी विभिन्न बुद्धिजीवी साहित्यकारों, लेखकों, नाट्यकारों, कवियों, प्राध्यापकों, दार्शनिकों एवं इतिहासकारों इत्यादि ने जर्मन जनता की राष्ट्रीय भावना को जाग्रत करने का हर सम्भव प्रयास किया। कवियों ने देश की महानता एवं गौरव के गीत गाये, नाट्यकारों एवं इतिहासकारों ने देश के प्राचीन गौरव पर प्रकाश डाला।

(2) आर्थिक एकता : जालवरीन–प्रसिद्ध अर्थशास्त्री फ्रेडरिक लिस्ट की विचारधारा से प्रभावित होकर प्रशा ने 1819 में श्वार्जबर्ग सोंदर शोसन (Schwarzburg Sonder Shausen) के छोटे–से राज्य से सीमा शुल्क सम्बन्धी सन्धि कर 'जालवरीन' या सीमा शुल्क संघ का आरम्भ किया। प्रारम्भ में कुछ जर्मन राज्यों ने जालवरीन का विरोध किया परन्तु अन्ततः 1834 ई. में सभी जर्मन राज्य अपने आर्थिक हितों के मद्देनजर जालवरीन में शामिल हो गये और इस प्रकार प्रशा ने आर्थिक रूप से जालवरीन के

माध्यम से जर्मन राज्यों का आर्थिक नेतृत्व संभाला। इस आर्थिक एकता की भावना ने राजनीतिक एकता का भी मार्ग प्रशस्त किया।

(3) विलियम प्रथम (1861–1888 ई.) का शासन–1858 ई. में फ्रेडरिक विलियम चतुर्थ का मस्तिष्क विकृत हो जाने के कारण, समस्त सत्ता उसके भाई विलियम के हाथ में आ गयी। फ्रेडरिक विलियम की तुलना में उसका भाई दृढ़ निश्चयी था तथा सुलझे हुए विचार वाला था। इससे जर्मनी के उदारवादियों में नवचेतना का संचार हुआ। उसको पूर्ण विश्वास था, कि जर्मनी का एकीकरण प्रशा के नेतृत्व में ही सम्भव है। उदारवाद का विरोधी होने के बावजूद जर्मनी के एकीकरण की खातिर उसने उदारवादियों को सहयोग किया। उसके बारे में वान सिबेल ने लिखा है, ''उसमें ऐसी अनोखी प्रतिभा थी जिससे वह समझ लेता था, कि क्या प्राप्य है और क्या अप्राप्य। उसके विचार एवं उद्देश्य स्पष्ट थे। उसमें योग्य व्यक्तियों को परखने की भी शक्ति थी।''

(4) बिस्मार्क का उदय –आटो एडुअर्ड लियोपोल्ड वान बिस्मार्क शानहासन (Otto Eduard Leopold Von Bismarck Schonhansen) का जन्म ब्रेंडनबर्ग के एक कुलीन परिवार में 1 अप्रैल, 1815 ई. को हुआ था। बचपन से ही बिस्मार्क को घुड़सवारी शिकार, निशानेबाजी इत्यादि का अत्यन्त शौक था। गार्टिजन और बर्लिन विश्वविद्यालयों में शिक्षा प्राप्त कर वह प्रशा के न्याय विभाग में नौकरी करने लगा। 1839 ई. में माँ के देहान्त के पश्चात् नौकरी से त्यागपत्र देकर उसने अपना समय अपनी पोमरेनिया स्थित नीपहाफ की जागीर का प्रबंध कार्य संभालने में लगाया। 1847 ई. में जोहाना पुतकेमर से विवाहोपरान्त उसने प्रशा की राजनीति में प्रवेश किया। वह फ्रेडरिक विलियम द्वारा निर्मित 'संयुक्त प्रशियन डायर' का निर्वाचित सदस्य बना। कालान्तर में बिस्मार्क बर्लिन की राष्ट्रीय असेम्बली, संविधान सभा एवं एर्फर्ट (Erfurt) की संयुक्त संसद का सदस्य भी बना।

इसी दौरान बिस्मार्क ने पूर्ण गहराई के साथ जर्मन और यूरोपीय राजनय का ज्ञान प्राप्त किया। यहीं पर आस्ट्रिया से सम्बन्धित उसके विचारों में भी परिवर्तन आया। बिस्मार्क को अब यह ज्ञात हो गया कि आस्ट्रिया किसी भी कीमत पर प्रशा को अपने समकक्ष दर्जा देने को तैयार नहीं है। अतः वह अब स्पष्टतः यह भी समझ गया कि आस्ट्रिया की शक्ति को पूर्णतया नष्ट किये बिना, प्रशा के नेतृत्व में जर्मनी का एकीकरण सम्भव नहीं है। 1859 में जब फ्रांस और इटली ने मिलकर आस्ट्रिया के विरुद्ध युद्ध छेड़ा तो बिस्मार्क ने प्रशा के सम्राट को तटस्थ रहने की सलाह दी थी। 1859 ई. में ही जब बिस्मार्क को सेण्टपीटर्सबर्ग (रूस) में राजदूत बनाकर भेजा गया, तो उसने रूस के जार अलेक्जेंडर द्वितीय के साथ व्यक्तिगत मित्रता स्थापित की और भविष्य के लिए रूस–प्रशा मैत्री का आधार स्थापित किया। 1862 ई. में वह फ्रांस का राजदूत बना तो बिस्मार्क को नेपोलियन III के विचारों को समझने का अवसर मिला एवं इसी बीच वह इंग्लैंड के पार्मस्टन एवं डिजरैली से भी मिला।

बिस्मार्क द्वारा जर्मनी के एकीकरण के प्रयास

प्रधानमंत्री बनने के पश्चात् बिस्मार्क का प्रमुख उद्देश्य प्रशा को शक्तिशाली बनाकर जर्मन संघ से आस्ट्रिया को बाहर निकालना एवं जर्मनी में उसके प्रभाव को समाप्त कर प्रशा के नेतृत्व में जर्मनी का एकीकरण सम्पन्न कराना था।

टिप्पणी

जर्मनी के एकीकरण के लिए बिस्मार्क ने 'रक्त एवं लौह' की नीति का अवलम्बन करते हुए मात्र 8 वर्षों (1862–70 ई.) में अधोलिखित 3 युद्धों के माध्यम से जर्मनी के एकीकरण का महायज्ञ सम्पन्न कर दिया।

(क) श्लेसविग तथा हॉल्सटाइन की समस्या एवं डेनमार्क से युद्ध : एकीकरण का प्रथम चरण–श्लेसविंग एवं हॉल्सटाइन की डचियाँ डेनमार्क व जर्मनी के मध्य स्थित थीं। हॉल्सटाइन के अधिकांश निवासी जर्मन थे एवं श्लेसविंग में जर्मन व डेन दोनों लोग थे, परन्तु बहुमत जर्मनों का ही था। जर्मनी जहाँ इन डचियों का विलय जर्मनी में चाहते थे, वहीं डेनिश लोग इनका विलय डेनमार्क के साथ चाहते थे। 1760 ई. में डेनमार्क का राजा इनका ड्यूक बन गया था 1852 ई. की लन्दन सन्धि द्वारा इन दोनों डचियों के डेनमार्क के साथ की पुष्टि कर दी गयी थी। 1863 ई. में डेनमार्क के राजा फ्रेडरिक सप्तम् की मृत्यु के पश्चात् 'प्रिंस किश्चयन' नवाँ सम्राट बना। किश्चयन नवाँ ने एक नये संविधान द्वारा श्लेसविंग को डेनमार्क का अभिन्न अंग घोषित कर दिया। 1852 ई. की लन्दन की संधि के पूर्व इन डचियों पर डेनमार्क के राजा के अधीन ड्यूक आफ आगस्टन वर्ग की एक अस्थायी सरकार स्थापित थी। 1863 ई. मे डचियों में डेनमार्क शासक के विरुद्ध उत्तेजना को देखते हुए एक बार पुनः ड्यूक आगस्टन वर्ग ने डचियों पर अपना दावा प्रस्तुत किया।

बिस्मार्क की कूटनीति–बिस्मार्क श्लेसविंग तथा हॉलस्टाउन की समस्या का उपयोग प्रशा के लाभ हेतु करना चाहता था। बिस्मार्क न तो इन डचियों पर डेनमार्क का आधिपत्य चाहता था और न ही वह इन डचियों पर 'ड्यूक आफ आगस्टन' वर्ग के प्रभाव को स्थापित होते देखना चाहता था। इन डचियों की भौगोलिक स्थिति एवं सामरिक महत्व के मद्देनजर बिस्मार्क नौ सेना के विकास हेतु इन डचियों पर अपना प्रभाव स्थापित करना चाहता था।

बिस्मार्क ने अपने इस लक्ष्य की प्राप्ति हेतु कूटनीति अपनाते हुए आस्ट्रिया को अपने साथ मिला लिया और दोनों ने मिलकर डेनमार्क शासक को 18 घण्टे के भीतर उस संविधान को वापस लेने की चेतावनी दे दी। जिसके द्वारा उक्त डचियों को डेनमार्क का अभिन्न अंग बनाया था। ब्रिटेन से सहयोग प्राप्ति की आशा में डेनमार्क शासक ने इस चुनौती की ओर कोई ध्यान नहीं दिया। फलतः फरवरी, 1864 ई. में आस्ट्रिया एवं प्रशा ने डेनमार्क पर आक्रमण कर उसे पराजित कर दिया। वियना सन्धि (30 अक्टूबर, 1864 ई.) के द्वारा डेनमार्क ने इन दोनों डचियों को प्रशा एवं आस्ट्रिया को सौंप दिया। साथ ही डेनमार्क ने यह भी वचन दिया कि आस्ट्रिया एवं प्रशा श्लेवसिंग एवं हॉलस्टाइन में जो भी व्यवस्था स्थापित करेंगे, उसे वह स्वीकार्य होगी।

आस्ट्रिया को इन डचियों में किसी भी प्रकार की कोई रुचि न थी, अतः वह इन डचियों को आगस्टन वर्ग के ड्यूक फ्रेडरिक को सौंपना चाहते थे परन्तु बिस्मार्क अपना स्वयं का आधिपत्य इन डचियों पर चाहता था। इन परिस्थितियों में आस्ट्रिया एवं प्रशा के मध्य तनाव की स्थिति निर्मित हुई। अतः दोनों के मध्य गेस्टाइन का समझौता सम्पन्न हुआ।

गेस्टाइन का समझौता (14 अगस्त, 1865 ई.)–आस्ट्रियन सम्राट फ्रांसिस जोसेफ अपनी तंग आर्थिक स्थिति के मद्देनजर युद्ध टालना चाहता था अतः उसने प्रशा के

सम्राट विलियम प्रथम के साथ गेस्टाइन नामक स्थान पर 14 अगस्त, 1865 ई. को समझौता किया। इस समझौते की प्रमुख शर्तें इस प्रकार थीं–

(1) हॉलस्टाइन पर आस्ट्रिया का तथा श्वेसविंग पर प्रशा का अधिकार मान लिया गया।

(2) कील के बन्दरगाह पर आस्ट्रिया और प्रशा का संयुक्त अधिकार स्वीकार किया गया।

(3) प्रशा को समुद्र तक नहर खोदने का अधिकार प्राप्त हुआ।

(4) छोटी डची लावनवर्ग, प्रशा ने आस्ट्रिया से खरीद ली।

गेस्टाइन का यह समझौता बिस्मार्क की एक महान कूटनीतिक विजय थी। लावनवर्ग पर अधिकार हो जाने से कील बन्दरगाह पर प्रशा का नियन्त्रण अधिक दृढ़ हो गया। बिस्मार्क ने चालाकी के साथ आस्ट्रिया को हॉलस्टाइन दिया था। जो आस्ट्रिया से काफी दूर था एवं चारों ओर प्रशा के राज्य से घिरा हुआ था। गेस्टाइन समझौता सम्पन्न कर बिस्मार्क ने इन डचियों पर ड्यूक ऑफ ऑगस्टन वर्ग का अधिकार हमेशा के लिए समाप्त कर दिया। समझौते के पश्चात् आश्चर्य व्यक्त करते हुए बिस्मार्क ने कहा था कि ''मुझे विश्वास नहीं था कि ऐसा भी कोई आस्ट्रियन राजनायिक होगा, जो इस प्रकार के समझौते पर हस्ताक्षर करेगा।''

बिस्मार्क यह भी भली–भाँति जानता था कि आस्ट्रिया को गेस्टाइन समझौते की भूल जल्दी ही समझ में निश्चित आ जायेगी। उसने स्वयं भी कहा था कि ''इस समझौते के द्वारा हमने दरार को कागज से ढँक दिया है।''

बिस्मार्क की कूटनीतिक तैयारियाँ–बिस्मार्क भली–भाँति जानता था कि गेस्टाइन की भूल समझ में आने के उपरान्त आस्ट्रिया के साथ उसका युद्ध अनिवार्य है। अतः बिस्मार्क ने इस सम्भावित युद्ध के मद्देनजर निम्नलिखित कूटनीतिक तैयारियाँ आरम्भ कर दीं–

(1) राइन प्रदेश के कुछ भागों का लालच देकर फ्रांस की तटस्थता प्राप्त की।

(2) इटली के साथ एक सामरिक सन्धि की जिसके तहत आस्ट्रिया के साथ युद्ध की स्थिति में मदद करने के बदले में इटली को वैनेशिया दिलाने का आश्वासन दिया।

(3) पौलेण्ड के मामले में रूस का साथ देकर उसकी मित्रता भी हासिल की।

(4) ब्रिटेन की तटस्थता की नीति से तो वह परिचित था ही।

इस प्रकार समस्त यूरोप ने प्रथम बार बिस्मार्क के इस चातुर्य को देखा था और वह अब बिस्मार्क की कूटनीतिक योग्यता का लोहा मान गया। समस्त जर्मन की जनता पर उसकी धाक जम गयी और उसने जर्मनी के एकीकरण का प्रथम चरण आस्ट्रिया को कूटनीतिक मात देकर सम्पन्न किया।

(ख) जर्मनी के एकीकरण का द्वितीय चरण : आस्ट्रिया–प्रशा युद्ध एवं प्राग सन्धि

गेस्टाइन समझौते के पश्चात् आस्ट्रिया के साथ युद्ध की सम्भावनाओं को देखते हुए बिस्मार्क कूटनीतिक तैयारियाँ पूर्ण कर चुका था। रूस, फ्रांस एवं इटली को वह अपने पक्ष में कर आस्ट्रिया को मित्रहीन बनाने के हर सम्भव प्रयास कर चुका था। मोल्तके

के सेनापतित्व में बिस्मार्क की सेना आस्ट्रिया से दो–दो हाथ करने के लिए पूर्णतः तैयार थी। विलियम प्रथम युद्ध के पक्ष में नहीं था अतः बिस्मार्क ने उसे समझाया कि ''आस्ट्रिया प्रशा का कट्टर शत्रु है और उससे युद्ध भी अवश्यम्भावी है। अभी तो युद्ध की स्थिति में परिस्थितियाँ पूर्णतः हमारे अनुकूल हैं परन्तु यदि यह अवश्यम्भावी युद्ध, बाद में हुआ तो स्थितियाँ उतनी अनुकूल नहीं रहेंगी।'' अन्ततोगत्वा विलियम प्रथम युद्ध हेतु तैयार हो गया।

आन्तरिक एवं बाह्य परिस्थितियों को अपने अनुकूल बनाने के पश्चात् बिस्मार्क युद्ध के बहाने की तलाश में लग गया, जोकि उसे शीघ्र ही प्राप्त हो गया। आस्ट्रिया ने श्लेसविंग और हॉलस्टाइन के प्रश्न को हल करने हेतु जर्मनी की संघीय संसद आमंत्रित की। इस संसद द्वारा आस्ट्रिया की शह पर निर्णय किया गया कि डेनमार्क से प्राप्त तीनों प्रदेश ड्यूक ऑफ ऑगस्टनबर्ग को सौंप दिये जायें। बिस्मार्क ने इसे गेस्टाइन समझौते का उल्लंघन करार दिया और उसने घोषणा की कि अब वह भी गेस्टाइन समझौते से स्वतन्त्र है। बिस्मार्क ने प्रशा की सेनाओं द्वारा हॉलस्टाइन से आस्ट्रिया की सेनाओं को खदेड़ दिया। आस्ट्रिया के कहने पर, जब जर्मन परिसंघ ने बिस्मार्क के इस कार्य को अवैध करार दिया तो बिस्मार्क ने परिसंघ को ही अवैध करार देते हुए जर्मन परिसंघ (German Confederation) को समाप्त करने की घोषणा कर दी।

सात सप्ताहों का युद्ध–जर्मन परिसंघ को समाप्त करने के साथ ही बिस्मार्क ने 16 जून, 1866 ई. को आस्ट्रिया के विरुद्ध युद्ध की भी घोषणा कर दी। जो कि सात सप्ताह तक चला। इसीलिए इसे सात सप्ताह का युद्ध कहा जाता है। कस्टोजा एवं लीसा के युद्धों के पश्चात् सेडोवा के निर्णायक युद्ध में 3 जुलाई, 1866 ई. को आस्ट्रिया को पूर्णतः पराजित कर दिया गया। प्रशा की इस गौरवपूर्ण सफलता का श्रेय उसके योग्य सेनापति जनरल वान मोल्तके को जाता है। आस्ट्रिया के साथ–साथ उसके सहयोगियों बवेरिया, सैक्सनी, हनोवर, हेसे कासेल एवं बेडन आदि को भी प्रशा द्वारा परास्त कर दिया गया था। हेजन के अनुसार, ''यह युद्ध इतिहास में सबसे कम अवधि के युद्धों में से एक है जो अत्यधिक निर्णायक था तथा जिसका परिणाम सबसे चमत्कारपूर्ण था।''

आस्ट्रिया की खस्ता हालत को देखते हुए प्रशा सम्राट विलियम प्रथम तो आस्ट्रिया की राजधानी वियना पर अधिकार करना चाहता था परन्तु बिस्मार्क ने अपनी दूरदर्शी नीति के अन्तर्गत इन शब्दों के साथ विलियम को रोक दिया कि ''युद्ध का निर्णय हो गया है, अब हमें पुनः आस्ट्रिया के साथ उदारतापूर्ण सम्बन्ध बनाने होंगे।'' और अपनी इसी कूटनीति द्वारा बिस्मार्क ने आस्ट्रिया को परास्त करने के बावजूद आगामी समय में आस्ट्रिया का यथासम्भव समर्थन भी प्राप्त किया। बिस्मार्क का मूल उद्देश्य जर्मन मामलों से आस्ट्रिया को बाहर निकालना तो पूर्ण हो ही चुका था अतः 23 अगस्त, 1866 ई. को बिस्मार्क ने आस्ट्रिया के साथ प्राग की सन्धि सम्पन्न कर ली।

इस प्रकार आस्ट्रो–प्रशियन युद्ध एवं प्राग की सन्धि द्वारा बिस्मार्क ने जर्मनी के एकीकरण का द्वितीय महत्वपूर्ण चरण भी पूरा कर लिया। अब तृतीय चरण दक्षिणी राज्यों का संघ में विलय ही शेष था। इस तीसरे चरण की प्राप्ति हेतु बिस्मार्क का स्पष्ट कथन था कि ''प्रशा और फ्रांस का युद्ध इतिहास के तर्क में निहित है।''

(ग) जर्मनी के एकीकरण का तृतीय अन्तिम चरण : फ्रैंको–प्रशियन युद्ध एवं फ्रेंकफर्ट की सन्धि

(1) पृष्ठभूमि–बिस्मार्क ने जर्मनी के एकीकरण के द्वितीय चरण में आस्ट्रिया को तो जर्मन संघ से खदेड़ दिया, परन्तु प्राग की सन्धि की शर्तों को फ्रांस हजम नहीं कर पाया और फ्रांस व प्रशा के सम्बन्ध निरन्तर बिगड़ते चले गये। फ्रांस के कई राजनीतिक सेडोवा की हार को अपनी हार मानकर सेडोवा की हार का प्रतिशोध लेने की माँग करने लगे।

(2) लक्समबर्ग का प्रश्न–आस्ट्रिया से युद्ध के पूर्व बिस्मार्क ने राइन प्रदेश के कुछ भागों का लालच देकर फ्रांस के नेपोलियन III की तटस्थता प्राप्त की थी। नेपोलियन III को आशा थी कि उसे आस्ट्रो–प्रशियन युद्ध में तटस्थ रहने की कमान प्राप्त होगी और उसका विस्तार राइन नदी तक हो जायेगा परन्तु बिस्मार्क ने उसकी पूर्ण उपेक्षा की अतः नेपोलियन III की नाराजगी स्वाभाविक थी।

लक्समबर्ग चूँकि आस्ट्रो–प्रशियन युद्ध में तटस्थ रहा था। अतः उसे उत्तर जर्मन संघ में शामिल न कर स्वतन्त्र घोषित किया गया था। नेपोलियन III ने अपने विशेष दूत बेनेदिती (Benedetti) को बिस्मार्क के पास लक्समबर्ग प्राप्ति हेतु भेजा। चूँकि बिस्मार्क इस समय आन्तरिक कार्यों में व्यस्त था एवं नेपोलियन को नाराज नहीं करना चाहता था। अतः उसने बेनेदिती से कहा कि ''मैं स्वयं फ्रांस को लक्समबर्ग नहीं दिला सकता परन्तु यदि फ्रांस लक्समबर्ग पर अधिकार कर लेगा, तो मैं कोई आपत्ति नहीं करूँगा।'' इस आश्वासन के बाद नेपोलियन ने हॉलैण्ड शासक से लक्समबर्ग खरीदने की बात की तो वह अपनी तंग आर्थिक स्थिति को देखते हुए लक्समबर्ग बेचने तैयार हो गया, परन्तु इसी बीच उक्त घटनाओं की जानकारी जब जर्मनवासियों को पता लगी तो सर्वत्र फ्रांस का विरोध होने लगा। उनका कहना था कि ''जो प्रदेश जर्मनी का है, उसे हम जर्मनी के शत्रुओं के हाथ न जाने देंगे।''

इन परिस्थितियों में हॉलैण्ड ने लक्समबर्ग बेचने से इन्कार कर दिया और बिस्मार्क ने भी फ्रांस को सूचित कर दिया कि वह लक्समबर्ग हस्तान्तरण की अब स्वीकृति नहीं दे सकता। फ्रांस ने इसे बिस्मार्क का छल माना और फ्रांस भड़क उठा। मई 1867 ई. के लन्दन सम्मेलन में लक्समबर्ग को तटस्थ राज्य मान लिया गया। लन्दन सम्मेलन के निर्णय द्वारा चूँकि लक्समबर्ग से प्रशा की सेनाएँ भी हटा ली गयी थीं, अतः फ्रांस ने भी मन समझाने को इसे अपनी विजय माना परन्तु वस्तुतः यह बिस्मार्क की कूटनीतिक जीत एवं फ्रांस की विदेश नीति की पराजय थी।

(3) फ्रांस के कूटनीतिक प्रयास–बिस्मार्क तो कह ही चुका था कि ''प्रशा और फ्रांस का युद्ध इतिहास के तर्क में निहित है। अब लक्समबर्ग के प्रश्न के उपरान्त फ्रांस को भी युद्ध अपरिहार्य नजर आने लगा। अतः फ्रांस के सम्राट नेपोलियन तृतीय ने अपनी कूटनीतिक तैयारियाँ आरम्भ कर दीं। नेपोलियन ने जुलाई 1868 ई. से अक्टूबर 1869 ई. तक आस्ट्रिया से मैत्री सन्धि करने का प्रयत्न किया, दिसम्बर 1868 ई. में इटली भी इस वार्तालाप में शामिल हो गया।

(4) स्पेन उत्तराधिकार का प्रश्न–लक्समबर्ग के प्रश्न के पश्चात् फ्रांस एवं प्रशा के बीच तनाव काफी बढ़ चुका था, परन्तु 1870 ई. के आरम्भ तक इनके बीच युद्ध होने की कोई सम्भावना दिखाई नहीं दे रही थी किन्तु इसी बीच स्पेन के उत्तराधिकार

के प्रश्न ने इन दोनों के सम्बन्ध इस कदर बिगाड़ दिये कि फ्रांस व प्रशा के मध्य युद्ध आरम्भ हो गया। 1868 ई. में स्पेन की क्रान्ति के फलस्वरूप वहाँ की महारानी ईसाबेला II (Isabella II) को वहाँ से निर्वासित कर दिया गया था। तत्पश्चात् स्पेन के लिए एक योग्य उत्तराधिकारी की खोज लगभग 2 वर्ष तक चलती रही। अन्ततः प्रशा के शासक के सम्बन्धी होहेनजोलर्न वंश के राजकुमार लियोपाल्ड का नाम स्पेन के शासक हेतु प्रस्तावित किया गया। लियोपाल्ड के शासक बनने से स्पेन में प्रशा का प्रभाव क्षेत्र बढ़ गया और यह बात फ्रांस तो बिल्कुल सहन नहीं कर सकता था। इस खबर मात्र से फ्रांस में काफी उत्तेजना फैल गयी। फ्रांस के शासक नेपोलियन तृतीय ने विदेश मन्त्री ग्रेमॉ (Due de Gramant) को प्रशा के सम्राट विलियम प्रथम के पास विरोध प्रकट करने हेतु एम्स भेजा। जहाँ सम्राट स्वास्थ्य लाभ प्राप्त कर रहे थे। अतः प्रशा सम्राट विलियम प्रथम ने स्पेन की राजगद्दी से लियोपोल्ड का दावा 12 जुलाई, 1870 ई. को वापस ले लिया। उससे हाल–फिलहाल तनाव टल गया।

बिस्मार्क इस घटना से काफी असन्तुष्ट हुआ। उधर फ्रांस के नेपोलियन III ने बेनेदिती को विलियन प्रथम के पास यह भी आश्वासन माँगने भेज दिया कि, वह भविष्य में भी स्पेन के उत्तराधिकार हेतु किसी होहेनजोलर्न वंश के व्यक्ति का समर्थन नहीं करेगा। बेनेदिती ने जब विलियम प्रथम से एम्स पहुँचकर ऐसा आश्वासन माँगा तो विलियम प्रथम ने कोई निश्चयात्मक उत्तर नहीं दिया। विलियम प्रथम ने इस बातचीत का समस्त विवरण, एक तार द्वार बिस्मार्क के पास भेज दिया।

एम्स का तार–बिस्मार्क तो पहले से ही फ्रांस से असन्तुष्ट था और जब एम्स से उसे विलियम प्रथम एवं बेनेदिती की बातचीत का विवरण तार द्वारा प्राप्त हुआ, तो इस तार को पढ़कर उसे एक युक्ति सूझी। इस चातुर्यपूर्ण युक्ति पर अमल करते हुए उसने एम्स के तार को संक्षिप्त कर समाचार पत्रों में इस प्रकार प्रकाशित कराया कि यदि उसे कोई जर्मन पढ़े तो उसे अनुभव हो कि उसके शासक विलियन प्रथम का अपमान हुआ है और यदि कोई फ्रांसीसी पढ़े तो उसे महसूस हो कि उसके राजदूत बेनेदिती का अपमान हुआ है।

एम्स के तार के सम्बन्ध में कैटलबी ने लिखा है कि ''पूरी इबारत मानो युद्ध की चुनौती के जवाब में बातचीत का निमन्त्रण था किन्तु संक्षिप्त इबारत मानो युद्ध की चुनौती के जवाब में तलवार का वार थी।''

14 जुलाई को जैसे ही तार फ्रांस के समाचार पत्रों में प्रकाशित हुआ, वहाँ प्रशा के विरुद्ध क्रोधाग्नि भड़क उठी और इस क्रोधाग्नि की शान्ति हेतु 15 जुलाई, 1870 ई. को फ्रांस ने प्रशा के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी। इस प्रकार स्पेन के उत्तराधिकार का प्रश्न और इससे भी अधिक एम्स के तार के संक्षिप्त रूप ने बहुप्रतीक्षित फ्रेंको–प्रशियन युद्ध को आरम्भ करा दिया।

युद्ध की घटनाएँ–बिस्मार्क यह कथन कि फ्रांस के साथ युद्ध अवश्यम्भावी है अन्ततः 15 जुलाई, 1870 ई. को फ्रांस द्वारा प्रशा के विरुद्ध युद्ध की घोषणा के साथ ही सत्य साबित हुआ। हेजन ने इस युद्ध के बारे में सत्य ही लिखा है कि ''यह युद्ध केवल राजनीतिज्ञों की पैंतरेबाजी का ही परिणाम था।''

फ्रांस ने यद्यपि जोश में युद्ध की घोषणा तो कर दी थी, परन्तु वह इस युद्ध के लिए पूर्णतः तैयार न था। दूसरी ओर, युद्ध मन्त्री वानरून एवं प्रधान सेनापति वान

मोल्तके के नेतृत्व में प्रशा ने युद्ध की पूर्ण तैयारी कर रखी थी। बिस्मार्क ने नेपोलियन III के मुआवजे सम्बन्धी पत्रों को सार्वजनिक कर उसके प्रति अन्य यूरोपीय राष्ट्रों की सहानुभूति को समाप्त कर दिया था। नेपोलियन के बेल्जियम हथियाने सम्बन्धी प्रस्ताव से इंग्लैंड अप्रसन्न हो गया था राइन नदी के प्रदेशों की माँग के कारण दक्षिण जर्मन राज्य भी फ्रांस से असन्तुष्ट होकर प्रशा के पक्ष में हो गये थे। चूँकि 1849 ई. से फ्रांसीसी सेनाएँ पोप के राज्य रोम की रक्षार्थ नियुक्त थीं, अतः बिस्मार्क ने इटली को आश्वासन दिया था, कि फ्रांस के साथ युद्ध होते ही इटली रोम पर अधिकार कर ले।

इस प्रकार युद्ध के पूर्व ही बिस्मार्क ने अपनी कूटनीतिक तैयारियाँ पूर्ण कर ली थीं। युद्ध प्रारम्भ होते ही बोसेनवर्ग–ग्रेवलाट के युद्ध में प्रशा ने फ्रांस को परास्त किया। सर्वमहत्वपूर्ण युद्ध 1 सितम्बर, 1870 ई. को सीडान में हुआ। जहाँ पूरी तरह परास्त होने के बाद नेपोलियन तृतीय ने आत्म–समर्पण कर दिया और उसे बन्दी बना लिया गया। 4 सितम्बर, 1870 ई. को नेपोलियन के पतन के पश्चात् फ्रांस में तृतीय गणतन्त्र की स्थापना हुई, परन्तु गणतन्त्र ने प्रशा के साथ युद्ध जारी रखा। अतः जर्मन सेनाएँ पेरिस तक पहुँच गयीं और बिस्मार्क ने 18 जनवरी, 1871 ई. को वर्साय के प्रसिद्ध राजमहल में जर्मनी के सम्राट विलियम प्रथम का राज्याभिषेक किया। पेरिस के पतन के साथ ही 28 जनवरी, 1871 ई. को युद्ध समाप्त हो गया।

फ्रेंकफर्ट की सन्धि (10 मई, 1871 ई.)

10 मई, 1871 ई. को प्रशा एवं फ्रांस के मध्य फ्रेंकफर्ट की दूरगामी परिणामों वाली फ्रेंकफर्ट सन्धि सम्पन्न हुई। जिसकी प्रमुख शर्तें निम्नलिखित थीं–

(1) मेज (Metz), स्ट्रासबर्ग (Strassburg) सहित फ्रांस को अपने सर्वमहत्वपूर्ण अल्सेस (Alsace) एवं लॉरेन (Lorriaine) के प्रदेश जर्मनी को देने पड़े।

(2) 3 वर्षों के अन्दर किश्तों में फ्रांस को 20 करोड़ पौण्ड क्षतिपूर्ति के रूप में जर्मनी को देना स्वीकार करना पड़ा। क्षतिपूर्ति की अदायगी तक जर्मन सेनाएँ फ्रांस में ही रहेंगी।

बिस्मार्क ने अप्रैल 1871 ई. को जर्मनी के नये विधान की घोषणा की जिसके अन्तर्गत दक्षिण जर्मनी के संयुक्त राज्य बवेरिया, कुटमबर्ग वादेन एवं हेज आदि क्षेत्र जर्मन संघीय साम्राज्य में सम्मलित कर लिये गये और इस प्रकार जर्मनी के एकीकरण का महायज्ञ पूर्ण हुआ।

फ्रैंको–प्रशियन युद्ध के परिणाम एवं महत्व–फ्रैंको–प्रशियन युद्ध परिणामों की दृष्टि से यूरोप के इतिहास की महत्वपूर्ण घटना थी। इसके परिणाम दूरगामी सिद्ध हुए जो निम्नलिखित थे–

(1) जर्मनी का एकीकरण–फ्रैंको–प्रशियन युद्ध के पश्चात् 18 जनवरी, 1871 ई. को जर्मन संघ के नरेशों एवं सेनापतियों की उपस्थिति में प्रशा के विलियम प्रथम को फ्रांस में वर्साय के राजमहल में जर्मनी का सम्राट घोषित किया गया। दक्षिण जर्मनी के राज्य भी जर्मन राज्य में मिल गये थे। इस प्रकार जर्मनी का एकीकरण पूर्णतः सम्पन्न हुआ।

(2) इटली का एकीकरण–जर्मनी के साथ–साथ इटली का एकीकरण भी पूर्णतः इसी युद्ध के पश्चात् सम्पन्न हुआ। बिस्मार्क द्वारा पूर्व में ही दिये गये आश्वासन के साथ, इटली ने फ्रांस को जर्मनी के साथ संघर्ष में उलझा देख रोम पर अधिकार कर लिया। 1866 ई. तक रोम को छोड़ इटली के समस्त राज्य सार्डीनिया पिडमॉण्ट के

नेतृत्व में एक हो चुके थे और फ्रेंको–प्रशियन युद्ध के पश्चात् रोम को भी इटली में मिला लिया गया। अतः हेजन ने लिखा है कि ''सन् 1866 ई. के युद्ध के फलस्वरूप आस्ट्रिया को जर्मनी व इटली से निकाल दिया गया था। सन् 1870 ई. के युद्ध द्वारा दोनों ही देशों (जर्मनी एवं इटली) का एकीकरण पूर्ण हो गया। बर्लिन जर्मन संघ की राजधानी बना एवं रोम संयुक्त इटली की राजधानी बना।''

बिस्मार्क का मूल्यांकन

बिस्मार्क का नाम यूरोप के लब्ध–प्रतिष्ठित राजनीतिज्ञों में से एक है। दृढ़ निश्चय, अदम्य साहस, कूटनीतिक कुशलता, दूरदर्शी निर्णय लेने की क्षमता, व्यक्ति एवं परिस्थितियों की समझ, अवसर का लाभ उठाने वाले गुण एवं तात्कालिक निर्णय लेने की क्षमता बिस्मार्क के मूलभूत गुण थे जिन्होंने उसे प्रसिद्धि के शिखर पर पहुँचाया। इन्हीं गुणों की मदद से बिस्मार्क ने जर्मनी के एकीकरण को सम्पन्न किया, अन्यथा जर्मनी के एकीकरण में अत्यधिक बाधाएँ थीं। प्रशा की भक्ति उसके जीवन का आदर्श थी और उसने अपना सम्पूर्ण जीवन प्रशा की उन्नति में लगाया। यही नहीं, वह प्रशा के नेतृत्व में ही जर्मनी का एकीकरण करने को दृढ़ प्रतिज्ञ था और उसने ऐसा ही किया। लिप्सन ने जर्मनी के राष्ट्र निर्माता के रूप में बिस्मार्क की तुलना इटली के राष्ट्र निर्माता कावूर से की है किन्तु कावूर उदारवादी था और बिस्मार्क प्रतिक्रियावादी था। कावूर ने पिडमॉण्ट को इटली में सम्मिलित कर दिया परन्तु बिस्मार्क ने जर्मनी को प्रशा में समाविष्ट कर लिया था।

अपनी प्रगति जांचिए

5. 'हमारा न कोई विशेष झण्डा है, न कोई राजनीतिक नाम, न तो यूरोपीय राष्ट्रों के बीच हमारा कोई स्थान है, न कोई सम्मिलित बाजार, हम आठ राज्यों में विभक्त है' यह कथन किसका है :

   (क) मैजिनी (ख) कावूर

   (ग) गैरीवाल्डी (घ) विक्टर इमेन्युअल द्वितीय

6. 'एक राष्ट्र के रूप में इटली कावूर की देन है' यह कथन किसका है:

   (क) कैटलवी (ख) एलीसन फिलिप्स

   (ग) ग्राण्ट (घ) पार्मस्टन

7. इटली का एकीकरण सम्पन्न हुआ:

   (क) कावूर की व्यवहारिक वृद्धि से (ख) मैजिनी की प्रेरणा से

   (ग) गैरीबाल्डी की तलवार से (घ) उपर्युक्त तीनों के संयोग से

8. जर्मनी के एकीकरण की प्रमुख बाधा थी:

   (क) एकता का अभाव (ख) आस्ट्रिया का हस्क्षेप

   (ग) कार्ल्सवाद का अध्यादेश (घ) उपर्युक्त सभी

9. रक्त एवं लौह की नीति का प्रवर्तक था:

   (क) बिस्मार्क (ख) मेटरनिख

   (ग) कावूर (घ) मैजिनी

10. बिस्मार्क ने स्वयं से अधिक महान इटली के किस व्यक्ति को कहा है:
    (क) कावूर (ख) गैरीबाल्डी
    (ग) मैजिनी (घ) विक्टर इमेन्युअल
11. जर्मनी एवं इटली के एकीकरण का प्रारम्भिक श्रेय किसे जाता है:
    (क) बिस्मार्क (ख) कावूर
    (ग) नेपोलियन बोनापार्ट (घ) गैरीबाल्डी

4.4 बिस्मार्क युग : गृहनीति एवं विदेश नीति

बिस्मार्क जर्मनी के एकीकरण का सर्वप्रमुख नायक था। जो कार्य इटली के एकीकरण में कावूर की कूटनीति, मेजिनी की व्यावहारिक बुद्धि एवं गैरीवाल्डी की तलवार ने मिलकर किया वह सम्पूर्ण कार्य जर्मनी के एकीकरण में एकमात्र व्यक्ति बिस्मार्क ने किया। 1871 ई. के फ्रांस–प्रशा युद्ध में फ्रांस को परास्त कर बिस्मार्क ने जर्मनी का एकीकरण सम्पन्न किया। फ्रेंच राजतंत्र की राजधानी वर्साय में 18 जनवरी, 1871 ई. को जर्मन साम्राज्य की घोषणा की गई। वर्साय राजमहल में उत्सव मनाया गया। जर्मनी ने प्रशा के राजा विलियम प्रथम को जर्मनी का प्रथम सम्राट चुना। यह फ्रांस का एक असह्य अपमान था। 10 मई, 1871 ई. की फ्रेंकफर्ट संधि द्वारा फ्रांस को भौगोलिक, राजनीतिक एवं आर्थिक रूप से पैरों तले रौंद दिया गया। इस संधि ने फ्रांस व जर्मनी के मध्य शत्रुता के स्थायी बीज बो दिये, कालान्तर में समस्त विश्व को इन दोनों देशों की शत्रुता का घातक परिणाम भुगतना पड़ा। समस्त विश्व को प्रथम एवं द्वितीय विश्वयुद्ध की विभीषिका से गुजरना पड़ा। 'करे कोई भरे कोई' की कहावत चरितार्थ हुई।

बिस्मार्क ने भविष्य का सोचकर वर्तमान को तरजीह दी। अब चारों ओर यूरोप में बिस्मार्क की तूती गूँज रही थी। मेटरनिख युग का खाली स्थान बिस्मार्क युग द्वारा भरा गया। यूरोपीय राजनीति का केन्द्र आस्ट्रिया की राजधानी वियना से उठकर जर्मनी की राजधानी बर्लिन में आ गया।

अब समस्त विश्व की निगाहें बिस्मार्क पर केन्द्रित थीं। जर्मनी को आन्तरिक मजबूती प्रदान करने के लिए बिस्मार्क ने जो नीति अपनायी वह उसकी गृह नीति कहलायी।

बिस्मार्क फ्रांस से शत्रुता मोल ले चुका था। वह जानता था कि फ्रांस फ्रेंकफर्ट की संधि में हुये अपने अपमान का बदला अवश्य लेगा। इस तथ्य को ध्यान में रखकर उसने अपनी विदेशी नीति निर्धारित की।

1870 से 1890 ई. के बीच का समस्त विश्व का इतिहास बिस्मार्क की गृहनीति एवं विदेश नीति के अवलोकन का इतिहास था। इस अध्याय में हम बिस्मार्क की गृहनीति एवं विदेश नीति का तथ्यपरक विश्लेषण प्रस्तुत करेंगे।

4.4.1 बिस्मार्क की गृह नीति

बिस्मार्क की गृहनीति का प्रमुख उद्देश्य नवस्थापित जर्मन राज्य को सुरक्षा एवं दृढ़ता प्रदान करना था। इसके अलावा उसकी गृहनीति के उद्देश्य निम्न थे–

1. साम्राज्य के विभिन्न इकाई राज्यों में एकता स्थापित करना।
2. आर्थिक स्थिति सुदृढ़ करना।
3. विधि के क्षेत्र में एकरूपता लाना।
4. जर्मनी को एक शक्तिसम्पन्न राष्ट्र के रूप में स्थापित करना।

इन उद्देश्यों की पूर्ति हेतु बिस्मार्क ने अपनी गृह नीति संचालित की। उसकी गृहनीति के प्रमुख बिन्दु अग्रानुसार थे–

(1) जर्मनी का नवीन संविधान–बिस्मार्क द्वारा नवीन संविधान का निर्माण कराया गया। यह नवीन संविधान 16 अप्रैल, 1871 ई. को लागू हुआ। इसे संघात्मक संविधान कहा गया। अल्सास एवं लारेन सहित यह 25 छोटे–छोटे राज्यों पर लागू हुआ।

(अ) सम्राट–साम्राज्य का प्रमुख सम्राट होता था। प्रशा का राजा विलियम प्रथम जर्मनी का प्रथम सम्राट बना।

(ब) चांसलर–सम्राट की सहायता हेतु चान्सलर की नियुक्ति की गई। बिस्मार्क जर्मनी का प्रथम चांसलर नियुक्त हुआ। चासंलर सम्राट के प्रति उत्तरदायी था न कि संसद के प्रति। वह साम्राज्य परिषद् का सभापति होता था। चांसलर को ही प्रधानमंत्री कहा गया। वह दोनों सदनों में भाग ले सकता था।

(स) संसद–संसद में 2 सदनों की व्यवस्था थी।

(1) साम्राज्य परिषद् अथवा बुण्डसराट (Bundesrath)–यह संसद का उच्च सदन था। इसके सदस्यों की नियुक्ति संघ में सम्मिलित राज्य करते थे। विभिन्न राज्यों के शासक निम्नानुसार सदस्य नियुक्त कर सकते थे।

राज्य	मनोनीत सदस्य संख्या
प्रशा	17
अल्सास लॉरेन	03
बर्टम्बर्ग	04
सेक्सनी	04
बावेरिया	03
बेडन	03
हैस	03

इनके अलावा 18 अन्य छोटे–छोटे राज्य 1–1 सदस्य नियुक्त करते थे।

इस प्रकार हम देख सकते हैं कि ये सदस्य अपने राज्य की जनता के प्रतिनिधि न होकर राजा के प्रतिनिधि थे। यह सदन निचले सदन से शक्तिशाली था। इस सदन के सदस्यों की कुल संख्या 58 थी। इस सदन के प्रमुख कार्य थे–

1. अध्यादेश जारी करना।
2. राज्य के झगड़ों को निपटाने में उच्च न्यायालय का कार्य करना।
3. संविधान में संशोधन करना।
4. जजों, राजदूतों, उच्चतम नागरिकों एवं सैन्य अधिकारियों की नियुक्ति करना।

(2) निम्न सदन अथवा राइख स्टाग (Reichstage)–राइख स्टाग में कुल 397 सदस्य थे। ये 5 वर्षो के लिये प्रत्यक्ष, गुप्त मतदान द्वारा वयस्क मताधिकार के आधार पर चुने जाते थे इसमें प्रशा के सदस्यों की संख्या 235 थी। सदस्यों की उम्र 25 वर्ष से अधिक होना आवश्यक थी। इन सदस्यों के अधिकार सीमित थे। न तो इस सदन से कोई मंत्री होता था और और न ही मंत्रिपरिषद इस सदन के प्रति उत्तरदायी थी। इस सदन को एकमात्र प्रमुख अधिकार यह दिया गया कि इस सदन की अनुमति के बिना जर्मनी में कोई नया टैक्स नहीं लगाया जा सकता था।

(द) उच्चतम न्यायालय –संविधान के तहत एक उच्चतम न्यायालय की भी व्यवस्था की गई।

(1) संविधान की समीक्षा–संविधान के अनुसार जर्मन साम्राज्य एक वैधानिक राजतंत्र था। जर्मन संविधान का स्वरूप न तो प्रजातांत्रिक था और न ही उत्तरदायी। बिस्मार्क ने एक ऐसे संविधान का निर्माण कराया, जिसमें सर्वाधिक शक्तियाँ चांसलर में केन्द्रित थीं। बुण्डसराट एक शक्तिशाली सदन था, जबकि राइख स्टाग को कोई शक्ति प्राप्त न थी। इस संविधान में प्रशा सर्वशक्तिशाली राज्य था। वह बुण्डसराट में 17 एवं राइखस्टाग में 235 सदस्य भेजता था। प्रशा का राजा ही जर्मन सम्राट बना एवं प्रशा का चांसलर ही जर्मनी के चांसलर पद पर आसीन हुआ। मंत्रिमण्डल सम्राट के सहयोग पर निर्भर था। प्रशासकीय कार्यों में प्रशा का सम्राट प्रमुख था।

(2) वित्तीय सुधार–वित्तीय एकरूपता लाने हेतु एक बैंक की स्थापना की गई। मार्क (Mark) जर्मन साम्राज्य की मुद्रा निर्धारित की गई। 1876 ई. में एक इम्पीरियल बैंक की स्थापना की गई एवं सभी बैंकों को उससे सम्बद्ध कर दिया गया। इससे जर्मनी के औद्योगिक एवं वाणिज्यिक विकास को गति मिली। व्यापार हेतु एक जहाजी बेड़ा तैयार किया गया। व्यापार हेतु सुविधाएँ प्रदान की गईं। इससे जर्मनी एक आर्थिक शक्ति के रूप में उभरकर सामने आया।

(3) न्याय व्यवस्था–विभिन्न राज्यों में प्रचलित पृथक्–पृथक् कानूनों के स्थान पर समस्त जर्मन साम्राज्य में एक समान कानून का निर्माण किया गया। सभी राज्यों के लिये एक राष्ट्रीय न्यायालय स्थापित किया गया।

(4) सैन्य सुधार–1871 ई. में देश में अनिवार्य सैनिक शिक्षा एवं सेवा लागू की गई। बिस्मार्क ने युद्ध का भय फैला कर मनवांछित धन टैक्स के रूप में वसूला।

(5) जर्मनीकरण–बिस्मार्क समस्त साम्राज्य का जर्मनीकरण करना चाहता था। परन्तु गैर जर्मन जातियाँ इसके लिये तैयार नहीं हुईं। जर्मनी में 35 लाख पोल, 1 लाख 50 हजार डेन एवं 20 लाख अल्सास लॉरेन के फ्रेंच थे। बिस्मार्क ने इन पर जर्मनी की सभ्यता एवं संस्कृति को अपनाने हेतु दबाव डाला मगर वे तैयार नहीं हुये। बिस्मार्क के जर्मनी करण के प्रत्येक प्रतिबन्ध एवं प्रयास असफल रहे। अजर्मन जातियों में राष्ट्रवादी भावना बढ़ती ही रही। इस प्रकार बिस्मार्क की जर्मनीकरण की नीति असफल रही।

(6) बिस्मार्क और समाजवाद–औद्योगिक क्रान्ति के परिणामस्वरूप जर्मनी में औद्योगीकरण हुआ। समाजवादी विचारधारा के चलते श्रमिकों में समाजवादी विचारधारा लोकप्रिय होने लगी। बिस्मार्क को अब समाजवाद शत्रु जैसा दिखने लगा। सोशल डेमोक्रेट राजतंत्र के विरोधी थे। 1875 में सामाजिक प्रजातांत्रिक दल का गठन हुआ। दो बार सम्राट की हत्या के प्रयास हुये। बिस्मार्क इनके पीछे समाजवादियों का हाथ मानता था।

फर्डीनेण्ड लैसे, विलियम लार्डबैंकट एवं अगस्त वैबल जैसे समाजवादी नेताओं ने जर्मनी में मजदूरों को शक्तिशाली बनाया। वर्ग संघर्ष बढ़ने लगा।

1878 ई. में होटल नामक व्यक्ति ने सम्राट विलियम प्रथम की हत्या का प्रयास किया। बिस्मार्क अब कैथोलिकों का सहयोग प्राप्त कर क्रान्तिकारी विरोधी बिल पास करवाना चाहता था। इस प्रकार बिस्मार्क ने पोप लियो 13वें से समझौता कर लिया। जब कार्ल नोबिंलग ने सम्राट की हत्या का प्रयास किया तो बिस्मार्क ने राइखस्टाग को भंग कर दिया।

बिस्मार्क ने अब समाजवाद को कुचलने का प्रयास किया मगर समाजवादियों की संख्या निरन्तर बढ़ती रही। 1880 तक राइखस्टाग में समाजवादियों की संख्या अत्यधिक बढ़ गयी। तब बिस्मार्क ने राज्य समाजवाद लागू किया।

राज्य समाजवाद (State Socialism)

अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर बीमा व्यवस्था का सूत्रपात बिस्मार्क ने किया। बिस्मार्क ने

- 1883 में मजदूरों की बीमारी के लिये बीमा व्यवस्था लागू की।
- 1884 में मजदूरों की आकस्मिक दुर्घटना के लिये बीमा व्यवस्था लागू की।
- 1887 में स्त्रियों एवं बच्चों के काम के घण्टे कम कर दिये।
- 1890 में वृद्धावस्था के लिये बीमे की व्यवस्था लागू की।
- रविवार को छुट्टी का दिन घोषित कर दिया गया।

अब बिस्मार्क ने मजदूरों को उनके भविष्य की चिन्ता हेतु स्वयं को चिंतित दिखाकर उन्हें समाजवादी विचारधारा से पृथक् कर बीमा नीति द्वारा अपने पक्ष में कर लिया।

(7) बिस्मार्क की आर्थिक नीति–आर्थिक सुधार तो बिस्मार्क पहले ही लागू कर चुका था। अब उसने आर्थिक समृद्धि बढ़ाने के उपाय किये।

संरक्षण की नीति–बिस्मार्क ने स्वतंत्र व्यापार के स्थान पर संरक्षण की नीति को प्राथमिकता दी। स्वदेशी को प्राथमिकता दी। विदेशी माल पर कर बढ़ा दिया इससे स्वदेशी उद्योग मजबूत हुये। इससे जर्मनी एक प्रमुख औद्योगिक राष्ट्र बन गया। जर्मनी की राष्ट्रीय आय में वृद्धि हुई। विदेशों में जर्मन माल की खपत बढ़ने लगी।

(8) औपनिवेशिक नीति–बिस्मार्क जर्मनी को एक सन्तुष्ट राष्ट्र मानता था। वह जानता था कि उपनिवेशकों की दौड़ में शामिल होने का मतलब है इंग्लैंड से शत्रुता मोल लेना। वह फ्रांस को इंग्लैंड से पृथक रखना चाहता था। उसे डर था कि शत्रु का शत्रु मित्र की तर्ज पर कहीं इंग्लैंड–फ्रांस का मित्र न बन जाये।

1884 में बिस्मार्क को अपनी उपनिवेश विरोधी नीति त्यागने को बाध्य होना पड़ा। इसके कारण यह थे–

1. कच्चे माल की प्राप्ति एवं निर्मित माल की खपत के लिये जर्मनी को उपनिवेशों की आवश्यकता थी।
2. जर्मन के राष्ट्रभक्त उपनिवेश की स्थापना द्वारा राष्ट्र गौरव में वृद्धि करना चाहते थे।
3. ईसाई मिशनरी धर्म प्रचार हेतु उपनिवेशों की स्थापना हेतु दबाव डाल रहे थे।
4. बिस्मार्क रोमन केथोलिकों एवं समाजवादियों के विरोध एवं अन्य समस्याओं से जनता का ध्यान हटाने के लिये उपनिवेशों की स्थापना हेतु तैयार हो गया।

इन कारणों से थोड़े ही समय मे जर्मनी ने अपने उपनिवेश स्थापित कर लिये।

बिस्मार्क की गृहनीति की समीक्षा

बिस्मार्क की गृहनीति को न तो सफल कहा जा सकता है और न ही असफल। उसकी कुल्चूर कैम्फ की नीति असफल रही। राज्य समाजवाद रूपी हथियार के इस्तेमाल/प्रयोग द्वारा भी वह समाजवादी विचारधारा का दमन करने में असफल रहा। इसके बावजूद भी उसने जर्मनी में आन्तरिक शांति स्थापित रखी। संरक्षण की नीति अपना कर जर्मनी का औद्योगीकरण सम्पन्न किया। जर्मन को एक शक्ति सम्पन्न आर्थिक राष्ट्र में परिवर्तित करने में सफलता प्राप्त की। अफ्रीका के एक बड़े भाग–केमरुन, टोगोलैण्ड, मार्शल द्वीप, पूर्वी अफ्रीका, दक्षिण–पश्चिम अफ्रीका तथा न्युगिनी में उपनिवेश स्थापित कर उपनिवेशों की स्थापना का मार्ग प्रशस्त किया।

कारण जो भी हो बिस्मार्क जर्मनी को एक शक्तिशाली राष्ट्र में परिवर्तित करने हेतु दृढ़ प्रतिज्ञ था। वह धर्म को राजनीति से पृथक् करना चाहता था। वह समाजवाद को औद्योगिक प्रगति में बाधक मानता था। इसी कारण उसे कैथोलिकों एवं समाजवादियों से विरोध मोल लेना पड़ा। मगर जर्मन राष्ट्र की सुदृढ़ता की कीमत पर उसने कैथोलिकों से समझौता भी किया। अतः उसकी गृहनीति पूर्णतः व्यावहारिक थी। कई मुद्दों पर असफलता में भी उसकी सफलता ही निहित थी।

चर्च एवं राज्य

बिस्मार्क जर्मनी में समाजवादियों एवं रोमन कैथोलिक चर्च के बढ़ते वर्चस्व को कम करना चाहता था। रोमन कैथोलिकों के साथ उसका संघर्ष उसकी गृहनीति की सर्वप्रमुख घटना थी।

बिस्मार्क एवं रोमन कैथोलिक चर्च के मध्य जो संघर्ष हुआ वह संस्कृति विषयक संघर्ष (Kultur Kampf) कहलाता है। Kultur का अर्थ होता है संस्कृति एवं Kampf का अर्थ होता है संघर्ष। इन दोनों का संयुक्त अर्थ है संस्कृति विषयक संघर्ष Kultur Kampf नाम विरचाओं नामक चिकित्सक द्वारा दिया गया था।

प्रशा का सम्राट प्रोटेस्टेण्ट धर्म का था, परन्तु उसके अधीन जनता का एक बड़ा भाग कैथोलिक अनुयायी था। कैथोलिक चर्च बिस्मार्क की एकीकरण की नीति के विरुद्ध था। इससे कैथोलिकों की धार्मिक स्वतन्त्रता बाधित हो रही थी। चूँकि कैथोलिक आस्ट्रिया के समर्थक थे, अतः बिस्मार्क उनसे नाराज था। 1866 के युद्ध

में पोप ने प्रशा के विरुद्ध आस्ट्रिया की विजय की खुले रूप में कामना की थी। अतः अब बिस्मार्क का कैथोलिक पोप से संघर्ष अवश्यम्भावित था।

कुल्चूर कैम्फ (संस्कृति विषयक संघर्ष) के कारण

बिस्मार्क एवं रोमन कैथोलिक के मध्य होने वाले कुल्चूर कैम्फ के कारण निम्नलिखित थे–

(1) आस्ट्रिया–प्रशा युद्ध (1866 ई.) में पोप एवं रोमन कैथोलिकों ने प्रशा के विरुद्ध आस्ट्रिया का पक्ष लिया।

(2) रोमन कैथोलिक, प्रशा के प्रोटेस्टेण्ट राजवंश का विरोध करते थे।

(3) बिस्मार्क कैथोलिक पार्टी को अपना एवं जर्मन साम्राज्य का विरोधी मानता था।

(4) रोमन कैथोलिक एवं पोप जर्मनी व इटली की मित्रता के मार्ग में बाधाएँ उत्पन्न कर रहे थे।

(5) जर्मन साम्राज्य के कुछ राज्यों की कैथोलिक जनता यह सोच कर भयभीत थी कि प्रोटेस्टेण्ट के प्रभाव बढ़ने से उन्हें प्रोस्टेस्टेण्ट धर्म के अधीन रहना पड़ेगा।

(6) पोप राज्य को चर्च के अधीन रखना चाहता था। जबकि बिस्मार्क राजनीति में धर्म के हस्तक्षेप का विरोधी था।

(7) रोमन कैथोलिकों ने अपने नेता बिण्डथार्स्ट के नेतृत्व में केन्द्रित दल का गठन किया। ये संसद में बिस्मार्क का विरोध करते थे। इनकी संख्या 1871 ई. तक ही राइखस्टाग में 63 हो गयी।

(8) पोप पायस नवम (Pope Pius IXth) ने 1864 ई. में त्रुटियों की सूची (Syllabus of Erarors) को प्रसारित किया। इसमें घोषित किया कि कैथोलिकों को अन्य सम्प्रदाय के लोगों के प्रति सहिष्णुता नहीं दिखानी चाहिये। राज्य पर चर्च का नियन्त्रण होना चाहिये। जर्मनी में राइखस्टाग के 63 सदस्यों ने इस घोषणा का समर्थन किया था। 1870 ई. में चर्च काउन्सिल ने चर्च के मामलों में राज्य के किसी भी प्रकार के हस्तक्षेप का विरोध किया। 1870 ई. में ही अभ्रान्तीयता के सिद्धान्त (Doctrine of Infallibility) के अंतर्गत (Vatican Council) ने यह घोषणा की कि पोप से कोई गलती हो ही नहीं सकती।

बिस्मार्क जैसा व्यक्ति आखिर पोप के इन क्रिया–कलापों को कैसे सहन कर सकता था। वह राज्य को चर्च के ऊपर मानता था। बिस्मार्क के अनुसार 'उल्टा चोर कोतवाल को डाँटे' की कहावत चरितार्थ हो रही थी। बिस्मार्क ने इस तारतम्य में अपना रोष इन शब्दों में व्यक्त किया था–''पोप का अभ्रान्तीयता का यह सिद्धान्त राज्य के लिये खतरा है। पोप जो चाहता है धृष्टतापूर्वक प्राप्त कर लेता है। वह हमारे कानूनों को अवैध घोषित कर देता है, कर लगा देता है। संक्षेप में प्रशा में कोई इतना शक्तिशाली नहीं है जितना कि यह विदेशी पोप''।

यह वर्चस्व की लड़ाई थी। एक म्यान में भला दो तलवारें कैसे रह सकती थीं। पोप एवं बिस्मार्क दोनों ही अपना–अपना वर्चस्व स्थापित करना चाहते थे। बिस्मार्क को उस समय प्रसन्नता हुई जब कि पोप की अभ्रान्तीयता की घोषणा से कैथोलिक दो भागों में बँट गये। पुराने कैथोलिक एवं नवीन कैथोलिक। पुराने कैथोलिकों ने पोप का विरोध किया। पुराने कैथोलिकों ने डॉक्टर डालिंगटन के नेतृत्व में बिस्मार्क का समर्थन किया। डॉ. डालिंगटन जो कि प्रोफेसर थे, उन्होंने कहा–'एक ईसाई, एक

धर्मशास्त्री एवं एक नागरिक की हैसियत से मैं इस सिद्धान्त को स्वीकार नहीं कर सकता।' पोप ने डॉ. डालिंगटन को धर्म से बहिष्कृत कर दिया।

बिस्मार्क ने अब पोप से संघर्ष के लिये कमर कस ली। इस संघर्ष का संचालन फाक नामक व्यक्ति को सौंप दिया। 1872 से 1876 के मध्य बिस्मार्क ने कई कैथोलिक विरोधी कानून बनाये। उन्हें 'मई कानून' अथवा 'फाक कानून' कहा जाता है। ये कानून निम्नानुसार थे–

1. पादरियों के लिये सिविल विवाह अनिवार्य किया गया।
2. शिक्षा मंत्रालय का कैथोलिक ब्यूरो समाप्त कर दिया गया।
3. कैथोलिक पादरियों के स्थान पर राज्य द्वारा स्कूलों के निरीक्षण की पद्धति लागू की।
4. कैथोलिक पादरियों को अर्थदण्ड देने के अधिकार से वंचित कर दिया गया।
5. अब वही पादरी धार्मिक पद ग्रहण कर सकता था जो कि किसी जर्मन पब्लिक स्कूल अथवा जर्मन विश्वविद्यालय में पढ़ा हुआ है।
6. अब धार्मिक शिक्षा केवल जर्मन भाषा में दी जायेगी।
7. कैथोलिकों के सभी प्रशिक्षण शिक्षा केन्द्रों को प्रतिबंधित कर दिया गया।
8. अब अनाधिकृत व्यक्ति धार्मिक क्रियायें नहीं कर सकते थे।
9. प्रत्येक चर्च का अधिकारी जर्मन नागरिक होना आवश्यक था।
10. विद्रोही पादरियों को दण्डित किया गया। कुछ को जेल तो कुछ को देश निकाला दिया गया।
11. अब पोप किसी को भी धर्म से बहिष्कृत नहीं कर सकेगा।
12. अब पादरियों की नियुक्ति एवं पदमुक्ति का अधिकार राज्य को दिया गया।

बिस्मार्क इन कानूनों को जितनी सख्ती से लागू करना चाहता था, पोप उतनी ही शक्ति से इनका विरोध कर रहा था। विरोध स्वरूप हजारों कैथोलिक जेल में बन्द कर दिये गये। जर्मनी धर्मयुद्ध की कगार पर जा पहुँचा।

बिस्मार्क ने कहा ''हम न शरीर से और न मन से कनौसा जायेंगे।'' (We shall not go to Canossa either in body or in spirit)

उक्त कथन का अर्थ–1077 ई. में फ्रांस के सम्राट हेनरी चतुर्थ एवं पोप ग्रेगरी सप्तम के मध्य इसी प्रकार का संघर्ष हुआ था। अन्ततः सम्राट हेनरी चतुर्थ को झुकना पड़ा और कनौसा नामक स्थान पर जाकर पोप ग्रेगरी सप्तम से क्षमा माँगनी पड़ी थी। पोप कनौसा में रहता था।

इसी प्रकार के संघर्ष की पुनरावृत्ति बिस्मार्क के समय पुनः हुई। अब बिस्मार्क का कहना था कि हेनरी चतुर्थ के समान झुकेंगे नहीं और न ही कनौसा जाकर पोप से क्षमा मागेंगे।

बिस्मार्क की कैथोलिक विरोधी नीति के परिणाम घातक सिद्ध हुये। चुनावों में केन्द्रीय पार्टी की सदस्य संख्या 1874 में 90 तो 1877 में 92 तक पहुँच गयीं। अर्थात् कैथोलिकों की शक्ति को दबाया न जा सका।

इस तारतम्य में राबर्टसन ने उचित ही लिखा है–

'सिर काटे जा सकते हैं, परन्तु भावनाओं से प्रोत्साहित हृदय को जेल अथवा फाँसी देकर आज्ञाकारी नहीं बनाया जा सकता और न ही गोलियों तथा हथकड़ियों से विचारों को नष्ट किया जा सकता है'

बिस्मार्क को अपना दॉव उल्टा पड़ा समझ में आ गया। उसे आशा न थी कि आन्दोलन इतना तीव्र हो जायेगा। दूसरी ओर जर्मनी में समाजवादी भावनाएँ तेजी से बढ़ रहीं थी। अब बिस्मार्क समाजवाद को कैथोलिकों की तुलना में शक्तिशाली शत्रु मानने लगा। समाजवादियों की बढ़ती शक्ति से निपटने के लिये कैथोलिकों का सहयोग आवश्यक प्रतीत होने लगा।

उधर पोप पायस नवम के स्थान पर पोप लियो 13वाँ उसका उत्तराधिकारी बना। यह पोप XIII स्वयं ही बिस्मार्क से समझौता करने तैयार था। इस प्रकार पोप पायस नवम की मृत्यु के उपरान्त बिस्मार्क ने पोप लियो 13वें के साथ समझौता कर लिया। फाक कानून ढीले कर दिये गये। कठोर कानून समाप्त कर दिये गये। अब पोप एवं जर्मन सम्राट के मध्य कूटनीतिक सम्बन्ध पुनः कायम हो गये। बिस्मार्क को अन्ततः कनौसा जाना ही पड़ा।

बिस्मार्क की असफलता के कारण

बिस्मार्क की कुल्चूर कैम्फ की नीति निम्न कारणों से असफल हुई–

1. बिस्मार्क ने कैथोलिकों की शक्ति को कम आँकने की भूल की।
2. पादरियों को सजा देकर बिस्मार्क ने लोगों को नाराज कर लिया। उसके मित्र व सहयोगी भी उससे नाराज हो गये।
3. केन्द्रीय पार्टी के नेता बिण्डथार्स्ट के कुशल नेतृत्व में कैथोलिकों की शक्ति निरन्तर बढ़ती ही रही।
4. महारानी अगस्ता (Empress Augusta) एवं राजकुमार भी बिस्मार्क की कैथोलिक विरोधी नीति से असन्तुष्ट थे।
5. समाजवाद के बढ़ते प्रभाव को कैथोलिक सहायता से ही रोका जा सकता था।

उक्त कारणों से बिस्मार्क को अपने कदम पीछे खींचने पड़े। इस प्रकार बिस्मार्क की कुल्चूर कैम्फ की नीति पूर्णतः असफल रही।

4.4.2 बिस्मार्क की विदेश नीति

बिस्मार्क की विदेश नीति को समझने से पहले हम विक्टर ह्यूगो के कथन पर विचार करेंगे। उसने 1871 ई. में फ्रेंकफर्ट की संधि पर विचार व्यक्त करते हुए कहा था–

'अब यूरोप में दो राष्ट्र भयग्रस्त होंगे– एक (जर्मनी) तो इसलिये कि वह विजेता है और दूसरा (फ्रांस) इसलिये कि वह पराजित है।'

अर्थात् अब जर्मनी को भय इसलिये था क्योंकि वह जानता था कि फ्रांस बदला लेने का प्रयास अवश्य करेगा। फ्रांस इसलिये भयभीत रहेगा क्योंकि वह पराजित था और डरा हुआ भी कि कहीं जर्मनी और अधिक परेशानियाँ उत्पन्न न करे।

बिस्मार्क जानता था कि फ्रांस अकेला तो जर्मनी का कुछ नहीं बिगाड़ सकता है यदि उसे एक भी मित्र मिल गया तो वह बदला अवश्य लेगा। अतः बिस्मार्क हर हालत में फ्रांस को मित्रहीन रखना चाहता था। फ्रांस किन देशों से मित्रता कर सकता था इसके लिये हमें जर्मनी एंव फ्रांस की भौगोलिक स्थिति को समझना अति आवश्यक है।

बिस्मार्क अपनी विदेश नीति द्वारा यूरोप में यथास्थिति (Status Quo) बनाये रखना चाहता था। बिस्मार्क जानता था कि फ्रांस व इंग्लैंड अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर उपनिवेशों की स्थापना को लेकर एक दूसरे से उलझे हुये हैं अतः इनकी मित्रता अभी सम्भव नहीं है। इटली का एकीकरण फ्रांस से अलग होकर हुआ है। अतः वह फ्रांस का मित्र नहीं बनेगा। रूस एवं आस्ट्रिया अभी बाल्कन क्षेत्र में टकरा रहे हैं एवं फ्रांस से काफी दूर है अतः बिस्मार्क उन्हें अपना मित्र बनाना चाहता था।

इन्हीं सब बातों को ध्यान में रखकर बिस्मार्क यथास्थिति को कायम रखना चाहता था।

बिस्मार्क की विदेश नीति के उद्देश्य

बिस्मार्क की विदेश नीति के मुख्य उद्देश्य निम्नलिखित थे–

1. यूरोप में यथास्थिति (Status Quo) बनाये रखना।
2. यूरोप में शक्ति सन्तुलन (Balance of Power) बनाये रखना।
3. यूरोप में यथासम्भव शांति बनाये रखना।
4. फ्रांस को मित्रहीन अर्थात् यूरोपीय कूटनीति से पृथक् (Isolate) बनाये रखना।
5. फ्रांस को मित्रहीन बनाये रखने के लिये अन्य देशों के साथ मैत्री सम्बन्ध (System of Alliance) का निर्माण करना।

बिस्मार्क जानता था कि फ्रांस को एक भी मित्र मिला तो वह बदला अवश्य लेगा। युद्ध की स्थिति में जर्मनी का राष्ट्रीय विकास, आन्तरिक सुरक्षा एवं औद्योगिक प्रगति रुक जायेगी। अतः वह फ्रांस को कमजोर ही रखना चाहता था। ताकि धीरे–धीरे वह अपने प्रतिशोध की भावना को भुला दे। वह फ्रांस से अपने सम्बन्ध अब बिगाड़ना नहीं चाहता था। वह जर्मनी को पूर्ण सन्तुष्ट राज्य मानता था अतः वह हर हालत में यथास्थिति बनाये रखना चाहता था।

जर्मनी के पश्चिम में फ्रांस एवं पूर्व में रूस स्थित था। बिस्मार्क जानता था कि यदि फ्रांस–रूस की मैत्री हुई तो जर्मनी बीच में पिस जायेगा। यूरोप में इस समय इंग्लैंड, रूस, फ्रांस, जर्मनी एवं इटली पाँच प्रमुख शक्तियाँ थीं इनमें इस समय इंग्लैंड, रूस एवं जर्मनी प्रमुख थे।

अपनी विदेश नीति का उद्देश्य निर्धारित करते हुये बिस्मार्क ने स्वयं कहा था– '1870 ई. के पश्चात जर्मन साम्राज्य की विदेश नीति का उद्देश्य, शांति रक्षा तथा जर्मनी के विरुद्ध गठबन्धनों को रोकना है और इस नीति की प्रमुख धुरी रूस है'।

बिस्मार्क का पतन 1890 ई.

1888 ई. में जर्मन सम्राट केसर विलियम प्रथम की मृत्यु हो गयी। 16 जून 1888 को केसर विलियम द्वितीय सम्राट बना। केसर विलियम द्वितीय युवा था वह सत्ता के सूत्र अपने हाथ में केन्द्रित करना चाहता था।

बिस्मार्क के साथ उसके नीतिगत मतभेद थे। विलियम द्वितीय इंग्लैंड से मैत्री चाहता था। सम्राट आस्ट्रिया के स्थान पर रूस से प्रगाढ़ मैत्री चाहता था। बिस्मार्क समाजवादियों का दमन करना चाहता था। जबकि विलियम उनके प्रति उदारता की नीति अपनाना चाहता था।

विलियम नवयुवक था और शासन पर अपना वर्चस्व चाहता था। बिस्मार्क ने स्पष्टतः कहा कि 'मैं घुटने टेक कर सेवा नहीं कर सकता।' अन्ततः 1890 ई. में बिस्मार्क ने त्यागपत्र दे दिया।

'जिस खेवट ने जर्मन नौका को कई तूफानों एवं चट्टानों से बचाया था, उसे अन्ततः नौका से ही उतार दिया गया।' 1898 ई. में बिस्मार्क की मृत्यु हो गयी तब प्रो. राबर्ट्स ने उचित ही लिखा–

'ऐसे सम्राट आते है और चले जाते हैं, परन्तु जर्मनी के लिये ही नहीं अपितु समस्त यूरोप के लिये एक ही बिस्मार्क आया और अब भविष्य में उसके स्थान पर दूसरा नहीं आयेगा।'

अपनी प्रगति जांचिए

12. फ्रांस–प्रशा युद्ध में फ्रांस को परास्त कर जर्मनी के एकीकरण और जर्मन साम्राज्य की घोषणा बिस्मार्क ने कब की?

    (क) 18 जनवरी 1871 (ख) 10 मई 1871

    (ग) 2 जून 1871 (घ) 4 जुलाई 1871

13. जर्मन साम्राज्य के उच्च सदन (बुण्डसराट) में प्रशा द्वारा मनोनीत सदस्यों की संख्या कितनी थी?

    (क) 20 (ख) 17

    (ग) 19 (घ) 18

4.5 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर

1. (ग)
2. (ख)
3. (घ)
4. (क)
5. (क)
6. (घ)
7. (घ)
8. (घ)
9. (क)
10. (क)

11. (ग)
12. (क)
13. (ख)

टिप्पणी

4.6 सारांश

अमेरिका के उत्तरी एवं दक्षिणी भाग में रहने वाले लोगों के मध्य कई बातों पर पारस्परिक मतभेद थे और इन्हीं मतभेदों के चलते इनके बीच 1861 ई. में जो संघर्ष हुआ, वह इतिहास में अमेरिका के गृह युद्ध के नाम से जाना जाता है। अब्राहम लिंकन जिस समय अमेरिका के राष्ट्रपति बने, उस समय अमेरिका की स्थिति काफी शोचनीय थी। उत्तर व दक्षिण के मध्य वैमनस्य की भावना विद्यमान थी। परम्परागत रूप से जहाँ अमेरिका का उत्तरी भाग उद्योग–प्रधान था, वहीं दक्षिणी भाग की अर्थव्यवस्था का प्रमुख आधार कृषि था। अतः इनके मध्य विद्वेष का कारण यह भी था, कि जो नीतियाँ उत्तरी भाग हेतु लाभदायक थीं, वे दक्षिणी भाग के लिए हानिकारक थीं। कृषि आधारित अर्थव्यवस्था के कारण दक्षिणी लोग दास प्रथा को निहित स्वार्थवश बरकरार रखना चाहते थे, जबकि उत्तरवासी उसे ईश्वरीय कानून के विरुद्ध मानकर समाप्त करना चाहते थे। इनके अलावा और भी कई मतभेदों के चलते जहाँ दक्षिणी लोग अमेरिकी संघ से अलग होना चाहते थे, वहीं उत्तरी लोग संघ के विघटन को रोकना चाहते थे।

संयुक्त राज्य अमेरिका के उत्तरी तथा दक्षिणी भागों में आपसी मनमुटाव गृह युद्ध का कारण बना। उत्तर एवं दक्षिणी भागों के बीच मतभेद के बिंदु थे– दासता का प्रश्न, 1820, टेक्सॉस के विलय का प्रश्न, मैक्सिको का युद्ध। इन प्रश्नों ने उत्तर–दक्षिण के बीच की खाई को और चौड़ा किया।

गृह युद्ध का मौलिक कारण उत्तर तथा दक्षिण के दास प्रथा को लेकर एक दूसरे के विरोधी तथ्य थे।

दक्षिण के दास मालिकों ने दास प्रथा की रक्षा के लिए ऐसे तर्क दिये और कार्य किये जिनसे उत्तरवासियों के दिल में अविश्वास एवं रोष पैदा हुआ। दक्षिणवासियों ने इसे पवित्र जीवन का आधार, दासों की सुरक्षा एवं गोरे लोगों की प्रभुता हेतु न्यायोचित ठहराया।

उत्तरवासी दास प्रथा को ईश्वरीय कानून के विरुद्ध स्वार्थपूर्ण प्रवृत्ति पर आधारित, समानता व स्वतन्त्रता की घोषणा के विरुद्ध तथा दक्षिण की प्रगति को रोकने वाला बताकर उसका विरोध करते थे।

इन तर्क–वितर्कों के चलते कोई भी पक्ष झुकने को तैयार नहीं था।

यह युद्ध एक ऐसी शल्य चिकित्सा थी। जो काफी पीड़ादायक थी, परन्तु एक राष्ट्र के स्वस्थ जीवन के लिए अत्यन्त आवश्यक थी और इसका जो परिणाम हुआ, वह संयुक्त राज्य अमेरिका के लिए वरदान साबित हुआ।

युद्ध के उपरान्त देश में एकता की भावना दृढ़ हुई तथा स्वशोषण का स्थान, व्यावहारिकता ने ले लिया जो 'स्थायी सत्य' बन गया।

गृह युद्ध के पश्चात् अमेरिका में आर्थिक, सामाजिक एवं राजनीतिक क्षेत्र में अभूतपूर्व प्रगति हुई। सही अर्थों में अमेरिका के पुननिर्माण का मार्ग प्रशस्त हुआ। इसीलिए कई राष्ट्रवादी लेखकों ने अमेरिका के गृह युद्ध को एक आशीर्वाद माना है।

इटली के एकीकरण की सर्वप्रमुख बाधा वहाँ के विभिन्न राज्यों पर विदेशी राजवंशों से सम्बन्धित शासकों का अधिकार होना था। लोम्बार्डी एवं वैनेशिया पर आस्ट्रिया का प्रभुत्व था। मोडेना तथा टस्कनी पर आस्ट्रिया के हैप्सबर्ग वंशीय शासकों का आधिपत्य था। परमा की शासिका मेरी लुइसा नेपोलियन बानेापार्ट की पत्नी एवं आस्ट्रिया की राजकुमारी थी। नेपल्स एवं सिसली पर बूर्बो वंश का शासन था, परन्तु इटली के एकीकरण के मार्ग का सर्वप्रमुख बाधक तत्व आस्ट्रिया था। जिसे कावूर ने भी इटली की स्वतन्त्रता का शत्रु कहा था।

कई शताब्दियों तक इटली एक भौगोलिक अभिव्यक्ति मात्र रहा, परन्तु 1789 ई. में फ्रांसीसी क्रान्ति के बाद नेपोलियन बोनापार्ट ने स्थानीय जन समूह में स्वतन्त्रता, समानता तथा बन्धुत्व की अलख जगाते हुए उसे पुनः 3 राज्यों में संगठित कर एक गणतन्त्र की स्थापना की परन्तु वियना कांग्रेस (1815) ने उसे पुनः 8 राज्यों मे विभिक्त कर विभिन्न राजवंशों के अधीन किया एवं आस्ट्रिया ने वहाँ अपने हितों के कारण प्रत्येक राष्ट्रीय एवं उदारवादी विचारधाराओं को दबाया।

नेपल्स व सिसली का इतिहास अत्याचारपूर्ण निरंकुशता का था। अतः वहाँ के राष्ट्रवादियों ने एक महान क्रान्तिकारी नेता गैरीबाल्डी से, निरंकुश शासक फ्रांसिस द्वितीय के विरुद्ध सहायता की माँग की। गैरीबाल्डी स्वतन्त्रता का पुजारी था और लालकुर्ती दल का संरक्षक था। उसने 5 मई, 1860 ई. को स्वयं सेवकों के साथ सिसली पर अधिकार किया एवं सितम्बर में नेपल्स पर भी अधिकार कर लिया था। अब वह रोम पर आक्रमण की योजना बनाने लगा।

गैरीबाल्डी की योजना ने कावूर को चिन्तित कर दिया। नेपोलियन तृतीय से युद्ध की सम्भावनाओं को वह टालना चाहता था। अतएव विक्टर इमेन्युनल ने उसके आग्रह पर रोम को छोड़कर उसके आस–पास के प्रदेशों पर अधिकार कर लिया।

अक्टूबर 1860 में सिसली और नेपल्स की जनता ने जनमत संग्रह के द्वारा पिडमाण्ट में विलय का निर्णय किया। इसके पश्चात् विक्टर इमेन्युअल नेपल्स में प्रविष्ट हुआ। गैरीबाल्डी ने अपने जीते हुए प्रदेश सहर्ष विक्टर इमेन्युअल को सौंप दिये एवं बिना कोई पुरस्कार प्राप्त किये अपने द्वीप कैपेश चला गया।

17 मार्च, 1861 ई. को विक्टर इमेन्युनल द्वितीय संयुक्त इटली का सम्राट घोषित हुआ। ट्यूरिन (कावूर का जन्म स्थान) इसकी राजधानी बनी।

इटली के नवनिर्माण में वेनेशिया और रोम मिलना ही शेष थे, कि इसी बीच जून 1861 में कावूर की मुत्यु हो गयी। मृत्यु पूर्व उसने कहा था, "Italy is made all safe." (इटली सर्वतः सुरक्षित बन चुका है)

1866 ई. में आस्ट्रिया और प्रशा के मध्य युद्ध हुआ तो बिस्मार्क ने इटली के शासक से आस्ट्रिया के विरुद्ध सहायता माँगी एवं बदले में वेनेशिया दिलवाने का आश्वासन दिया। प्रशा द्वारा सैडोवा के युद्ध में आस्ट्रिया पराजित हुआ एवं प्राग की सन्धि के अनुसार इटली को वेनेशिया प्राप्त हुआ।

टिप्पणी

रोम पर अधिकार करने में सबसे बड़ी बाधा फ्रांस था। 1870 ई. में फ्रांस प्रशा का युद्ध आरम्भ होने पर नेपोलियन तृतीय को रोम से अपनी सेनाएँ बुलानी पड़ीं। सीडान में नेपोलियन तृतीय की पराजय का समाचार पाते ही इटली की सेनाओं ने रोम पर आक्रमण कर उस पर 20 सितम्बर 1870 ई. को अधिकार कर लिया।

1856 ई. में कावूर ने कहा था, ''मुझे विश्वास है कि इटली एक एकीकृत राष्ट्र बनेगा और रोम उसकी राजधानी बनेगी।'' अतः उसका स्वप्न पूरा हुआ और रोम इटली की राजधानी बना।

''इस प्रकार एक दीर्घकालीन संघर्ष के बाद मैजिनी के नैतिक बल, गैरीबाल्डी की तलवार, कावूर की कूटनीति एवं विक्टर इमेन्युअल की सूझबूझ और व्यावहारिक बुद्धि तथा असंख्य देशभक्तों के बलिदान से इटली एकीकरण का महायज्ञ पूर्ण हुआ।''

बिस्मार्क जर्मनी के एकीकरण का सर्वप्रमुख नायक था। जो कार्य इटली के एकीकरण में कावूर की कूटनीति, मैजिनी की व्यावहारिक बुद्धि एवं गैरीवाल्डी की तलवार ने मिलकर किया वह सम्पूर्ण कार्य जर्मनी के एकीकरण में एकमात्र व्यक्ति बिस्मार्क ने किया। 1871 ई. के फ्रांस–प्रशा युद्ध में फ्रांस को परास्त कर बिस्मार्क ने जर्मनी का एकीकरण सम्पन्न किया। फ्रेंच राजतंत्र की राजधानी वर्साय में 18 जनवरी, 1871 ई. को जर्मन साम्राज्य की घोषणा की गई। वर्साय राजमहल में उत्सव मनाया गया। जर्मनी ने प्रशा के राजा विलियम प्रथम को जर्मनी का प्रथम सम्राट चुना। यह फ्रांस का एक असह्य अपमान था। 10 मई, 1871 ई. की फ्रेंकफर्ट संधि द्वारा फ्रांस को भौगोलिक, राजनीतिक एवं आर्थिक रूप से पैरों तले रौंद दिया गया। इस संधि ने फ्रांस व जर्मनी के मध्य शत्रुता के स्थायी बीज बो दिये, कालान्तर में समस्त विश्व को इन दोनों देशों की शत्रुता का घातक परिणाम भुगतना पड़ा। समस्त विश्व को प्रथम एवं द्वितीय विश्वयुद्ध की विभीषिका से गुजरना पड़ा। करे कोई भरे कोई की कहावत चरितार्थ हुई।

बिस्मार्क ने भविष्य का सोचकर वर्तमान को तरजीह दी। अब चारों ओर यूरोप में बिस्मार्क की तूती गूँज रही थी। मेटरनिख युग का खाली स्थान बिस्मार्क युग द्वारा भरा गया। यूरोपीय राजनीति का केन्द्र आस्ट्रिया की राजधानी वियना से उठकर जर्मनी की राजधानी बर्लिन में आ गया।

अब समस्त विश्व की निगाहें बिस्मार्क पर केन्द्रित थीं। जर्मनी को आन्तरिक मजबूती प्रदान करने के लिए बिस्मार्क ने जो नीति अपनायी वह उसकी गृह नीति कहलायी।

बिस्मार्क फ्रांस से शत्रुता मोल ले चुका था। वह जानता था कि फ्रांस फ्रेंकफर्ट की संधि में हुये अपने अपमान का बदला अवश्य लेगा। इस तथ्य को ध्यान में रखकर उसने अपनी विदेशी नीति निर्धारित की।

1870 से 1890 ई. के बीच का समस्त विश्व का इतिहास बिस्मार्क की गृहनीति एवं विदेश नीति के अवलोकन का इतिहास था।

'ऐसे सम्राट आते है और चले जाते हैं, परन्तु जर्मनी के लिये ही नहीं अपितु समस्त यूरोप के लिये एक ही बिस्मार्क आया और अब भविष्य में उसके स्थान पर दूसरा नहीं आयेगा।'

4.7 मुख्य शब्दावली

- **गृह युद्ध** – एक ही राष्ट्र के अंदर संगठित गुटों (समूहों) के बीच में होने वाला युद्ध।
- **एकीकरण (राजनीतिक)** – सहयोग के लिए कई राजनीतिक संस्थाओं (राज्यों, दलों) को एक साथ लाने के लिए किए गए उपायों की एक श्रृंखला।
- **कूटनीति** – राष्ट्रों के आपसी व्यवहार में दांव–पेंच की छिपी हुई नीति।
- **समझौता** – विवाद आदि से संबंधित पक्षों का निपटारा या निर्णय।
- **संधि** – एक प्रकार का पत्र जिसमें मेलजोल, समझौता या संधि की शर्तें लिखी जाती हैं।
- **गृहनीति** – वे प्रशासनिक निर्णय जो राष्ट्र की सीमा के अंदर के मुद्दों से संबंधित होते हैं (उदाहरण– व्यापार, शिक्षा, ऊर्जा, स्वास्थ्य सेवा, कानून, प्राकृतिक संसाधन आदि)
- **विदेश नीति** – वह योजना या नीति जिसके अंतर्गत राष्ट्र अपने हितों एवं आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु अन्य राष्ट्रों से संबंधों का स्तर व दिशा तय करते हैं।

4.8 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास

लघु–उत्तरीय प्रश्न

1. अमेरिका के गृह युद्ध के कारण लिखिए?
2. अमेरिकी गृह युद्ध के परिणामों का वर्णन कीजिए।
3. अमेरिका में दास प्रथा पर प्रकाश डालिए।
4. अब्राहिम लिंकन पर एक संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।
5. इटली के एकीकरण की कोई दो प्रमुख समस्याएँ बताइए।
6. इटली के एकीकरण में विक्टर इमेन्युअल द्वितीय की भूमिका का वर्णन कीजिए।
7. इटली के एकीकरण में कावूर की भूमिका पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।
8. इटली के एकीकरण में गैरीबाल्डी का क्या योगदान था।
9. इटली के एकीकरण में ज्यूसफ मैजिनी की भूमिका का उल्लेख कीजिए।
10. जर्मनी के एकीकरण में प्रमुख बाधाएँ क्या थीं?
11. कार्ल्सवाद का अध्यादेश क्या था?
12. फ्रेंकफर्ट की संधि का संक्षिप्त मूल्यांकन कीजिए।
13. एम्स् के तार पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।

दीर्घ–उत्तरीय प्रश्न

1. अमेरिकी गृह युद्ध के कारण एवं परिणामों की विवेचना कीजिए।
2. ''अमेरिकी गृह युद्ध एक ऐसी शल्य चिकित्सा थी। जो काफी पीड़ादायक होते हुए भी एक राष्ट्र के स्वस्थ जीवन के लिए अत्यन्त आवश्यक थी।'' इस कथन की विवेचना कीजिए।
3. निम्न पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए–
   (i) अब्राहम लिंकन,
   (ii) अमेरिका में दास प्रथा,
   (iii) अमेरिकी गृह युद्ध के परिणाम।
4. इटली के एकीकरण के विभिन्न चरणों की विवेचना कीजिए।
5. इटली के एकीकरण के मार्ग की प्रमुख समस्याओं का वर्णन कीजिए।
6. कावूर तथा विक्टर इमैन्युअल द्वितीय के नेतृत्व में इटली के एकीकरण के आन्दोलन की विवेचना कीजिए।
7. जर्मनी के एकीकरण के मार्ग की प्रमुख बाधाओं की विवेचना कीजिए।
8. जर्मनी के एकीकरण के विभिन्न सोपानों का वर्णन कीजिए।
9. जर्मनी के एकीकरण में बिस्मार्क की भूमिका का मूल्यांकन कीजिए।
10. आस्ट्रो–प्रशियन युद्ध के कारण एवं परिणामों की विवेचना कीजिए।
11. 1870 ई. के फ्रेंको–प्रशियन युद्ध के कारण एवं परिणामों का वर्णन कीजिए।
12. ''बिस्कार्क आधुनिक जर्मनी का निर्माता था।'' इस कथन की विवेचना कीजिए।

4.9 सहायक पाठ्य सामग्री

- ए. डब्लू. वार्ड (सं), दि कैम्ब्रिज मॉडर्न हिस्ट्री, जिल्द 1 से 10, 1902
- सी.डी.एम. कैटलबी, ए हिस्ट्री ऑफ मॉडर्न टाइम्स, 1964
- सी.डी.हैजन, मॉडर्न यूरोपियन हिस्ट्री, 1938
- सी.एच. फाइप, ए हिस्ट्री ऑफ मॉडर्न यूरोप, 1880
- एच.ए.एल. फिशर, ए हिस्ट्री ऑफ यूरोप, 1939
- पार्थ सारथी गुप्ता, आधुनिक पश्चिम का उदय, 1992
- डेविड थामसन, डेमोक्रेसी इन फ्रांस : दि थर्ड रिपब्लिक, 1946
- जे. पी. टी. बरी, फ्रांस (1814–1940), 1949
- जे. एच. क्लेपहेम, इकॉनॉमिक डवलपमेण्ट ऑफ फ्रांस एण्ड जर्मनी (1815–1914), 1928
- एल. एल. स्माइडर , फ्रॉम बिस्मार्क टू हिटलर, 1935
- पार्थ सारथी गुप्ता, यूरोप का इतिहास, 1987

- जे.एच. हेज, पॉलिटिकल एण्ड कल्चरल हिस्ट्री ऑफ मॉडर्न भाग–1 और 2, 1936
- सी.जी. राबर्टसन, बिस्मार्क, 1947
- आर.डब्ल्यू. सेटन वाटसन, डिजरेली, ग्लेडस्टन एण्ड दि इस्टर्न क्वेश्चन, 1935, राइज ऑफ नेशनलिटी न बाल्कन, 1917
- वी.जे. परियार, इंग्लैंड रशा एण्ड दि स्टेट्स क्वेशन (1844–56), 1931
- वर्मा, दीनानाथ, आधुनिक एशिया का इतिहास, 1993 एवं अंतर्राष्ट्रीय संबंध, 1985
- हेतु सिंह बघेला, आधुनिक एशिया का इतिहास, 1996
- जी.पी. गूच, ए हिस्ट्री ऑफ यूरोप, 1946 एवं जर्मनी, 1925
- अहमद मनाजिर एवं सभ्रवाल एस.पी., आधुनिक यूरोप का इतिहास (1789–1950), विशाल पब्लिकेशन, दिल्ली, 1996
- एरख आयक, बिस्मार्क एण्ड द जर्मन एम्पायर, 1928
- ए.जे.पी. टेलर, बिस्मार्क दि मेन स्टेट्समैन, 1965
- पांडेय, वी.सी.–यूरोप का इतिहास, केदारनाथ रामनाथ, मेरठ, 1976
- शर्मा, एम.एल–यूरोप का इतिहास, कालिज बुक डिपो, जयपुर
- Grant at temperaley - Europe in the 19th-20th Century
- Lipson - Europe in the 19th, 20th Century
- Hazen, C.D - Modern Europe up to 1945
- Ketelbey, C.D.M - A history of modern Europe
- Ludwig, Email - Bismark
- राहुल सांकृत्यायन, मध्य एशिया का इतिहास, खण्ड–1, 1956
- राहुल सांकृत्यायन, मध्य एशिया का इतिहास, खण्ड–2, 1957
- बुद्ध प्रकाश, एशिया के सामाजिक और सांस्कृतिक इतिहास की रूपरेखा, हिंदी समिति, लखनऊ, 1971
- वर्मा दीनानाथ, एशिया का आधुनिक इतिहास, भारती भवन, पटना, 1988
- शर्मा अम्बिका प्रसाद, एशिया का इतिहास, ज्ञानदा प्रकाशन, नई दिल्ली, 1995
- शर्मा मथुरालाल, अमेरिका का इतिहास, रिसर्च पब्लिकेशन, जयपुर, 2002
- श्रीवास्तव ब्रजेश कुमार, विश्व इतिहास की विषयवस्तु, SBPD पब्लिकेशन हाउस, आगरा, 2007
- श्रीवास्तव ब्रजेश कुमार, चीन एवं जापान का इतिहास, SBPD, आगरा, 2007

इकाई 5 मध्यपूर्व का महत्व, यूरोपीय शक्तियों की प्रतिद्वंद्विता, जापान व चीन में उपनिवेशवाद व साम्राज्यवाद, प्रथम चीन–जापान युद्ध और ताइपिंग तथा अन्य विद्रोह

संरचना

5.0 परिचय
5.1 उद्देश्य
5.2 मध्यपूर्व का महत्व, मध्यपूर्व में यूरोपीय शक्तियों की महत्वाकांक्षाएं एवं प्रतिद्वंद्विता (1800 से 1890 ई. तक)
5.3 जापान में उपनिवेशवाद एवं साम्राज्यवाद – मेइजी पुनर्स्थापना एवं आधुनिकीकरण की प्रकिया
5.4 चीन में उपनिवेशवाद एवं साम्राज्यवाद : प्रथम एवं द्वितीय अफीम युद्ध, प्रथम चीन जापान युद्ध एवं ताइपिंग विद्रोह
5.5 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
5.6 सारांश
5.7 मुख्य शब्दावली
5.8 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
5.9 सहायक पाठ्य सामग्री

5.0 परिचय

मध्य काल में टर्की का साम्राज्य, जिसे ओटोमन एम्पायर' भी कहा जाता है, यूरोप का एक शक्तिशाली साम्राज्य था। क्षेत्रफल की दृष्टि से वह यूरोप में रूसी साम्राज्य के बाद, सबसे बड़ा था। मध्यपूर्व के बोस्निया, सर्बिया, यूनान, रोमानिया, बल्गेरिया आदि क्षेत्र ओटोमन साम्राज्य के अधीन आते थे। इस विशाल साम्राज्य के अन्तर्गत आने वाले निवासियों में भाषा, जाति, धर्म, रक्त आदि में कोई मेल न था। एशियायी तुर्क साम्राज्य के अधिकांश निवासी मुसलमान थे। जिनमें तुर्क, अरब और कुर्द प्रमुख थे। जिनका धर्म इस्लाम था। जबकि यूरोपीय तुर्की साम्राज्य में तुर्क अल्पसंख्यक थे और स्लाव जाति के ईसाई बहुसंख्यक थे। सर्बजाति के लोग सर्बिया, मोंटेनेग्रो, बोस्निया और हर्जगोाबीना में रहते थे। रोमन लोग रोमानिया, मोल्डेविया और वोलेशिया में, तथा ग्रीक जाति, यूनान में सम्पूर्ण बाल्कन प्रायद्वीप में बिखरी हुई बस्तियों में आर्मेनियन और यहूदी रहते थे। वस्तुतः यह जातिगत विषमता भी पूर्वी साम्राज्य का प्रमुख आधार थी। ओटोमन साम्राज्य के अन्तर्गत आने वाली अधिकांश जातियाँ भाषा, धर्म, संस्कृति में तुर्की से पूर्णतः भिन्न थीं। तुर्कों ने इन्हें अपने साथ आत्मसात् करने का कोई प्रयास नहीं किया। उलटे इनका शोषण ही किया। इसका परिणाम छोटे–मोटे विद्रोहों एवं पारस्परिक संघर्षों में सामने आया।

1867 ई. में मेइजी पुनर्स्थापना के पश्चात् जापान का कायाकल्प हो गया। मेइजी पुनर्स्थापना जापान के इतिहास की युगांतरकारी घटना सिद्ध हुई। जापान ने आधुनिकीकरण की ओर कदम बढ़ा दिये। कमोडोर मेथ्यू सी–पेरी ने जापान के द्वार

पश्चिमी शक्तियों के लिए खोले। जापान में पश्चिमी शक्तियों ने वर्चस्व स्थापित करने के प्रयास किये, मगर अन्य उपनिवेशों की भाँति पश्चिमी शक्तियों की दाल जापान में न गल सकी। आधुनिकीकरण के पश्चात् जापान में सैन्यवाद का उत्कर्ष हुआ। पूर्व में शीघ्र ही जापान एक महाशक्ति बनकर उभरा। 1894–95 में उसने चीन को परास्त किया तो, 1904–05 में रूस को। जापानी बौने द्वारा चीन जैसे विशालकाय भालू एवं रूसी दैत्य को परास्त करने से उसकी विश्व में प्रतिष्ठा बढ़ गई। हिटलर एवं मुसोलिनी जैसे अधिनायकों के साथ गठबन्धन रोम–बर्लिन–टोकियो धुरी का निर्माण कर उसने मित्र राष्ट्रों को सशक्त चुनौती दी। इस चुनौती को नेस्तनाबूद करने के लिए विश्व इतिहास में प्रथम बार अमेरिका ने परमाणु बम का प्रयोग किया। उक्त समस्त घटनाक्रम की विस्तृत एवं तथ्य परक विवेचना इस अध्याय में की जाएगी।

एशिया के सर्वप्रमुख देश चीन, जापान एवं भारत हैं। यूरोपीय देशों ने एशिया के प्रायः सभी देशों को अपनी साम्राज्यवादी महत्वांकाक्षा का शिकार बनाया और अपने उपनिवेश स्थापित किये। जब इन उपनिवेशों ने जनता का आर्थिक शोषण करने के बहुविधि प्रयास किये, तो एशिया में उपनिवेशवाद के विरुद्ध प्रतिरोध आरम्भ हो गया। चीन में अफीम युद्ध एवं बॉक्सर विद्रोह हुआ। जापान में मेइजी पुनर्स्थापना के पश्चात् सैन्यवाद का विकास हुआ एवं आर्थिक प्रगति भी सम्पन्न हुई। भारत में 1757 ई. में प्लासी के युद्ध से 100 वर्षो तक अंग्रेजों ने भारतीयों का जो शोषण किया, उसके सशक्त प्रतिरोध की ज्वाला 1857 ई. की क्रांति में दृष्टिगोचर हुई। इस इकाई में हम चीन में उपनिवेशवाद एवं साम्राज्यवाद का विस्तृत अध्ययन करेंगे।

अंग्रेजों ने चीन में अपना वर्चस्व स्थापित करने के लिए वहाँ के नागरिकों को अफीम का आदी बनाया। चीन में अफीम की माँग दिन–प्रतिदिन बढ़ने लगी। इससे चीन में आर्थिक व नैतिक संकट उपस्थित हो गया। फलतः चीन की मंचू सरकार को अफीम के व्यापार पर प्रतिबन्ध लगाना पड़ा। अंग्रेजों ने इसका विरोध किया। परिणामस्वरूप चीन को ब्रिटेन के साथ दो अफीम युद्ध लड़ने पड़े। मंचू सरकार इन युद्धों में परास्त हुई। अतः उसे चीन में ताइपिंग व बॉक्सर विद्रोहों का सामना करना पड़ा। इस सबकी विस्तृत विवेचना हम यहाँ प्रस्तुत कर रहे हैं।

इस इकाई में हम मध्यपूर्व के महत्व एवं इसके संबंधित पक्षों, जापान में उपनिवेशवाद एवं साम्राज्यवाद, मेइजी पुनर्स्थापना तथा आधुनिकीकरण की प्रक्रिया, चीन में उपनिवेशवाद एवं साम्राज्यवाद, अफीम युद्ध, प्रथम चीन जापान युद्ध एवं ताइपिंग विद्रोह से संबद्ध पक्षों का विस्तारपूर्वक अध्ययन करेंगे।

5.1 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप–

- मध्यपूर्व के महत्व, मध्यपूर्व में यूरोपीय शक्तियों की महत्वाकांक्षाएं एवं प्रतद्वंद्विता का अध्ययन करेंगे।
- जापान में उपनिवेशवाद एवं साम्राज्यवाद, मेइजी की पुनर्स्थापना एवं आधुनिकीकरण की प्रक्रिया को समझ पाएंगे;
- चीन में उपनिवेशवाद एवं साम्राज्यवाद, प्रथम एवं द्वितीय अफीम युद्ध, प्रथम चीन जापान युद्ध एवं ताइपिंग विद्रोह से संबंधित सभी पक्षों का विधिवत विवेचन कर पाएंगे।

5.2 मध्यपूर्व का महत्व, मध्यपूर्व में यूरोपीय शक्तियों की महत्वाकांक्षाएं एवं प्रतिद्वंद्विता (1800 से 1890 ई. तक)

19वीं शताब्दी के अन्त में मध्यपूर्व में तुर्की साम्राज्य की निर्बलता एवं उसके आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप (विदेशी) के कारण तुर्की का युवा वर्ग दुःखी था। यह वर्ग यूरोप में व्याप्त राष्ट्रीय भावनाओं से प्रेरित था और पाश्चात्य शिक्षा एवं विचारधारा से प्रभावित था। इस वर्ग का विचार था कि जब तक तुर्की साम्राज्य में–

(a) पाश्चात्य सभ्यता एवं संस्कृति का विकास नहीं होगा।

(b) तुर्की शासन प्रणाली एवं सामाजिक व्यवस्था में क्रान्तिकारी परिवर्तन नहीं होगा।

तब तक तुर्की शक्तिशाली एवं प्रगतिशील राष्ट्र नहीं बन सकता 1876 में इसी भावना से प्रेरित होकर तुर्की में राजनीतिक क्रान्ति हुई और अब्दुल हमीद गद्दी पर बैठा। परन्तु अब्दुल हमीद ने भी युवा तुर्कों को निराश किया। अतः राष्ट्रवादी युवा तुर्कों को देश के बाहर रह कर राष्ट्रवादी संगठनों की स्थापना करनी पड़ी।

1890 में 'द कमेटी ऑफ यूनियन एण्ड प्रोग्रेस', 1905 में 'वतन' नामक संस्था का गठन, 'फादरलैण्ड एण्ड लिबर्टी' तथा आटोमन सोसाइटी ऑफ लिबर्टी' की स्थापना इसका ही परिणाम था।

विदेशों में स्थापित संस्थाओं ने शीघ्र ही तुर्की में संस्थाओं का स्थानान्तरण किया और नियाजी बे तथा अनवर बे के नेतृत्व में 23 जुलाई 1908 ई. में क्रान्ति की। सुल्तान अब्दुल हमीद ने क्रान्ति से डरकर 1876 ई. के उदार संविधान को लागू करने की घोषणा की। परन्तु तुर्की में स्थापित संवैधानिक व्यवस्था–

(i) स्थान–स्थान पर हुये विद्रोहों

(ii) युवा तुर्क नेताओं के मतभेदों

(iii) सुल्तान द्वारा पुनः प्रतिक्रियावादी शासन स्थापित करने के कारण असफल हो गयी।

अप्रैल 1909 में युवा तुर्कों द्वारा की गयी पुनः क्रान्ति के परिणामस्वरूप अब्दुल हमीद का स्थान मुराद पंचम ने लिया। मुराद पंचम के मंत्रिमण्डल में युवा तुर्कों का प्रभुत्व था। उन्होंने सैनिक अधिनायक तन्त्र की स्थापना की और उग्र राष्ट्रीयता की भावना पर आधारित तुर्कीकरण की नीति का अवलम्बन किया। इसके घातक परिणाम हुये। युवा तुर्क अपने वचनों के प्रति सच्चे शिष्य नहीं हुये। उनकी तुर्कीकरण की नीति के कारण बाल्कन प्रायद्वीप में युद्ध हुये। उन्होंने शासकों की जाति के रूप में अपने आप को सिद्ध करने की कोशिश की। फलतः उन्होंने जैसा बीज बोया वैसा ही फल पाया।

युवा तुर्क आन्दोलन की महत्ता इसमें है कि इसके कारण तुर्क राष्ट्रीयता का उदय हुआ, युवा तुर्क पहली बार संगठित हुये। तुर्की में जनतन्त्रात्मक शासन पद्धति का आरम्भ हुआ। सेना में सुधारवादी प्रगति को जन्म मिला तथा क्रान्तिकारी सुधारों की पृष्ठभूमि तैयार हुई।

बर्लिन सम्मेलन का प्रभाव

बर्लिन सम्मेलन के निर्णायकों ने बाल्कन क्षेत्र के मानचित्र में जो परिवर्तन किये उसमें अनेक दोष थे–

(1) बर्लिन सम्मेलन के निर्णायकों का मुख्य उद्देश्य पूर्वी समस्या का स्थायी एवं सन्तोषजनक समाधान खोजना था। परन्तु यह सम्मेलन ऐसा समाधान खोजने में असफल रहा।

(2) प्रत्येक बाल्कन राज्य असन्तुष्ट हुआ। डेविड थाम्पसन के अनुसार बर्लिन कांग्रेस के निर्णयों का विशिष्ट परिणाम यह निकला कि प्रत्येक राष्ट्र और अधिक चिन्तित और असन्तुष्ट हो गया।

(अ) बोस्निया और हर्जगोवीना का प्रशासन ऑस्ट्रिया को देने से सर्बिया रुष्ट हो गया।

(ब) वृहत् बल्गारिया के विभाजन से बल्गारिया की राष्ट्रीय आकांक्षा ध्वस्त हो गयी। पूर्वी रोमानिया से उसका विभाजन राष्ट्रीयता की शिक्षाओं की उपेक्षा था।

(स) रोमानिया को अपना उपजाऊ प्रदेश बेसर्बिया रूस को देना पड़ा।

(द) यूनान ने थेसली, एपीरस और क्रीट की माँग की थी परन्तु उसे निराश होना पड़ा।

(3) बड़ी समस्याओं का जन्म

(अ) ऑस्ट्रिया को स्लाव क्षेत्र का प्रशासन देना पड़ा।

(ब) नोबी बाजार के संजक में ऑस्ट्रिया को सेना रखने का अधिकार मिला इसके कारण ही ऑस्ट्रिया एवं सर्बिया में तनाव बढ़ा जो अन्ततः प्रथम विश्वयुद्ध का तात्कालिक कारण बना।

(स) रूस की महत्वाकांक्षायें रोकी नहीं जा सकीं।

F.V. वेन्स के अनुसार

''सेन स्टीफनों में जो प्रतिष्ठा रूस को प्राप्त हुई थी उसे बर्लिन सन्धि ने धो दिया।''

(4) तुर्की सम्बन्धी ब्रिटेन की असफल नीति–इस विषय में लॉर्ड सेलसबरी ने कहा था, "In the Congress of Berlin Great Britain Backed the wrong horse." इंग्लैंड ने गलत घोड़े पर दाव लगाया क्योंकि इंग्लैंड तुर्की का विघटन हमेशा के लिये नहीं रोक पाया। तुर्की ने आर्मीनिया पर अत्याचार किये।

(5) ससम्मान शान्ति नहीं– बर्लिन से लौटने पर डिजरायली का यह कथन कि, 'मैं ससम्मान शांति लाया हूँ' (I have brought you back peace but a peace I hope with honour) निरर्थक साबित हुआ।

(i) रूस के अफगानिस्तान की ओर विस्तार की नीति से भारत के उत्तर पश्चिम सीमान्त की सुरक्षा की नयी समस्या पैदा हुई।

(ii) मेसीडोनिया के ईसाइयों पर तुर्कों का कुशासन जारी रहा।

(iii) तुर्की से साइप्रस को लेने के बावजूद ब्रिटेन उसे जिब्राल्टर नहीं बना पाया।

(iv) सम्मेलन में ऑस्ट्रिया के हितों को अनावश्यक मान्यता दी गयी इससे समस्या और जटिल हुई।

(6) निर्बल राष्ट्रों की अवहेलना– सम्मेलन में भाग लेने वाले बड़े राष्ट्रों ने अपनी स्वार्थसिद्धी के लिये छोटे प्रदेशों को,

(i) शतरंज के मोहरों की भाँति प्रयोग किया।

(ii) निर्बल राष्ट्रों की न्यायपूर्ण माँगों की अवहेलना की।

(7) ईमानदार दलाल का दावा गलत– बिस्मार्क ने ऑस्ट्रिया के हितों की रक्षा की खातिर रूसी हितों को तिलांजलि दी। इस प्रकार उसका ईमानदार दलाल की भूमिका निभाने का दावा गलत साबित हुआ।

(8) अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों पर प्रभाव

(i) इंग्लैंड व रूस के मध्य दीर्घकालीन तनाव बना रहा।

(ii) रूस जर्मनी से विमुख हो गया। अतः त्रिराष्ट्र संघ टूट गया।

(iii) 1879 की ऑस्ट्रिया जर्मन सन्धि इसका परिणाम थी।

(iv) ऑस्ट्रिया–रूस, ऑस्ट्रिया–सर्बिया, बल्गारिया–सर्बिया में तनाव कायम हुआ।

(v) यूरोप में गुटबन्दी प्रणाली का आरम्भ हुआ।

यद्यपि बर्लिन सम्मेलन के कारण 1878 से 1913 तक बाल्कन प्रायःद्वीप दीर्घकाल तक युद्धों से मुक्त रहा इसीलिये प्रो. टेलर ने ''बर्लिन कांग्रेस को एक जल विभाजक रेखा माना।''

परन्तु यह भी सत्य है कि इस सम्मेलन ने महायुद्ध की ओर कदम बढ़ाया। इसीलिये ब्रिटिश राजदूत लियर्ड ने लिखा है।

''टेबल के आस–पास बैठ कर नक्शे पर किसी साम्राज्य का विभाजन करना सरल है किन्तु उसे कार्यान्वित करना काफी कठिन है।''

मध्यपूर्व में विभिन्न प्रमुख यूरोपीय शक्तियों की महत्वाकांक्षाएं एवं प्रतिद्वंद्विता

मध्यपूर्व में विभिन्न प्रमुख यूरोपिय शक्तियों की महत्वाकांक्षाएं एवं प्रतिद्वंद्विता निम्नवत् थीं –

रूस की महत्वाकांक्षाएं–1774 ई. में कुचुक केनार्जी (Kuchuk Kainarji) की सन्धि के अन्तर्गत तुर्की के सुल्तान द्वारा रूस को आजोव (Ajov) का बन्दरगाह तो दे ही दिया था। साथ ही काला सागर में रूस के व्यापारिक जहाजों को आने–जाने का अधिकार भी प्रदान कर दिया गया था। साथ ही बाल्कन क्षेत्र में रहने वाले ग्रीक चर्च के अनुयायी ईसाइयों पर रूस का संरक्षण भी स्वीकार कर लिया गया था। कालान्तर में 1792 ई. की जासी की सन्धि के अंतर्गत नीस्टर नदी तक का क्षेत्र भी रूस की सीमा में आ गया था। इस प्रकार अठारहवीं सदी के अन्त तक आते–आते रूसी दैत्य

की भूख दक्षिण की ओर निरन्तर बढ़ती गयी। वस्तुतः तुर्की के प्रभाव क्षेत्र में आने वाले बाल्कन प्रायद्वीय में रूसी स्वार्थ निम्नवत् थे–

(1) रूस एक महत्वाकांक्षी देश था। उसके पास व्यापार हेतु कोई समुद्र तट नहीं था। अतः वह काला सागर में अपना प्रभुत्व स्थापित करना चाहता था।

(2) डार्डेनलीज (Dardanelles) एवं बास्फोरस (Bosphorus) पर भी रूस की गिद्ध दृष्टि केन्द्रित थी।

(3) रूस तथा बाल्कन क्षेत्र के निवासी समान नस्ल (स्लाव) एवं समान चर्च (ग्रीक) के अनुयायी थे। अतः रूस बाल्कन क्षेत्र के ग्रीक चर्चानुयायी स्लावों की तुर्की से रक्षा करना अपना परम कर्तव्य मानता था।

उपर्युक्त कारणों से ही रूसी दैत्य निरन्तर दक्षिण की ओर मरणासन्न तुर्की को हजम करने हेतु बढ़ता रहा।

इंग्लैंड की महत्वाकांक्षाएं–तुर्की के विघटन और रूस की महत्त्वाकांक्षाओं की पूर्ति का अर्थ था, इंग्लैंड के पूर्वी साम्राज्य को खतरा उत्पन्न होना, क्योंकि रूस द्वारा तुर्की का स्थान ले लेने से रूस की सीमाएँ इंग्लैंड के भारतीय साम्राज्य से टकराने लगती। अतः इंग्लैंड के राजनीतिज्ञ रसैल ने कहा भी था कि ''यदि रूस को डेन्यूब पर नहीं रोका गया तो हमें उसे सिन्धु पर रोकना पड़ेगा।'' अतः इंग्लैंड अपनी दूरदर्शिता पूर्ण सोच के कारण अपने पूर्वी साम्राज्य और व्यापार की रक्षा के लिए यथासम्भव मरणासन्न तुर्की को एक अभेद दीवार के रूप में बनाये रखना चाहता था।

ऑस्ट्रिया की महत्वाकांक्षाएं–ऑस्ट्रिया रूस का निकटतम पड़ोसी था। अतः वह कदापि नहीं चाहता था कि तुर्की को नेस्तनाबूद करके रूस शक्तिशाली बने। डार्डेनलीज, बास्फोरस एवं डेन्यूब घाटी में रूस की महत्वाकांक्षाओं का पता चलने पर ऑस्ट्रिया रूस का विरोधी हो गया। अतः ऑस्ट्रिया भी रूस की महत्वाकांक्षाओं को रोकने के लिये तुर्की के विघटन के पक्ष में नहीं था।

फ्रांस की महत्वाकांक्षाएं–नेपोलियन बोनापार्ट ने सर्वप्रथम फ्रांस के लिए तुर्की साम्राज्य की उपयोगिता की ओर लोगों का ध्यान आकर्षित किया था। फ्रांस अपनी औपनिवेशिक महत्वाकांक्षाओं के मद्देनजर तुर्की के अफ्रीकी साम्राज्य में व्यापारिक सुविधाएँ प्राप्त करना चाहता था। तुर्की साम्राज्य के अन्तर्गत पेलेस्टाईन में स्थित जेरूसलम के पवित्र तीर्थ स्थान में शाताब्दियों से ग्रीक एवं कैथोलिक संन्यासी रहते थे। तुर्क सम्राट सुलेमान ने 1535 ई. में पवित्र स्थानों के संरक्षण का काम कैथोलिकों को प्रदान कर फ्रांस को रोमन ईसाइयों का संरक्षक स्वीकार किया था। फ्रांस की क्रान्ति (1789 ई.) के समय से, कैथोलिकों ने यहाँ रुचि लेना बन्द कर दिया और उन पवित्र स्थानों पर यूनानी सन्यासियों (Greek Monks) का अधिकार हो गया। यूनानी संन्यासियों (ग्रीक चर्च) का मुखिया रूस था। अतः पवित्र स्थानों के संरक्षण का प्रश्न भी फ्रांस एवं रूस के मध्य मतभेद का केन्द्र था। अतः फ्रांस कैथोलिक (Latin) चर्च के अनुयायियों की रक्षा को अपनी प्रतिष्ठा का बिन्दु बनाकर तुर्की में अपना प्रभुत्व बनाये रखना चाहता था।

इस प्रकार यूरोप के सभी देश बाल्कन राज्यों की मुक्ति का नारा लगाकर अपने स्वार्थों को साधना चाहते थे परन्तु उनके स्वार्थ आपसी प्रतिद्वन्द्विता और टकराव के बिना पूरे नहीं हो सकते थे। इसका परिणाम यह हुआ कि, बाल्कन राज्यों की मुक्ति

के पेचीदा मामले को यूरोपीय महाशक्तियों ने निहित स्वार्थों के वशीभूत और अधिक पेचीदा बना दिया।

बाल्कन समस्या

तुर्की साम्राज्य के अधीनस्थ मध्यपूर्व का भाग बाल्कन प्रायःद्वीप कहलाता था। बाल्कन प्रायद्वीप में बोस्निया, हर्जगोवीना, सर्बिया, बल्गारिया, यूनान, माल्डेविया, बालेशिया, मोंटेनेग्रो आदि क्षेत्र आते हैं।

बाल्कन प्रायद्वीप के निवासी स्लाव नस्ल के थे, ईसाई धर्म को मानते थे, ग्रीक चर्च के अनुयायी थे। तुर्की सुल्तान ने बाल्कन प्रायद्वीप में निवास करने वाले विभिन्न धर्म एवं जातियां को एकजुट रखने व उनकी भावनाओं को समझने का कभी प्रयास नहीं किया। उनके प्रति उपेक्षा और शत्रुता का व्यवहार किया। इसी कारण 1789 ई. की फ्रांसीसी क्रान्ति से प्रभावित होकर बाल्कन राज्यों ने तुर्की की दासता से मुक्ति हेतु संघर्ष आरम्भ किया। दूसरी ओर यूरोप के बड़े राष्ट्रों ने निहित स्वार्थों के वशीभूत बाल्कन समस्या में रुचि लेना आरम्भ किया।

बाल्कन राज्यों द्वारा तुर्की शासन से मुक्त होने के लिये जो प्रयास आरम्भ किये उसके कारण ही सर्बिया और यूनान को स्वतन्त्रता मिली तथा 1854 से 1856 ई. तक क्रीमिया युद्ध लड़ा गया।

बाल्कन समस्या को सुलझाने के लिये यूरोपीय राष्ट्रों के प्रयासों के बावजूद जब समस्या नहीं सुलझी व तुर्की अत्याचार जारी रहे तब रूस ने बाल्कन राज्यों के पक्ष में तुर्की से 1877–78 का युद्ध लड़ा और उसे सेन स्टीफनों की सन्धि हेतु विवश किया। इस सन्धि से रूस का बाल्कन राज्यों पर प्रभावपूर्ण नियन्त्रण स्थापित हो गया। यूरोपीय राज्यों से रूस की यह सफलता देखी नहीं गयी। अतएव रूस को सेन स्टीफनों की सन्धि पर पुनर्विचार के लिये बर्लिन सम्मेलन में आने पर विवश किया गया।

बर्लिन सम्मेलन भी बाल्कन राज्यों को संतुष्ट नहीं कर पाया बल्कि उससे बाल्कन में नवीन समस्यायें उभर कर सामने आयीं। तुर्की सुल्तान ने भी अपने अधीनस्थ बाल्कन क्षेत्रों पर अत्याचारों का सिलसिला जारी रखा। फलतः बाल्कन राज्यों में उत्पन्न असन्तोष से स्थिति विस्फोटक हो गयी।

युवा तुर्क आन्दोलन ने बाल्कन राज्यों में एक आशा की किरण जगायी थी परन्तु शीघ्र ही उनकी तुर्कीकरण की नीति ने बाल्कन राज्यों को एक होने पर विवश कर दिया।

मेसीडोनिया, आर्मीनिया और अल्बानिया ने अपने ईसाई भाइयों की रक्षा के लिये बाल्कन राज्यों के साथ आपसी मतभेद भुलाते हुये बाल्कन संघ की स्थापना की। परिणामस्वरूप प्रथम बाल्कन युद्ध हुआ। इस युद्ध में तुर्की पराजित हुआ और उसे लन्दन की सन्धि द्वारा अपने अनेक भाग बाल्कन संघ को सौंपने पड़े।

महान विजयों के बाद तो सब कुछ ठीक हो जाना चाहिये था। परन्तु लन्दन सन्धि द्वारा प्राप्त भू–भागों के बंटबारे के प्रश्न को लेकर बाल्कन राज्यों में मतभेद हो गये। मेसीडोनिया के विभाजन, सर्बिया के समुद्र तटीय प्रदेश और अल्बानिया के स्वतन्त्र राज्य के निर्माण के प्रश्न को लेकर बाल्कन राज्यों के आपसी मतभेद इतने उग्र हुये कि ये आपस में ही उलझ गये।

द्वितीय बाल्कन युद्ध का अन्त जो बल्गारिया के विरुद्ध हुआ था। वह भी बाल्कन समस्या नहीं सुलझा पाया। पराजित बल्गारिया ने शत्रु बाल्कन राज्यों से बदला लेने के लिये सर्बिया विरोधी शक्तियों से हाथ मिलाया। परिणामस्वरूप जब प्रथम युद्ध आरम्भ हुआ तब बाल्कन राज्य भी 2 भागों में बँट गये और एक–दूसरे के खून के प्यासे हो गये।

बाल्कन युद्ध

जॉन मार्ले ने लिखा है, ''दो विभिन्न जाति, दो विपरीत धर्म, दो पृथक्–पृथक् स्वार्थों के पारस्परिक संघर्ष से उत्पन्न जटिल तथा परिवर्तनशील समस्या को पूर्वी समस्या कहा जाता है।'' बाल्कन में राष्ट्रीयता के उदय और यूरोपीय राज्यों के हस्तक्षेप का परिणाम जब बाल्कन राज्यों के हित में नहीं हुआ तो उसका तत्जनित परिणाम बाल्कन युद्ध के रूप में सामने आया।

प्रथम बाल्कन युद्ध (1912–13)

युद्ध के कारण (Causes of the War)

(1) बर्लिन सन्धि के पश्चात् ही तुर्की का विघटन आरम्भ हो गया था।

(2) ट्यूनिश, मिश्र, बोस्निया, हर्जगोवीना, बल्गारिया, क्रीट, मोरक्को, त्रिपोली लगभग सभी तुर्की के हाथ से निकल चुके थे। तुर्की के विघटन ने बाल्कन राज्यों को प्रेरणा दी।

(3) युवा तुर्कों की तुर्कीकरण की नीति ने गैर तुर्की राज्यों को असन्तुष्ट कर दिया। मेसीडोनिया, आर्मीनिया, अल्बानिया पर हो रहे अत्याचारों ने (तुर्की द्वारा) बाल्कन राज्यों में एक होने की भावना पैदा की।

(4) बाल्कन राज्यों में अपनी संस्कृति और जाति के अस्तित्व की रक्षा के प्रश्न ने उनमें राष्ट्रीयता की भावना जाग्रत की।

(5) बाल्कन राज्यों में सबसे महत्वपूर्ण मतभेद मेसीडोनिया को लेकर थे। परन्तु शीघ्र ही उन्होंने अपनी दुर्बलता को दूर कर एकता की ओर कदम बढ़ाया।

(6) बाल्कन राज्यों की एकता में सर्बिया और बल्गारिया के पारस्परिक विरोधी हित सबसे बड़ी बाधा थी। परन्तु तुर्की अधीनता के कटु अनुभवों ने साझेदारी की भावना का विकास किया। परिणामस्वरूप 1912 ई. में सर्बिया–बल्गारिया, यूनान–बल्गारिया, के मध्य सन्धि हुई और मोंटेनीग्रो ने सहयोग का वचन दिया।

(7) बाल्कन राज्यों की यह धारणा थी कि विदेशी हस्तक्षेप उन्हीं के पक्ष में होगा।

बाल्कन युद्ध (1912–13)

बाल्कन संघ की स्थापना से तुर्की के विरुद्ध युद्ध अनिवार्य हो गया। बाल्कन राज्यों ने यूरोपीय राज्यों की, चेतावनी की उपेक्षा करते हुये तुर्की को चारों ओर से घेर लिया। फलतः तुर्की की पराजय हुई और उसके पास यूरोप में कुस्तुनतुनिया, एड्रियानोपल, जनीना और स्कंदरी शेष रह गये।

यद्यपि बड़ी शक्तियों के हस्तक्षेप से कुछ समय के लिये युद्ध विराम हुआ तथापि मार्च 1913 में पुनः युद्ध आरम्भ हो गया और तुर्की के पास केवल एड्रियानोपल शेष रह गया।

लन्दन की सन्धि 30 मई 1913

(1) कुस्तुनतुनिया तथा उसके पश्चिम का भाग तुर्की के पास रहा।

(2) शेष यूरोपीय भाग तुर्की ने बाल्कन राज्यों को दे दिया।

(3) यूनान को क्रीट एवं दक्षिणी मेसीडोनिया का भाग प्राप्त हुआ।

(4) सर्बिया को उत्तर और मध्य मेसीडोनिया का क्षेत्र प्राप्त हुआ।

(5) बल्गारिया को थ्रेस तथा इजियन सागर का तटवर्ती भाग मिला।

(6) अल्बानिया के स्वतन्त्र राज्य का निर्माण हुआ जिसकी सीमायें भविष्य में निश्चित की जानी थीं।

द्वितीय बाल्कन युद्ध

लन्दन सन्धि दीर्घकाल तक लागू नहीं रही। इससे उत्पन्न असन्तोष के कारण जून 1913 ई. में द्वितीय बाल्कन युद्ध आरम्भ हुआ।

युद्ध के कारण

(1) तुर्की से प्राप्त भू–भागों के बँटबारे के प्रश्न को लेकर बाल्कन राज्यों में मतभेद पैदा हो गये।

(2) प्रत्येक राज्य मेसीडोनिया का अधिक से अधिक भाग हड़प लेना चाहता था।

(3) अल्बानिया राज्य के निर्माण के कारण सर्बिया को समुद्र तट प्राप्त न हो सका।

(4) यूनान की सेलोनिका एवं रोमानिया की सेलिस्ट्रिया की माँग को बल्गारिया ने अस्वीकार कर दिया था।

(5) बल्गारिया का यह तर्क कि तुर्की को परास्त करने में उसने निर्णायक भूमिका निभायी है अन्य बाल्कन राज्यों ने स्वीकार नहीं किया।

(6) अल्बानिया राज्य का निर्माण ऑस्ट्रिया के हस्तक्षेप के कारण हुआ था। इसी कारण ने द्वितीय बाल्कन युद्ध की पृष्ठभूमि तैयार की।

(7) बाल्कन संघ के टूटने में तुर्की की रुचि थी।

(8) सर्बिया को रूस एवं बल्गारिया को ऑस्ट्रिया ने भड़का कर तनाव को बढ़ाने में मदद की।

युद्ध

मेसीडोनिया के विभाजन का जब सन्तोषजनक परिणाम नहीं निकला तो द्वितीय बाल्कन युद्ध आरम्भ हो गया। इसमें एक ओर बल्गारिया था तो दूसरी ओर शेष बाल्कन राज्य तथा तुर्की थे। परिणामस्वरूप बल्गारिया की पराजय हुई।

बुखारेस्ट की सन्धि 10 अगस्त 1913

(1) रोमानिया को दोग्रूजा और सेल्सट्रिया मिला।

(2) सर्बिया को सम्पूर्ण उत्तरी मेसीडोनिया और मोनास्ट्रीट क्षेत्र प्राप्त हुआ।

(3) यूनान को दक्षिणी मेसीडोनिया, एपरिस, सेलोनिका और केवेला बन्दरगाह प्राप्त हुये।

(4) मोंटेनेग्रो को नोबी बाजार के संजक का पश्चिमी भाग प्राप्त हुआ।

(5) तुर्की को एड्रियानोपल और थ्रेस का अधिकांश भाग प्राप्त हुआ।

(6) बल्गारिया के पास सीमित क्षेत्र रहा जिसमें एजियन सागर तक जाने का गलियारा सम्मिलित था।

बाल्कन युद्धों का परिणाम

(1) तुर्की के यूरोपीय साम्राज्य का अन्त हो गया एवं प्रतिष्ठा गिरी।

(2) सर्बिया, यूनान, रोमानिया मोंटेनेग्रो की सीमाओं में वृद्धि हुई।

(3) बल्गारिया बुखारेस्ट की सन्धि को भुला नहीं सका। परिणामस्वरूप वह प्रथम विश्व युद्ध में केन्द्रीय शक्तियों के साथ लड़ा।

(4) लन्दन सन्धि द्वारा ऑस्ट्रिया सर्बिया में जो पारस्परिक द्वेष बढ़ा उसके परिणामस्वरूप ही एक सर्ब उग्रवादी द्वारा ऑस्ट्रियन युवराज ड्यूक फ्रांसिस फर्डीनेण्ड की हत्या हुई। जिसने प्रथम विश्व युद्ध की तुरन्त चिन्गारी का कार्य किया।

(5) बुखारेस्ट की सन्धि के बाद भी विजेता व पराजित दोनों समझते थे कि क्षेत्रीय निर्णय स्थायी नहीं होंगे और पुनः युद्ध होगा और मानचित्र में पुनः परिवर्तन होगा।

बाल्कन युद्ध से अधिक 1914 के प्रथम विश्व युद्ध को प्रभावित करने वाली दूसरी कोई घटना नहीं थी।

बोस्निया संकट

बोस्निया और हर्जगोवीना तुर्क अधीनता में रहने वाले क्षेत्र थे। यहाँ कई वर्षों तक शासन के सूत्र मुसलमान सामंतों के हाथ में रहे और यहाँ की कृषक ईसाई जनता को उनके अनगिनत अत्याचार सहन करने पड़े। 1851 के बाद यहाँ मुसलमान जमींदारों के शासन सम्बन्धी अधिकार समाप्त कर दिये गये व तुर्की अधिकारियों के हाथ में प्रबन्ध आया। 1871 में बोस्निया स्थित ब्रिटिश वाणिज्यदूत ने लिखा था कि यहाँ घूसखोरी और भ्रष्टाचार का बोलबाला है, तुर्क और ईसाई झगड़े में मुसलमानों के साथ खुला पक्षपात किया जाता है।

1874 में बोस्निया की स्थिति और अधिक खराब तब हुई जबकि एक ओर तो वहाँ फसल खराब हुई और दूसरी ओर तुर्की अधिकारियों ने कठोरता से कर संग्रह किया। परिणामस्वरूप वहाँ विद्रोह के अंकुर प्रस्फुटित हुये जिन्हें बाल्कन राज्यों ने समर्थन दिया। फलतः रूस तुर्की युद्ध 1877–78 हुआ। यद्यपि सेन स्टीफनों की सन्धि के अनुसार सुल्तान ने बोस्निया में सुधार करने का वचन दिया तथापि उसने कभी इसका पालन नहीं किया।

बर्लिन सम्मेलन में जो निर्णय लिये गये उनका बोस्निया की राजनीति पर गहरा प्रभाव पड़ा। यहाँ तुर्की प्रभाव यथावत रहा। किन्तु वहाँ का प्रशासकीय नियन्त्रण अनिश्चित काल के लिये ऑस्ट्रिया को सौंप दिया गया।

यह स्थिति 1908 ई. तक यथावत रही। 1908 में ऑस्ट्रिया ने बोस्निया तथा हर्जगोवीना का अधिग्रहण करने की इकतरफा घोषणा की। इस घोषणा की यूरोप के

बड़े राज्यों में तीव्र प्रतिक्रिया हुई। इंग्लैंड, रूस, इटली तथा तुर्की ने ऑस्ट्रिया का विरोध किया एवं ऑस्ट्रिया से आने वाले सामान का बहिष्कार किया।

बोस्निया के अधिग्रहण की सर्वाधिक प्रतिक्रिया सर्बिया और मोंटेनेग्रो में हुई। सर्बिया में 'ऑस्ट्रिया का नाश हो' के नारे बुलन्द हुये।

13 अक्टूबर 1908 को इंग्लैंड और रूस ने बोस्निया के अधिग्रहण के प्रश्न पर विचार करने के लिये यूरोपीय राज्यों का सम्मेलन आमन्त्रित करने की माँग की किन्तु ऑस्ट्रिया ने प्रस्ताव को अस्वीकृत कर दिया। ऑस्ट्रिया ने तुर्की को सन्तुष्ट करने के लिये उससे एक समझौता किया इसके अनुसार ऑस्ट्रिया द्वारा बोस्निया के अधिग्रहण के कारण तुर्कों को जो क्षति हुई थी उसकी क्षतिपूर्ति का वचन दिया। तुर्की इससे सन्तुष्ट हो गया और उसने बोस्निया से अपना प्रभुत्व त्याग दिया।

मार्च 1909 में ऑस्ट्रिया ने रूस को एक पत्र लिखा जिसमें उससे सर्बिया पर दबाव डालकर बोस्निया के अधिग्रहण को स्वीकार कराने को कहा गया। यह पत्र एक अल्टीमेटम के समान था। अतएव रूस को बर्लिन सन्धि की धारा 25 निरस्त करने सम्बन्धी स्वीकृति देनी पड़ी। इसके पश्चात् ऑस्ट्रिया ने सर्बिया की सरकार पर बोस्निया के अधिग्रहण को स्वीकार करने के लिये दबाव डाला। चूँकि सर्बिया को कहीं से कोई सहायता मिलने की आशा न थी अतः उसने बोस्निया को ऑस्ट्रिया का अंग मान लिया। तत्पश्चात् इंग्लैंड व फ्रांस ने भी बर्लिन सन्धि की 25वीं धारा को निरस्त करने की स्वीकृति प्रदान की।

परिणाम

(1) ऑस्ट्रिया के विदेश मंत्री एरनशाल के लिये यह एक कूटनीतिक विजय थी क्योंकि उसने बड़ी चतुराई से बर्लिन सन्धि का उल्लंघन किया और यूरोपीयन राज्यों से बोस्निया के अधिग्रहण की स्वीकृति ले ली।

(2) कूटनीतिक दृष्टि से त्रिपल एनटीटी को झुकना पड़ा परन्तु इस संकट ने उन्हें और अधिक संगठित किया।

(3) रूस व सर्बिया अपनी पराजय व अपमान को कभी भुला न सके।

वास्तव में बोस्निया और हर्जगोवीना को मिलाये जाने से ऑस्ट्रिया की दक्षिण स्लाव समस्या सुलझने की बजाय अधिक जटिल हो गयी। ऑस्ट्रिया को भविष्य में बोस्निया के अधिग्रहण का भारी मूल्य चुकाना पड़ा।

इसी के परिणामस्वरूप बोस्निया में दक्षिण स्लावों की मुक्ति के लिये ब्लैक हैण्ड नामक समिति का गठन हुआ। इस समिति में सर्वक्रान्तिकारी तत्व मौजूद थे। उन्होंने 1914 में ऑस्ट्रियन युवराज ड्यूक फ्रांसिस फर्डीनेण्ड और उसकी पत्नी की, जब वे बोस्निया की राजधानी सराजवो की यात्रा पर थे, हत्या कर दी। इस प्रकार बोस्निया संकट 1914 ई. के प्रथम विश्व युद्ध का तत्कालीन कारण बना।

अपनी प्रगति जांचिए

1. क्रांति की संभावना से डरकर तुर्की के किस सुल्तान ने 1876 ई. में उदार संविधान लागू करने की घोषणा की?

   (क) अब्दुल हमीद (ख) मुराद पंचम

   (ग) एर्दोगन (घ) मुस्तफा कमाल अतातुर्क

2. 13 अक्टूबर 1908 को इंग्लैंड और रूस द्वारा बोस्निया अधिग्रहण पर विचार के प्रस्ताव को किस देश ने अस्वीकृत कर दिया था?

   (क) जर्मनी (ख) ऑस्ट्रिया

   (ग) फ्रांस (घ) इटली

5.3 जापान में उपनिवेशवाद एवं साम्राज्यवाद – मेइजी पुनर्स्थापना एवं आधुनिकीकरण की प्रकिया

ब्रिटिश द्वीप समूह के समान सुदूर पूर्व में जापान भी अपनी विशिष्ट भौगोलिक स्थिति के कारण पूर्वी एशियायी देश होते हुए भी पूर्वी एशिया से पृथक् रहा। अपनी विशिष्ट भौगोलिक स्थिति के कारण एक लम्बे समय तक जापान शेष विश्व से अलग–थलग रहा। कई विद्वानों का मानना है कि जापान ने एक लम्बे समय तक अपने बन्द द्वार, स्वेच्छा से ही पाश्चात्य विचारों के ग्रहण करने के लिये खोले। जापान एशिया महाद्वीप के पूर्वी किनारे पर प्रशान्त महासागर में चार बड़े एवं अनेक छोटे (लगभग 3,000 द्वीप) द्वीपों की श्रृंखला से आबद्व है। अपनी विशिष्ट भौगोलिक स्थिति के कारण ही जापान को सूर्योदय का देश (Land of rising Sun) कहा जाता है।

मेइजी पुनर्स्थापना से जापान में एक नये युग का सूत्रपात हुआ। जापान में सामन्ती प्रथा का अन्त हुआ एवं उसने आधुनिकीकरण की ओर कदम बढ़ाये। अमेरिका के कमोडोर पेरी ने सर्वप्रथम जापान के द्वार अमेरिका के लिये खोले। पश्चिमी देशों के साथ सम्पर्क द्वारा ही जापान ने अत्यन्त तीव्र गति से अपना विकास किया और कम समय में ही एक विकसित राष्ट्र के रूप में पश्चिमी देशों के समकक्ष आ गया। वस्तुतः जापान ने पश्चिमी राष्ट्रों का अन्धानुकरण न कर, अपने पुरातन मूल्य एवं आदर्शो के अनुरूप, पश्चिमी विचारों को ढालकर अपना विकास किया। इस तारतम्य में हैराल्ड एम. विनाके ने भी लिखा है, ''इतने कम वर्षों में जापान का एक आधुनिक शक्ति के रूप में उदय तथा बाद में रूस के साथ हुए युद्ध में उसकी सैनिक सफलता, वास्तव में उसके आधुनिकीकरण या पश्चिमीकरण का फल नहीं था। उसकी ये सफलताएँ सम्भव हुई, क्योंकि जापान के पश्चिमी सम्पर्क के लिये खुलने के बाद के वर्षों की घटनाओं व परिवर्तनों से जापान में धीरे–धीरे प्राचीन की जगह नई–नई व्यवस्था आती गई। जापान का आधुनीकरण प्राचीन जापान का तर्कसंगत विकसित रूप ही था।'' जापान में चावल यहाँ की बुनियादी फसल है। मछली यहाँ प्रोटीन का प्रमुख स्रोत मानी जाती है। कच्ची मछली साशिमी या–सुशी विश्व भर में प्रसिद्ध है। उन्हें स्वास्थ्य के अत्यधिक उपयोगी माना जाता है।

कमोडोर पेरी का जापान आगमन

प्राचीन काल से जापान विदेशियों के साथ सम्बंधों को लेकर एकान्तवासी बना रहा। 1592 ई. तक केवल पुर्तगाली ही जापानियों के सम्पर्क में थे। यूरोपीय व्यापारियों की प्रतिद्वन्द्विता तथा रोमन धर्म प्रचारकों की कार्य प्रणाली से जापानी शासक वर्ग की नाराजगी के कारण यूरोपियों को अत्यन्त सीमित व्यापारिक सुविधाएँ जापान से प्राप्त हुईं। 1638 ई. से 1654ई. तक जापान पश्चिमी जगत से पृथक् रहा।

औद्योगिक क्रांति, वाष्पचालित जहाजों का प्रचलन (जापानियों का भटके हुए जहाजों तथा उनके चालकों से दुर्व्यवहार), प्रथम अफीम युद्ध में चीन की पराजय, आदि घटनाओं का प्रभाव संयुक्त राज्य अमेरिका पर पड़ा।

संयुक्त राज्य अमेरिका ने जापानियों को अपने तटों के द्वार खोलने तथा निश्चित सम्बन्ध स्थापित करने के लिये कमोडोर मेथ्यू सी.पेरी को एक जहाजी बेड़े के साथ जापान भेजा। कमोडोर पेरी 8 जुलाई ,1853 ई को जापान की येदो खाड़ी में निम्नलिखित माँगों के साथ पहुँचा–

(1) जापानी तटों पर भटककर पहुँचने वाले जहाजों की रक्षा जापान करे।

(2) जहाजों को मरम्मत व ईधन आपूर्ति के लिए लंगर डालने की अनुमति दी जाय।

(3) व्यापार के लिये बन्दरगाह खोले जाएं।

कमोडोर पेरी ने जापानी सरकार को अपने प्रस्ताव चुनौती के रूप में प्रस्तुत किये। जापान ने पेरी की माँगों पर विचार के लिये समय माँगा। अतः पेरी वापस चला गया परन्तु 13 फरवरी, 1854 ई. को पुनः येदो आया। जापानी–अमेरिकी वार्ताओं का परिणाम 31 मार्च, 1854 ई. की कनागावा सन्धि के रूप में हुआ। उसके अनुसार–

(1) जापान ने अमेरिका के लिए नागासाकी, शिमोदा तथा होकोदातो को व्यापार के लिये खोल दिया। पाल हिल्बर्ट क्लाइड ने पेरी को ''पहला अमेरिकन साम्राज्यवादी'' कहा है।

(2) शिमोदा में अमेरिका को वाणिज्य दूत रखने का आश्वासन दिया।

(3) जापान ने संकटग्रस्त जहाजों की रक्षा का आश्वासन दिया।

पेरी द्वारा की गई सन्धि के पश्चात् अमेरिका को जापान में अपनी व्यापारिक सुविधाएं बढ़ाने में सफलता मिली। टाउनशैण्ड हैरिस के प्रयासों के कारण 29 जुलाई, 1858 ई. को एक सन्धि द्वारा जापान ने अमेरिका को 4 नये बन्दरगाह तट कर की सुविधा, राज्य क्षेत्रातीत अधिकार, धार्मिक स्वतन्त्रता, पश्चिमी देशों से विवाद में मध्यस्थता का अधिकार प्रदान किया। यह सन्धि 1894 ई. तक जापान के लिए विदेशी संबंधों का आधार बनी रही।

अमेरिका के जापान की ओर आकर्षित होने के कारण–अमेरिका जापान की ओर इन दो प्रमुख–प्रमुख कारणों से आकर्षित हुआ–

1. कैलीफोर्निया के प्रशान्त महासागरीय तट पर सोने के भण्डारों के मिलने के कारण यह भाग व्यापार का प्रमुख केन्द्र बन गया था, अमेरिका को वहाँ तक पहुँचने के लिये जापान से होकर गुजरना आवश्यक था।

2. अमेरिका के उत्तर–पश्चिमी किनारे पर व्हेल मछली का उन्नत व्यापार होता था। अतः ऐसे में जापान का सहयोग आवश्यक था। कनागावा की सन्धि द्वारा अमेरिका ने जापान का सहयोग प्राप्त कर लिया।

मेइजी पुनर्स्थापना

प्राचीन काल से ही जापान में राजतन्त्रात्मक शासन प्रणाली विद्यमान थी। 1192 ई. में जापान के सम्राट (मिकाडो) ने येरीतमो नामक सामन्त को शोगून (बर्बरों का दमन करने वाला महान सेनानायक) का पद प्रदान किया। धीरे–धीरे यह पद वंशानुगत हो गया और शक्ति का प्रमुख केन्द्र बन गया। शोगून की सहायता दाइम्यो (भूस्वामी सामंत वर्ग) तथा समुराई (सैनिक वर्ग) ने की। 1603 ई. में शोगून पद पर इयीयासू तोकूगावा की नियुक्ति की गयी। 1867 ई. में सम्राट के पुररुद्धार तक यह पद तोकूगावा वंश के हाथ में ही रहा। 1867 ई. में शोगून पद एवं प्रणाली का अन्त हो गया। इसके अनेक कारण थे। इनमें सर्वप्रमुख कारण यह था कि जापान के अनेक सामंत कुल तोकूगावा वंश के हाथ से राजसत्ता छीनना चाहते थे और सम्राट की शक्ति की पुनः स्थापना करना चाहते थे। 1866 ई. में केईकी नया शोगून बना एवं 1867 ई. में मुत्सूहितो जापान का नया मिकाडो बना।

नया सम्राट एक उत्साही, योग्य एवं बुद्धिमान शासक था। उसने देश की वास्तविक शक्ति को अपने हाथ में केन्द्रित करना चाहा। उसने शोगून विरोधी सामंतों का सहयोग प्राप्त करके केईकी को पद त्याग के लिये विवश किया। उसके पश्चात् उसने नये शोगून की नियुक्ति नहीं की।

शूमां के अनुसार, ''जापान ने शोगून प्रभाव की समाप्ति के पश्चात् ही आश्चर्यजनिक विकास किया और विश्व का महान आधुनिक राष्ट्र बन गया।''

सम्राट मुत्सुहितो ने मेइजी की उपाधि धारण की, इसलिये उसके शासन काल को मेइजी पुनर्स्थापना के नाम से जाना जाता है। मेइजी का अभिप्राय है (प्रबुद्ध शासन)। सम्राट मुत्सुहितो ने जापान को शक्तिशाली और आधुनिक राष्ट्र बनाने के लिये पाश्चात्य ज्ञान–विज्ञान और तकनीकी को अपनाया और सैनिक दृष्टि से भी परिपूर्ण किया।

मेइजी पुनर्स्थापना के निम्नलिखित परिणाम हुए–

(1) सामन्तीय व्यवस्था का अन्त हुआ।

(2) शासन तन्त्र में सुधार हुआ।

(3) सेना का आधुनिकीकरण हुआ।

(4) शिक्षा का विकास हुआ।

(5) जापान का आर्थिक विकास हुआ।

(6) जापानी जीवन शैली का पश्चिमीकरण हुआ।

जापान में आधुनिकीकरण की प्रकिया

''मेइजी पुनर्स्थापना शोगून तथा सामन्तवाद की समाप्ति के लिये उठाया गया एक सही कदम था।'' विनाके के इस कथन से पूर्ण सत्यता का आभास होता है, क्योंकि मेइजी पुनर्स्थापना के बाद ही आधुनिक जापान अस्तित्व में आया। जापान सम्राट

मुत्सुहितो ने मेइजी (प्रबुद्ध शासकों) की उपाधि ग्रहण करने के बाद जापान को पाश्चात्य ज्ञान–विज्ञान तथा सैन्य दृष्टि से शक्तिशाली बनाने की कोशिश की क्योंकि, उसके बिना पाश्चात्य साम्राज्यवादियों से मुकाबला नहीं किया जा सकता था।

जापान के आधुनिकीकरण के लिए जो अथक् प्रयास किये गये, जिनके फलस्वरूप जापानियों ने शक्तिशाली होकर पाश्चात्य साम्राज्यवाद से मुकाबला किया, वे प्रयास अधोलिखित हैं–

(1) शपथ पत्र– सम्राट ने सत्ता प्राप्ति के कुछ समय बाद सार्वजनिक कार्यों के प्रशासन में परामर्श लेने की शपथ ली।

(2) विधायनी परिषद् (राइजोक्वान)

नवीन शासन ने केन्द्रीय शासन के संचालन के लिये 3 पद निर्मित किये।

(i) सोसाई–सर्वोच्च अधिकारी का पद था एवं सम्राट के निकट सम्बन्धी को प्राप्त था।

(ii) गीजो–यह पद प्रथम श्रेणी पार्षदों का था। इन पदों पर कुलीन और उच्च वंश के लोग थे।

(iii) सान्यो–यह पद द्वितीय श्रेणी पार्षदों का था। इन पदों पर दरबारी कुलीन तथा समुरायी वर्ग के लोग थे।

परन्तु, शीघ्र ही समस्त अधिकार विधायनी परिषद् को हस्तांतरित कर दिये गये। इसके 2 सदन थे। प्रथम सदन की राज्य परिषद् में कुलीन सामंत, समुरायी, गीजों एवं सान्यो वर्ग के लोग होते थे और द्वितीय सदन निम्न सदन था, जिनमें सामंतीय वर्ग के प्रतिनिधि थे।

(3) सामंतीय प्रथा का अन्त–1867 ई. में शोगून पद की समाप्ति के उपरान्त सामन्तीय प्रथा पूर्णतः समाप्त नहीं हुई थी। अतएव नये शासन ने सामंती प्रथा के अन्त हेतु निम्न कार्य किये–

(i) 1868 ई. में सामंतों की जागीरों में केन्द्रीय अधिकारी को नियुक्ति किया।

(ii) मार्च, 1869 ई. में सामन्तों ने जागीरों के स्वामित्व एवं विशेषाधिकार का स्वेच्छापूर्वक परित्याग किया।

(iii) सरकार ने सामंतों की सुरक्षा का प्रबन्ध किया। उनसे जो जागीर छीनी गयी, उसके बदले में पहले उन्हें पेंशन निश्चित की गयी। कालान्तर में पेंशन के बदले एकमुश्त राशि आधी नकद एवं शेष आधी सरकारी बाण्ड के रूप में देने की व्यवस्था की गयी।

(iv) प्रशासनिक दृष्टि से योग्य सामंतों को राज्यपाल के पद पर नियुक्ति किया गया।

(v) अगस्त, 1871 ई. में सम्राट ने सामंतीय प्रथा को विधिवत् समाप्त करने की घोषणा की।

(4) संवैधानिक सुधारों हेतु आन्दोलन–जैसे–जैसे जापान पाश्चात्य शिक्षा और राजनीतिक विचारधारा के निकट आता गया, वहाँ संवैधानिक सुधारों के लिये आन्दोलनों

का आरम्भ हुआ। 1881 ई. में इताजाकी ने एक उदारवादी दल जीयूतो स्थापित किया। 1882 ई. में आके माशी गेनो बू ने संवैधानिक सुधारवादी दल (रिक्केन काइ शित्तो) की स्थापना की। इन दलों का प्रतिकार करने के लिए शासन के प्रति समर्पित रूढ़िवादियों ने 1882 ई. में संवैधानिक साम्राज्यवादी दल (रिक्केन तेई सेहतो) की स्थापना की। कई दलों की स्थापना से जापान का राजनीतिक वातावरण गर्म हुआ। अतः 1883 ई. में सरकार ने राजनीतिक दलों को भंग कर दिया और नये शासन विधान बनाने का कार्य आरम्भ किया। काउंट इटो को संवैधानिक प्रावधानों का अध्ययन करने हेतु यूरोपीय देशों में भेजा गया। वापस लौटने पर उसी की अध्यक्षता में एक संविधान सभा आयोग गठित किया गया।

(5) 1889 ई. का नवीन शासन विधान–11 फरवरी, 1889 ई. को सम्राट ने नये शासन विधान (मेइजी विधान) लागू किये जाने की घोषणा की। इस विधान के द्वारा सम्राट को अनेक अधिकार प्रदान किये गये। प्रशासन के संचालन में परामर्श देने के लिये 2 समितियाँ गठित की गयीं–

(i) प्रीवी काउंसिल, (ii) माँग परिषद्

इन्हें सम्राट मनोनीत करता था।

नवीन शासन विधान में संसद (डाइट) की स्थापना की गयी, जिसके 2 सदन होते थे–

(i) उच्च सदन– मनोनीत सदस्य।

(ii) निम्न सदन– चुने गये सदस्य।

नवीन शासन विधान में लोकतान्त्रिक भावनाओं का आदर किया गया।

(6) सैन्य सुधार–जापान को प्रथम श्रेणी की सैनिक शक्ति बनाने के लिए सैन्य शिक्षा अनिवार्य की गयी एवं प्रत्येक स्वस्थ युवक को सेना के नियमित, रिजर्व तथा राष्ट्रीय तीनों भागों में प्रशिक्षण अनिवार्य किया गया। पश्चिमी देशों से सैन्य विशेषज्ञ एवं नये शस्त्रास्त्र मँगवाये गये। आधुनिक नौ–सेना के विकास कार्य में भी तेजी की गयी।

(7) आर्थिक विकास–विनाके लिखते हैं कि ''यह आश्चर्यजनक है कि उन्होंने सुनियोजित आर्थिक विकास की आवश्यकता को स्पष्टतः पहचान लिया था।'' इस हेतु उन्होंने निम्न कार्य किये–

(i) आधुनिक डाक–तार व्यवस्था की स्थापना की।

(ii) लम्बी रेल लाइनों का निर्माण किया।

(iii) उद्योग एवं व्यवसाय की उन्नति के लिये जहाँ पाश्चात्य देशों से मदद ली, वहीं कुलीन वर्ग को पूँजी निवेश के लिये प्रोत्साहित किया। वस्त्र एवं लौह उद्योग को विशेषतः प्रोत्साहन दिया गया।

(iv) मुद्रा बैंकिग प्रणाली में सुधार किया।

(v) 1882 ई. में बैंक ऑफ जापान की स्थापना की।

(vi) 1887 ई. में याकोहामा सोना–चाँदी बैंक की स्थापना की।

(8) कृषि में सुधार–किसानों की सुविधा के लिये उन्हें भूमि प्रमाण–पत्र दिये गये। नकद लगान वसूल किये और लगान निर्धारित करने की नवीन प्रणाली लागू की गयी।

(9) शिक्षा एवं पत्रकारिता का विकास–शिक्षा के क्षेत्र में क्रान्तिकारी परिवर्तन हुए। 1872 ई. में प्रारम्भिक शिक्षा को अनिवार्य किया गया। विश्वविद्यालयी शिक्षा फ्रांसीसी व तकनीकी शिक्षा प्रणाली जर्मनी के आधार पर बनायी गयी। अध्यापकों के प्रशिक्षण के लिये नार्मल स्कूलों की स्थापना की गयी, परन्तु लड़कियों की शिक्षा पर अधिक ध्यान नहीं दिया गया। पाश्चात्य ज्ञान–विज्ञान को प्रोत्साहन दिया गया।

जापान का प्रथम दैनिक समाचार–पत्र याकोहामामाई–चीन शिगून 1870 ई. से प्रकाशित हुआ।

जापान के आधुनिकीकरण के परिणाम

जापानी आधुनिकीकरण के निम्नलिखित परिणाम हुए–

(1) जापानी नागरिकों की जीवन शैली में क्रान्तिकारी परिवर्तन हुए, उनके आचार–विचार और व्यवहार में आमूल परिवर्तन हुआ।

(2) औद्योगीकरण ने जापान को एक शक्तिशाली राष्ट्र बना दिया परिणामस्वरूप विदेशियों को जापान के साथ समानता के स्तर पर सन्धियाँ करनी पड़ीं।

(3) जापान सैन्य दृष्टि से शक्तिशाली राष्ट्र हो गया। अतः अब यूरोपीय राष्ट्र उसकी अवहेलना नहीं कर सकते थे।

(4) औद्योगीकरण, व्यापारिक व सैनिक उन्नति के कारण जापान को भी कच्चे माल व उत्पादों के लिये बाजारों की आवश्यकता हुई। अतः उसने भी साम्राज्यवाद का मार्ग अपनाया।

(5) जापान के आधुनिकीकरण ने जापान की खोई हुई सम्प्रभुता को पुनः प्राप्त किया।

प्रथम चीन–जापान युद्ध, 1894 ई.

चीन की लूटखसोट के लिये जो युद्ध लड़े गये, उनमें प्रथम अफीम युद्ध के पश्चात् चीन–जापान युद्ध एक महत्वपूर्ण घटना थी। इसके कारण निम्नलिखित हैं–

(1) कोरिया के प्रति जापान की साम्राज्यवादी नीति ने – जापान यद्ध को जन्म दिया। कोरिया चीन की नाम–मात्र की अधीनता में था। इसकी विशिष्ट भौगोलिक स्थिति के कारण जापान इसे अपने नियन्त्रण में लाना चाहता था।

(2) मेइजी पुनर्स्थापना के पश्चात् जापान के औद्योगिक विस्तार की इच्छाएं तथा जनसंख्या को बसाने की इच्छाएं कोरिया में पूर्ण हो सकती थीं।

(3) जापान कोरिया से चावल प्राप्त करना चाहता था। विनाके के अनुसार, ''Political Ascendency In a country must be secured as a preliminary to the establishment of a safe economic position."

(4) कोरिया पर रूस एवं इंग्लैंड के बढ़ते हुए प्रभाव को जापान अपनी एकता एवं अखण्डता के लिये खतरा मानता था।

(5) 1875 ई. में जापानी जहाज पर कोरियाई सैनिकों द्वारा गोली चलाने की घटना की आड़ में जापान ने 1876 ई. में कोरिया को व्यापारिक सुविधायें देने हेतु विवश किया।

(6) जापान तथा दूसरी यूरोपीय महाशक्तियों की कार्यवाही को चीन सशंकित दृष्टि से देखता था।

(7) 1894 ई. में कोरिया में चीन समर्थकों तथा जापान समर्थकों में मतभेद के परिणामस्वरूप तोंगहाक विद्रोह हुआ। कोरिया ने विद्रोह को दबाने के लिये चीन से मदद माँगी। चीन द्वारा मदद भेजने पर जापान ने भी अपनी सेनाएँ सियोल भेज दीं।

25 जुलाई 1894 ई. को जापानी बेड़े ने चीन नौ–सेना के लिये रसद ले जाने वाले ब्रिटिश बेड़े को नष्ट कर दिया। इससे रुष्ट होकर चीन ने 1 अगस्त ,1894 ई. को जापान के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी।

शिमोनेस्की की सन्धि (17 अप्रैल,1895 ई.)

1894–95 ई. चीन–जापान युद्ध में चीन पराजित हुआ तथा उसे शिमोनेस्की सन्धि पर हस्ताक्षर करने पड़े। इसके अनुसार

(1) कोरिया को स्वतन्त्र मान लिया गया।

(2) फारमोसा, पेस्काडेरस तथा लिआओतुंग प्रायद्वीप चीन ने जापान को दिये।

(3) चीन ने युद्ध क्षति के रूप में जापान को 20 करोड़ ताएल 8 किश्तों में देना स्वीकार किया।

(4) शान्सी, चुगकिंग, शूचों तथा हंगचो आदि 4 बन्दरगाह जापानी व्यापार के लिये खुले। इस सन्धि के परिणाम अधोलिखित हैं–

1. जापान के प्रभाव व प्रतिष्ठा में वृद्वि हुई।
2. यूरोपीय साम्राज्यवादियों ने चीन को खुलकर लूटना प्रारम्भ किया।
3. चीन में मंचू सरकार की प्रतिष्ठा गिरी, वहाँ बॉक्सर विद्रोह हुआ तथा 1911ई. की क्रान्ति की पृष्ठभूमि तैयार हुई।
4. रूस, फ्रांस, जर्मनी ने जापान के लिआओतुंग पर अधिकार को चुनौती दी।
5. 1902 ई. की आंग्ल–जापान सन्धि तथा 1904–05ई. का रूस–जापान युद्ध भी इसका एक परिणाम था।

जापान में सैन्य विस्तार एवं सुधार (1868–1890 ई.)

विनाके ने ठीक ही लिखा है कि जापान में मेइजी पुनर्स्थापना का सबसे महत्वपूर्ण परिणाम यह निकला कि जापान ने पूर्वी संस्कृति का पश्चिमी ज्ञान एवं विज्ञान से सुन्दर समन्वय स्थापित किया।

जापान ने पाश्चात्य सभ्यता का पूर्णतः अन्धानुकरण नहीं किया, अपितु अपनी राष्ट्रीय संस्कृति के अनुरूप इसको ढाला। इससे जापान की राष्ट्रीय भावनायें नष्ट नहीं हुईं और आधुनिकीकरण भी अनवरत् जारी रहा दूसरी ओर जापान में सैन्यीकरण एवं साम्राज्यवादी भावनाओं का उदय भी हुआ–

(1) औद्योगीकरण–अपनी औद्योगीकरण रूपी तृष्णा की पूर्ति के लिये उसकी गिद्ध दृष्टि अपने पड़ोसी प्राकृतिक संसाधनों से परिपूर्ण क्षेत्रों, चीन, कोरिया और मंचूरिया पर पड़ी, परन्तु यह इतना आसान नहीं था जापान अपने पड़ोसी पिछड़े देशों पर प्रभुता

तभी स्थापित कर सकता कर सकता था, जबकि वह पश्चिमी शक्तियों से प्रतिद्वन्द्विता कर सके। अतः जापान में सैन्यवाद का विकास अवश्यम्भावी हो गया।

(2) सैन्यवादी परम्परायें–प्राचीन काल से ही जापान सैन्यवादी परम्पराओं वाला देश रहा था। शोगून काल में भी समुरायी वर्ग शासन के प्रमुख स्तम्भ थे। मेइजी पुनर्स्थापना के बाद यद्यपि शोगून प्रथा का अन्त हो गया, तथापि सैनिक भावनायें ज्यों की त्यों रहीं।

(3) महत्वाकांक्षी सैनिक अधिकारी–जापान में सैन्यवाद की प्रवृत्ति के विकास में महत्वाकांक्षी एवं उग्र स्वभाव वाले राष्ट्रीय सेना के अधिकारियों का महत्वपूर्ण योगदान था। उनका विश्वास था कि जापान की सैन्य शक्ति अजेय है। अतएव उसे आक्रामक साम्राज्यवादी नीति का पालन करना चाहिये। जापानी राजनीति पर सैन्य अधिकारियों के दबाव के फलस्वरूप सैन्यवाद के उदय का मार्ग प्रशस्त हुआ।

(4) पश्चिमी शक्तियों के साथ समानता एवं सम्मान के सम्बन्ध स्थपित करने की इच्छा–पेरी के आगमन से लेकर मेइजी पुनर्स्थापना के पूर्व काल तक जापान को पश्चिमी शक्तियों से पराजित होकर अनेक अपमाजनक एवं असमान सन्धियों पर हस्ताक्षर करने पड़े तथा जापान में सुविधा देनी पड़ी। जापान के उग्रराष्ट्रवादी पश्चिमी शक्तियों के साथ समानता एवं सम्मान के सम्बन्ध स्थापित करना चाहते थे। इसका एक ही मार्ग था– शक्ति के बल पर अपने अधिकारों को प्राप्त करना।

(5) जापानी मन्त्रिमण्डल के गठन में परिवर्तन–मेइजी पुनर्स्थापना के बाद जापानी मन्त्रिमण्डल में युद्ध एवं नौ–सेना मन्त्री के पद कायम किये गये। इन पदों पर वे ही लोग नियुक्त हो सकते थे जो सैन्य सेवा से सम्बद्ध रहे हों एवं मन्त्री महत्वपूर्ण मामलों पर विचार हेतु प्रधानमंत्री से मिले बिना सीधे सम्राट से भेंट करते थे और निर्णय लेते थे।

(6) जन समर्थन–शोगून सत्ता के काल तक सेना के द्वार केवल समुरायी वर्ग के लिये खुले हुए थे। मेइजी पुनर्स्थापना के शपथ विधान के अनुसार सेना के द्वार सभी योग्य लोगों के लिये खोल दिये गये इससे जनसाधारण वर्ग में भी सैन्यवादी प्रवृत्ति का विकास हुआ।

(7) सैन्यवादी सुधार–सैन्यवाद के उदय के वातावरण में मेइजी पुनर्स्थापना के कर्णधारों ने सामंती प्रथा पर आर्धारित सैन्य संगठन को तिलांजलि दी और जापान को प्रथम श्रेणी की शक्ति बनाने के लिये सेना का पुनर्गठन किया।

(1) 1869 ई. में सैन्य विभाग खोला गया।

(2) 1873 ई. में सेना का राष्ट्रीयकरण किया।

(3) 21 वर्ष के प्रत्येक स्वस्थ पुरुष के लिये सैनिक सेवा अनिवार्य घोषित की।

(4) राष्ट्रीय सेना को 3 भागों में नियमित, रिजर्व एवं राष्ट्रीय सेना में बाँटा।

(5) सैनिक को निश्चित अवधि तक तीनों सेवाओं में रहना अनिवार्य है।

(6) सेना को अनुशासित बनाया गया।

(7) सेना को आधुनिक बनाने के लिये पश्चिमी देशों से नवीन शस्त्रास्त्र मँगाये गये।

(8) सेना को पहले फ्रांसीसी व 1885 ई. के पश्चात् जर्मन सैन्य विशेषज्ञों के निर्देशन में प्रशिक्षित किया।

(9) जापान को सैनिक दृष्टि से 6 जिलों में विभक्त किया गया। प्रत्येक जिले में एक सैन्य विभाग खोला गया।

(10) 1869 ई. के पश्चात् नौ–सेना के विकास हेतु तीव्रता से प्रयत्न किये गये।

(11) नौसेना के अधिकारियों को प्रशिक्षण के लिये ब्रिटेन तथा अमेरिका भेजा गया।

(12) टोकियो में नौ–सेना प्रशिक्षण हेतु स्कूल खोला गया।

(13) 1872 ई. में नौ–सेना विभाग की स्थापना की गयी।

(14) जापान में जहाजों का निर्माण किया गया तथा इंग्लैंड से उत्तम कोटि के जहाज खरीदे गये।

परिणाम–जापान में द्रुतगति से होने वाले सैन्यीकरण ने जापान की साम्राज्यवादी नीति के द्वार खोल दिये। साम्राज्यवाद के प्रारम्भिक काल में (1875–1890 ई.) जापान ने 3 द्वीपों (1) कुरील (1875 ई.), (2) वोनिन (1878 ई.), (3) रयूक्यू (1884 ई.) पर अधिकार स्थापित किया। 1894 ई. का चीन–जापान युद्ध, 1902 ई. की आंग्ल–जापान सन्धि, 1904–05 ई. का रूस–जापान युद्ध, 1931 ई. में मंचूरिया विजय और 1937 ई. में चीन–जापान द्वितीय युद्ध, प्रथम व द्वितीय विश्व युद्ध के बीच अधिनायकवाद का उदय, दुस्साहसपूर्वक अमेरिका को छेड़ना इसी सैन्यवादी एवं साम्यवादी नीति का परिणाम था।

इंग्लैंड–जापान सन्धि, 1902 ई.

19वी सदी के उत्तरार्द्ध में ब्रिटेन की विदेश नीति यूरोप की राजनीति से अपने को अलग रखने की थी। इसे पृथक्करण नीति कहा जाता है, परन्तु परिस्थितियाँ ऐसी निर्मित हुईं जिनके कारण ब्रिटेन ने इस नीति को त्याग दिया तथा जापान के साथ 1902 ई. में सन्धि की। ब्रिटेन के जापान की ओर झुकने के निम्न कारण थे–

(1) यूरोप में ट्रिपल एलांयस तथा रूस एवं फ्रांस के मध्य मित्रता स्थापित हो चुकी थी। ब्रिटेन इस नितान्त अकेलेपन की नीति से बाहर आना चाहता था।

(2) सुदूर पूर्व में अपने प्रतिद्वन्द्वी रूस, जर्मनी, फ्रांस से मुकाबला करने के लिये इंग्लैंड ने जापान की ओर मित्रता का हाथ बढ़ाया।

(3) इंग्लैंड को अपनी जल सेना अटलाण्टिक तथा प्रशान्त, दोनों महासागरों में रखनी पड़ती थी। जापान से सुलह होने पर इंग्लैंड प्रशान्त महासागर से अपनी जल सेना हटा सकता था।

1868 ई. तक जापान मध्ययुगीन देश बना रहा। मेइजी पुनर्स्थापना के पश्चात् जापान ने यूरोपीय देशों के समकक्ष आने का प्रयास किया। इंग्लैंड की ओर उसने निम्नलिखित कारणों से मित्रता का हाथ बढ़ाया–

1. जापान ने चीन को परास्त कर शिमोनेस्की सन्धि से जो प्रदेश प्राप्त किये थे, उसे वे रूस, जर्मनी, फ्रांस के विरोध के कारण 1895 ई. में त्यागना पड़े। जापान इसके लिये मुख्यतः रूस को दोषी मानता था और अपने अपमान का बदला लेने के लिये इंग्लैंड का सहयोग चाहता था।

2. जापान के राजनय का उद्देश्य रूस को मित्रहीन बनाना था।
3. जापान कोरिया तथा मंचूरिया में रूसी प्रभाव को बढ़ने देना नहीं चाहता था। इस प्रश्न पर रूस के साथ संघर्ष की सम्भावना थी। अतएव इस कार्य की पूर्ति हेतु इंग्लैंड का वरदहस्त आवश्यक था।

परिणामतः अन्ततोगत्वा 30 जनवरी, 1902 ई. को इंग्लैंड–जापान सन्धि हुई।

(1) दोनों देशों ने सुदूर पूर्व में सार्वजनिक शान्ति और यथास्थिति बनाये रखने का निश्चय किया।

(2) दोनों राज्यों ने चीन और कोरिया की स्वतन्त्रता को मान्यता दी और अपने–अपने हितों की रक्षा के लिये एक–दूसरे को हस्तक्षेप का अधिकार दिया।

(3) यदि अपने हितों की रक्षा के लिये दोनों पक्षों में किसी एक पक्ष को युद्ध में फँसना पड़ा तो दूसरा तटस्थ रहेगा।

(4) यदि दोनों में से किसी एक पक्ष को एक साथ 2 शक्तियों से युद्ध करना पड़े तो दूसरा साथी अपने मित्र की मदद करेगा।

(5) यह सन्धि 5 वर्ष हेतु की गयी।

परिणाम–

(1) स्पष्टतः यह सन्धि ब्रिटेन और जापान ने अपने स्वार्थों की रक्षा हेतु की थी। जापान कोरिया में रूस के बढ़ते प्रभाव को और ब्रिटेन प्रशांत महासागर तथा चीन में रूस तथा जर्मनी के बढ़ते प्रभाव पर अंकुश लगाना चाहते थे।

(2) इस सन्धि ने दोनों देशों की सुरक्षा का आश्वासन दिया।

(3) इस सन्धि से ब्रिटेन का एकाकीपन समाप्त हुआ।

(4) इस सन्धि ने यूरोपीय राजनीति को प्रभावित किया। जर्मनी और ब्रिटेन के राजनीतिज्ञ, जो कल्पनायें नहीं कर सके, वह परिणाम इस सन्धि के हुए और अन्ततोगत्वा यह भी प्रथम महायुद्ध का एक अदना–सा कारण बनी।

(5) इस सन्धि से एशिया के छोटे–से देश जापान की प्रतिष्ठा में आशातीत वृद्धि हुई। जापान की साम्राज्वादी नीति को बल मिला।

इस परिप्रेक्ष्य में हेजन का यह वाक्य काफी महत्वपूर्ण जान पड़ता है–

"For the first time in history, an Asiatic Power had entered into an alliance with a European power on the plane of entire equality."

अपनी प्रगति जांचिए

3. पाल हिल्बर्ट क्लाइड ने किसे पहला अमेरिकन साम्राज्यवादी कहा है?
   (क) मैथ्यू पेरी (ख) डेविड फैरागट
   (ग) ग्रेस हॉपर (घ) इनमें से कोई नहीं
4. किस जापानी सम्राट ने मेइजी की उपाधि धारण कर मेइजी की पुनर्स्थापना की?
   (क) अयाहितो (ख) मुत्सुहितो
   (ग) ओसाहितो (घ) योशिहितो
5. मेइजी की पुनर्स्थापना से हुए आधुनिकीकरण का उदाहरण है–
   (क) सेना का आधुनिकीकरण (ख) शिक्षा का आधुनिकीकरण
   (ग) शासन तंत्र का आधुनिकीकरण (घ) उपर्युक्त सभी
6. किस छोटे से देश ने आधुनिक विश्व की दो महाशक्तियों रूस, चीन को हराया और अमेरिका पर भीषण हवाई हमला किया?
   (क) जर्मनी (ख) इटली
   (ग) जापान (घ) क्यूबा

5.4 चीन में उपनिवेशवाद एवं साम्राज्यवाद : प्रथम एवं द्वितीय अफीम युद्ध, प्रथम चीन जापान युद्ध एवं ताइपिंग विद्रोह

चीन एशिया महाद्वीप के मध्य–पूर्व भाग में 18°30° उत्तरी अक्षांश से 53° उत्तरी अक्षांश तक एवं 73 पूर्वी देशान्तर से 135 पूर्वी देशान्तर के मध्य स्थित है। चीन के इतिहास का आधुनिक काल मंचू राजवंश के आरम्भ से माना जाता है। मिंग वंश (1368–1644ई.) के पश्चात् चीन में लगभग पौने तीन सौ साल (1644 ई. से 1912 ई. तक) मंचू वंश ने शासन किया। नुरहचू नामक वीर योद्धा के पुत्र हॉगताईची ने मिंग वंश का अन्त कर 1644 ई. में मंचू राजवंश को आरम्भ किया। अन्तिम मिंग सम्राट ने पराजय के अपमान से दुःखी होकर आत्महत्या कर ली। चीन के उत्तरी क्षेत्र में मंचू जाति का निवास था, जिसे वर्तमान मे मंचूरिया कहा जाता है। कांग–हसी (1662–1722 ई.) मंचू राजवंश का प्रथम प्रतापी सम्राट था। वह भारत के औरंगजेब, रूस के पीटर महान एवं फ्रांस के लुई चौदहवें का समकालीन था।

1514 ई. में पुर्तगाली सर्वप्रथम चीन पहुँचे। चूँकि पुर्तगाली एशिया वालों को हेय दृष्टि से देखते थे एवं उनके साथ गुलामों के जैसा अमानवीय व्यवहार करते थे, अतः मिंग शासकों ने उन्हें चीन में घुसने नहीं दिया। ये चीन के बाहर कैण्टन के समीप में एक द्वीप पर रहने लगे। 1557 ई. में इन्होंने मकाओ में एक बस्ती बसाई। पुर्तगालियों के पश्चात् अन्य देश भी व्यापार की आशा में चीन आने लगे।

1575 ई. में स्पेन, 1604 ई. में डच, 1637 ई. में अंग्रेज एवं 1774 ई.में अमेरिकी चीन पहुँचे। 1689 ई. में चीन ने रूस के साथ आधुनिक युग की प्रथम सन्धि 'नर्चिस्क की सन्धि' (Teaty of Nerchinsk) सम्पन्न की। उस सन्धि द्वारा चीन व रूस के मध्य सीमा का निर्धारण हुआ।

1685 ई. में मंचू सम्राट कांग–हसी ने यूरोपियों को चीन के तटवर्ती बन्दरगाहों से व्यापार की अनुमति प्रदान की थी, मगर यूरोपीय लोग इस सुविधा का दुरुपयोग कर चीन के आन्तरिक मामलों में दखल करने लगे। उस हस्तक्षेप के कारण मंचू सम्राट चिएन लुंग (1736–1796 ई.) ने 1757 ई. में एक राजाज्ञा जारी कर यूरोपियों का व्यापार मात्र कैण्टन तक ही सीमित कर दिया। कैण्टन में भी यूरोपियों को वर्षभर रहने की अनुमति नहीं दी। गर्मियों में तथा व्यापार के एक मौसम की समाप्ति तथा दूसरे व्यापारिक मौसम के आरम्भ होने के बीच की अवधि में विदेशी व्यापारियों को मकाओ जाना पड़ता था। मकाओ का पट्टा (लीज) पुर्तगाल को मिला हुआ था। चीनी सरकार नहीं चाहती थी कि यूरोपीय लोग कैण्टन में स्थायी बस्तियाँ बसा सकें। अतः यूरोपीय व्यापार हेतु जब कैण्टन आते थे, तब उन्हें अपना परिवार मकाओ छोड़कर आना पड़ता था।

विदेशियों पर व्यापारिक प्रतिबन्ध

यूरोपीय लोग समस्त विश्व में अपनी शर्तों पर व्यापार कर रहे थे, मगर चीन ने इन्हें अपनी शर्तों पर व्यापार करने हेतु मजबूर किया। चीन के मंचू राजवंश ने विदेशियों पर कई व्यापारिक प्रतिबन्ध लगा दिये। विदेशी लोग, उन व्यापारिक प्रतिबन्धों के चलते कैण्टन एवं मकाओ की खिड़कियों से झाँक भर सकते थे। केवल व्यापारिक मौसम में ही विदेशी कैण्टन आ सकते थे, बाकी समय उन्हें मकाओ में रहना पड़ता था। व्यापार की समस्त शर्तें चीनियों द्वारा तय की जाती थी।

1702 ई. में 'सम्राट का व्यापारी' नामक एक पदाधिकारी चीन की ओर से व्यापार हेतु नियुक्त कर दिया गया था, जिसके माध्यम से ही यूरोपीय व्यापारी चीन में व्यापार कर सकते थे।

1752 ई. में इस एक व्यापारी के स्थान पर को हॉग (Ko Hang) नामक एक संघ (Guild) का गठन किया गया, जिसमें कुल 13 चीनी व्यापारी थे। अब समस्त यूरोपीय व्यापार इनके द्वारा ही संचालित किया जाने लगा।

ब्रिटिश ईस्ट इण्डिया कम्पनी की स्थापना–1715 ई. में ब्रिटिश ईस्ट इण्डिया कम्पनी द्वारा कैण्टन में एक कोठी स्थापित की गयी। प्रारम्भ में विदेशी लोग चीन से चाय, रेशम एवं मिट्टी के बर्तन आदि खरीदते थे परन्तु, इसके बदले में चीन इन विदेशियों से कुछ नही लेता था अतः चीन के माल की कीमत सोना–चाँदी में अदा की जाती थी और व्यापार सन्तुलन चीन के पक्ष में होता था। धीरे–धीरे विदेशियों ने चीन में इंग्लैंड के कपड़े एवं अमेरिकी फरों की माँग पैदा की।

इस समय ईस्ट इण्डिया कम्पनी भारत में बड़े पैमाने पर अफीम की खेती करा रही थी। अतः अंग्रेजों ने चीनियों को तम्बाकू में अफीम मिलाकर देना आरम्भ किया। इससे धीरे–धीरे चीन के लोग विशुद्ध अफीम के आदी हो गये। इस प्रकार अंग्रेजों ने निहित स्वार्थ के वशीभूत चीनियों को बड़े पैमाने पर अफीम का आदी बना दिया। अब

अंग्रेजों को चीन से साथ व्यापार में काफी मुनाफा होने लगा। दूसरी ओर, अफीम की खपत से चीन को दो तरह से नुकसान हुआ–

(1) चीनी जनता का नैतिक पतन हुआ।

(2) चीन की आर्थिक स्थिति बिगड़ने लगी।

अफीम की खपत से चीन में उक्त घातक परिणामों को देखते हुए चीनी सरकार ने 1838 ई. में अफीम के व्यापार के विरुद्ध कठोर कार्यवाही शुरू की। इससे अंग्रेजों को हानि होने लगी और अपने आर्थिक घाटों के कारण अंग्रेज भड़क उठे। इसका परिणाम आंग्ल–चीन युद्ध के रूप में सामने आया।

प्रथम अफीम युद्ध 1839–42 ई.

अंग्रेजों एवं चीनियों के बीच अफीम व्यापार को लेकर यह युद्ध लड़ा गया था, अतः इसे प्रथम अफीम युद्ध कहा जाता है। इस युद्ध के प्रमुख कारण अग्रलिखित थे–

(1) अंग्रेजों की साम्राज्यवादी नीति–अंग्रेज अपनी साम्राज्यवादी नीति के अंतर्गत चीन में अधिक–से–अधिक फायदे चाहते थे। चीन की मंचू सरकार ने व्यापार पर कई प्रतिबन्ध लगा रखे थे। अतः इंग्लैंड व चीन के बीच संघर्ष की स्थिति निर्मित हुई।

(2) विदेशियों को हेय दृष्टि से देखना–चीन के लोग विदेशियों को हेय दृष्टि से देखते थे। उन्हें चीन की जनता से सीधे सम्पर्क की अनुमति नहीं थी। जो अंग्रेज अपने आपको सर्वश्रेष्ठ मानते थे, वे भला ऐसी विषम परिस्थितियों में कैसे रहते, अतः संघर्ष की स्थिति निर्मित हुई।

(3) कैण्टन में व्यापार–अंग्रेज केवल कैण्टन की खिड़कियों से चीन में झाँक भर सकते थे। उन्हें चीन में प्रवेश की अनुमति नहीं थी। व्यापारिक सीजन में ही वे कैण्टन आ सकते थे, परन्तु अपने परिवार को मकाओ छोड़कर आना पड़ता था। व्यापारिक सीजन के अलावा सारा समय मकाओ में ही रहना पड़ता था। इस प्रकार के प्रतिबन्ध अंग्रेजों के लिए असह्य थे।

(4) को हॉग माध्यम–1752 ई. में व्यापारिक गतिविधियों के संचालन हेतु 13 व्यापारियों का एक 'को हॉग माध्यम' चीनी सरकार द्वारा गठित किया गया था। अंग्रेजों को इसी 'को हॉग माध्यम' के द्वारा व्यापार करना पड़ता था। यह संघ न्यूनम मूल्य पर सामान अंग्रेजों से लेकर, अधिकतम मूल्य पर चीन में बेचता था। अतः जो मुनाफा अंग्रेजों को मिलना चाहिए था, वह को हॉग माध्यम को मिलता था। अतः इससे भी अंग्रेज असन्तुष्ट थे।

(5) राज सम्पर्क का अभाव–कैण्टन स्थित ब्रिटिश सुपरिण्टेण्डेण्ट से मंचू सम्राट सम्पर्क करना पसन्द नहीं करते थे। उनका कहना था कि व्यापारिक मामले 'को हॉग' माध्यम से ही सुलझाएँ। अंग्रेजों का कहना था, कि कैण्टन स्थित सुपरिण्टेण्डेण्ट ब्रिटेन का प्रतिनिधि है, अतः उसके साथ साधारण व्यापारियों जैसा व्यवहार नहीं करना चाहिए। ईस्ट इण्डिया कम्पनी के एकाधिकार के समाप्त होने पर 1834 ई. में लार्ड

नेपियर ब्रिटिश अधीक्षक बना परन्तु, इससे भी मंचू सम्राट ने सम्पर्क रखने से इनकार कर दिया। अंग्रेजों ने इसे अपना अपमान समझा।

(6) प्रार्थना–पत्र का प्रश्न–चीनी अधिकारियों का कहना था कि ब्रिटिश अधिकारी उन्हें कोई भी पत्र प्रार्थना–पत्र के रूप में दें, जबकि ब्रिटिश अधिकारी सन्देश–पत्र के रूप में पत्र व्यवहार करते थे। फलतः संघर्ष की स्थिति निर्मित हुई।

(7) कोतो प्रथा–चीनी मंचू सम्राट के समक्ष विदेशियों को 'कोतो प्रथा' का पालन करना अनिवार्य था। 'कोतो प्रथा' के अंतर्गत तीन बार घुटने टेक–कर नौ बार माथा जमीन पर टेकना होता था। यूरोपीय राज्यों के लिए यह प्रथा काफी अपमानजनक थी।

(8) राज्य क्षेत्रातीत अधिकार की समस्या–मतभेद का एक प्रमुख कारण यह भी था कि चीन स्थित अंग्रेज व्यापारी किसके अधीन रहें। यह समस्या तब पैदा हुई, जबकि 1784 ई. में एक अंग्रेज की बन्दूक से एक चीनी नागरिक की हत्या हो गयी। चीनी सरकार ने उस अंग्रेज पर मुकदमा चलाकर उसे प्राणदण्ड दे दिया। अंग्रेजों का कहना था कि राज्य क्षेत्रातीत अधिकार के अनुसार अंग्रेज अभियोगियों को उनके सुपुर्द कर दिया जाय तथा अंग्रेजों पर उन्ही की अदालतों में उन्हीं के कानूनों के अनुसार मुकदमा चलेगा। 1793 ई. में मैकार्टन मिशन ने कैण्टन की बस्ती में अंग्रेजों को स्वशासन का अधिकार एवं राज्य क्षेत्रातीत अधिकारों की माँग की, परन्तु चीन ने कोई ध्यान नहीं दिया। अतः अब निर्णय युद्ध द्वारा ही सम्भव था।

(9) अफीम व्यापार में वृद्धि–1800 ई. तक चीन में अफीम का आयात लगभग चार हजार पेटी से बढ़कर 1839 ई. तक तीस हजार पेटी तक पहुँच गया था। अफीम के उपयोग के घातक परिणामों एवं आर्थिक संकट को देखते हुए चीनी सरकार ने 1838 ई. में अफीम व्यापार को रोकने हेतु कठोर कदम उठाये। इससे अंग्रेज उत्तेजित हो गये।

(10) तात्कालिक कारण–कमिश्नर लिन्तसे–हु–शू की कार्यवाही–1839 ई. में चीनी सरकार ने कमिश्नर लिन्तसे–हु–शू को अफीम के तस्कर व्यापार को रोकने हेतु कैण्टन भेजा। लिन्तसे–हु–शू ने अफीम व्यापारियों के समक्ष निम्न दो माँगें रखीं–

(i) विदेशी व्यापारी अपनी समस्त अफीम सरकार को सौंप दें।

(ii) भविष्य में अफीम व्यापार न करने का आश्वासन दें।

ब्रिटिश व अन्य यूरोपियन व्यापारियों ने अपने पास विद्यमान 20 हजार अफीम की पेटियाँ लिन्तसे को सौंप दीं, जिन्हें उसने नमक और चूना मिलाकर नष्ट कर पानी में बहा दिया, परन्तु विदेशियों ने भविष्य में अफीम के व्यापार सम्बन्धी प्रश्न पर कोई आश्वासन नहीं दिया। इससे लिन्तसे नाराज हुआ। उधर अफीम की पेटियों के नष्ट करने से ब्रिटिश व्यापार अधीक्षक इलियट भी नाराज हुआ। परिणामस्वरूप युद्ध आरम्भ हो गया।

1839 ई. से 1842 ई. तक लगभग तीन वर्ष युद्ध चलता रहा। जब ब्रिटिश सेना दक्षिणी चीन को जीतकर नानकिंग की ओर बढ़ने लगी तो चीन को पराजय स्वीकार करते हुए सन्धि करनी पड़ी।

नानकिंग की सन्धि 29 अगस्त, 1842

नानकिंग सन्धि की प्रमुख शर्तें इस प्रकार थीं–

(1) अंग्रेजों को कैण्टन के साथ–साथ अमोय, फूचाऊ, निगपो एवं शंघाई आदि 5 चीनी बन्दरगाहों में बसने तथा व्यापार के अधिकार प्राप्त हो गये।

(2) हांगकांग का द्वीप अंग्रेजों को प्राप्त हुआ।

(3) चीन एवं ब्रिटेन के राजकर्मचारियों ने परस्पर समानता के आधार पर रहना स्वीकार किया।

(4) चीन में आयात–निर्यात पर कर की दरें निश्चित कर प्रकाशित करने का फैसला किया गया।

(5) को हॉग माध्यम समाप्त कर दिया गया। अब सीधे चीनी व्यापारियों के साथ व्यापार किया जा सकता था।

(6) चीन ने 2 करोड़ 10 लाख डॉलर क्षतिपूर्तिस्वरूप देना निम्नानुसार स्वीकार किया–

(i) 60 लाख डॉलर, नष्ट अफीम की कीमत,

(ii) 30 लाख डॉलर, 'को हॉग माध्यम' पर ब्रिटिश व्यापारियों की देनदारी,

(iii) 1 करोड़ 20 लाख डॉलर युद्ध क्षतिपूर्ति की राशि।

(7) यह भी स्वीकार किया गया कि मुख्य ब्रिटिश प्रतिनिधि एवं चीनी अधिकारियों के बीच पत्र–व्यवहार प्रार्थना–पत्र न कहकर सन्देश–पत्र कहा जायेगा।

(8) राज्य क्षेत्रातीत अधिकार के अंतर्गत यह मान लिया गया कि अंग्रेजों पर मुकदमे उन्हीं के कानूनानुसार उन्हीं की अदालत में चलेंगे।

(9) कोतो प्रथा समाप्त कर दी गयी।

(10) यह भी तय हुआ कि जो सुविधाएँ अन्य विदेशियों को कालान्तर में दी जाएँगी, वे सुविधाएँ भी अंग्रेजों को स्वतः ही मिल जाएँगी।

नानकिंग सन्धि का प्रभाव–प्रथम अफीम युद्ध एवं नानकिंग सन्धि के प्रभाव दूरगामी सिद्ध हुए। प्रमुख प्रभाव निम्न थे–

(1) युद्ध का प्रमुख कारण अफीम व्यापार का प्रश्न था मगर, अफीम व्यापार के नियन्त्रण के सम्बन्ध में कोई समझौता नहीं हुआ और अफीम का व्यापार निर्बाध रूप से जारी रहा।

(2) ब्रिटिश सेना द्वारा पराजय से मंचू सरकार की प्रतिष्ठा गिरी।

(3) ब्रिटेन ने बलपूर्वक चीन का द्वार खोलने में आंशिक सफलता प्राप्त की।

कैटलबी ने लिखा है कि ''ब्रिटिश बन्दूकों ने चीन में एक ऐसा छेद बना दिया था जिसके द्वारा न केवल व्यापार में वृद्धि हुई, अपितु अन्य यूरोपीय शक्तियों ने भी चीन में प्रवेश किया।''

(4) ब्रिटेन की देखा–देखी चीन के साथ अमेरिका ने 1844 ई. में ह्वाँगिया (Whanghia) सन्धि की। फ्रांस ने 1844 ई. में ही हवामपोआ की सन्धि सम्पन्न की। 1845 ई. में ही बेल्जियम के साथ एवं 1847 ई. में चीन को नॉर्वे व स्वीडन

के साथ सन्धि कर इन्हें व्यापारिक व अन्य सुविधाएँ देनी पड़ीं। इस प्रकार चीन का विशाल साम्राज्य पाश्चात्य यूरोपीय देशों के शोषण के लिए खुल गया। इलियट एवं डाउसन के अनुसार, ''चीन एक अन्तर्राष्ट्रीय उपनिवेश बन गया।''

(5) नानकिंग की सन्धि से उत्पन्न असन्तोष के कारण चीन में मंचू राजवंश के विरुद्ध कई विद्रोह हुए। इनमें ताइपिंग विद्रोह (1854–1864 ई.) सबसे प्रबल विद्रोह था, जिसे मंचू सम्राट को विदेशियों की मदद से दबाना पड़ा।

द्वितीय अफीम युद्ध, 1856–60 ई.

प्रथम अफीम युद्ध के पश्चात् ब्रिटेन के साथ–साथ अन्य यूरोपीय शक्तियों ने भी चीन में कई व्यापरिक सुविधाएँ प्राप्त कर ली थीं, परन्तु कालान्तर में सन्धि कार्यान्वयन में कुछ ऐसे दोष प्रकट हुए जिन्हें विदेशी दूर करवाना चाहते थे। अंग्रेज सन्धियों में और अधिक विस्तार चाहते थे। अमेरिका के साथ ह्वाँगिया एवं फ्राँस के साथ की गयी हवामपोआ सन्धियों में तो इस बात की व्यवस्था ही थी कि 10 वर्ष पश्चात् पुनः सन्धियों का पुनरीक्षण किया जायेगा। अतः जब इन विदेशी शक्तियों ने चीनी सरकार के समक्ष सन्धि पुनरीक्षण की माँग रखी तो उन्होंने कोई ध्यान नहीं दिया। परिणामस्वरूप विदेशियों विशेषतः अंग्रेजों को स्पष्ट हो गया कि बिना शक्ति प्रयोग के सन्धि पुनरीक्षण नहीं हो सकता अतः द्वितीय अफीम युद्ध की परिस्थिति निर्मित हुई। द्वितीय अफीम युद्ध के अन्य प्रमुख कारण निम्नलिखित थे–

(1) चीनी शासकों का भ्रम और अयोग्यता–चीनी मंचू शासक प्रथम अफीम युद्ध में हुई अपनी हार को अस्थायी एवं दुर्भाग्यपूर्ण मानते थे, परन्तु इसे घातक कदापि नहीं। उन्हें अब भी यह विश्वास था कि वह विदेशियों को नियन्त्रण में रख सकते हैं एवं अपनी अखण्डता की रक्षा करने में सक्षम हैं जो उनका एक मिथ्या भ्रममात्र था। वस्तुतः प्रथम अफीम युद्ध की हार ने मंचू शासकों की अयोग्यता एवं अक्षमता को उजागर कर दिया था। देश में भ्रष्टाचार, शोषण, बेकारी, भूखमरी, षड्यन्त्र एवं अफीम की तस्करी के कारण स्थिति दुर्बल एवं अराजकतापूर्ण होती जा रही थी। इन परिस्थितियों से पश्चिमी शक्तियाँ लाभ उठाकर अपनी साम्राज्यवादी महत्वाकांक्षाओं को सन्तुष्ट करना चाहती थी।

(2) चीन में नानकिंग की सन्धि से असन्तोष–चीनी लोग 1842 ई. की नानकिंग सन्धि तथा विदेशियों हेतु 5 बन्दरगाह खोल दिया जाना अपमानजनक मानते थे। अतः वहाँ विदेशियों के प्रति तीव्र घृणा की भावना व्याप्त थी।

(3) चीनियों को बलपूर्वक मजदूर बनाया जाना–चीन में व्याप्त बेकारी और भुखमरी का लाभ उठाकर विदेशियों ने चीनियों को मजदूर के रूप में क्यूबा एवं पेरू आदि स्थानों पर भेजा एवं बल प्रयोग भी किया। मंचू शासन ने इसका विरोध किया।

(4) चीनी जहाजों से वसूली–विदेशियों ने जल डाकुओं को पकड़ने के बहाने चीनी जहाजों से उनकी रक्षा के नाम पर काफी धनराशि वसूल की।

(5) व्यापारिक सुविधाओं के विस्तार की इच्छा–ब्रिटिश व्यापारी नानकिंग की सन्धि पर पुनर्विचार एवं और अधिक विस्तार चाहते थे। फ्रांस व अमेरिका ने भी इसका समर्थन किया। उनकी प्रमुख माँगों में–

(i) चीन के आन्तरिक भागों में प्रवेश की सुविधा।

(ii) पीकिंग में राजदूत रखने की सुविधा।

(iii) शुल्क की दरें समाप्त करने की सुविधा आदि प्रमुख थीं। फरवरी 1854 ई. में ब्रिटिश उच्चायुक्त लार्ड बोरिंग ने यह प्रस्ताव रखे।

(6) फ्रांसीसी पादरी को फाँसी–फरवरी, 1856 ई. में चीन के क्वांगत्सी स्थित अधिकारियों द्वारा एक कैथोलिक पादरी आगस्टे चेपरी लेन को विद्रोह के आरोप में बन्दी बनाकर फाँसी दे दी गयी। फ्रांस इसके लिए चीन को दण्डित करना चाहता था।

(7) लोर्चा एरो जहाज की घटना–यह घटना द्वितीय अफीम युद्ध का तत्कालीन कारण बनी। लोर्चा एरो जहाज का मालिक एक चीनी था, परन्तु उसका कप्तान एक अंग्रेज था। इस जहाज पर अंग्रेजी झण्डा फहरता था। चीनी अधिकारी जलदस्युओं को पकड़ना चाहते थे, अतः उन्होंने इस जहाज की तलाशी ली तथा उसके 13 चालकों को बन्दी बना लिया। ब्रिटिश वाणिज्यदूत ने इसका विरोध किया तथा 2 माँगें रखीं–

(i) जहाज चालकों को मुक्त करें।

(ii) घटना के लिए क्षमा माँगें।

चीनी शासन ने बन्दियों को मुक्त कर दिया, किन्तु क्षमा माँगने से इनकार कर दिया। अंग्रेजों को युद्ध का बहाना मिल गया।

युद्ध की घटनाएँ–इस युद्ध में अंग्रेजों का साथ फ्रांसीसियों ने दिया। अमेरिका तथा रूस युद्ध से अलग रहे। 30 मई, 1858 को आंग्ल–फ्रांसिसी सेनाएँ पीकिंग के निकट तीत्सिन में घुस गयी। चीनी सेनाएँ विदेशी सेनाओं का सामना करने में असमर्थ थीं, अतः उन्हें सन्धि को बाध्य होना पड़ा।

तीत्सिन की सन्धि

जून, 1858 ई. में चीनी सरकार के द्वारा नियुक्त सक्षम अधिकारी ने रूस, अमेरिका, इंग्लैंड तथा फ्रांस के साथ पृथक्–पृथक् चार सन्धियों पर हस्ताक्षर किये। उसकी निम्न शर्तें थीं–

(i) चीन ने 11 नवीन बन्दरगाह विदेशी व्यापार एवं निवास के लिए खोले।

(ii) विदेशी जहाजों को रक्षा व्यापार के निमित यांगत्सी नदी में प्रवेश की अनुमति मिली।

(iii) विदेशी राष्ट्रों को पीकिंग में राजदूत रखने की अनुमति प्राप्त हुई।

(iv) विदेशियों को चीन के आन्तरिक भागों में आवागमन की सुविधा मिली।

(v) ईसाई धर्म प्रचारकों को धर्म प्रचार की अनुमति मिली। उनकी रक्षा का उत्तरदायित्व चीनी सरकार का था।

(vi) चीन ने इंग्लैंड को 40 लाख तायल व फ्रांस को 20 लाख तायल युद्ध क्षतिपूर्ति देना स्वीकार किया।

(vii) चीन ने शुल्क की नयी एवं उदार दरें स्वीकार कीं।

(viii) अफीम व्यापार को कानूनी मान्यता प्राप्त हुई।

पीकिंग की सन्धि (अप्रैल, 1860 ई.)

पीकिंग सरकार तीत्सिन की सन्धि को स्वीकार करने में आनाकानी कर रही थी, अतएव पुनः युद्ध आरम्भ हो गया। चीनी सेनाएँ पराजित हुईं और अन्ततोगत्वा उसे अक्टूबर, 1860 ई. को पीकिंग की सन्धि को स्वीकार करना पड़ा।

इसके द्वारा–(1) तीत्सिन की सन्धि को मान्य किया गया।

(2) तीत्सिन को विदेशी व्यापार हेतु खोला गया।

(3) कोलून प्रायद्वीप ब्रिटेन को प्राप्त हुआ।

(4) पीकिंग में ब्रिटिश प्रतिनिधि को स्थायी निवास की सुविधा मिली।

(5) चीनी मजदूरों को विदेश भेजा जाना वैध घोषित किया।

पीकिंग सन्धि का परिणाम

परिणाम–(1) विदेशियों के साथ दो युद्धों में पराजय के परिणामस्वरूप मंचू राजवंश की नींव हिल गयी।

(2) विदेशियों को चीन के आन्तरिक भागों में प्रवेश करने और चुंगी व्यवस्था में अधिकार प्राप्त हुआ।

(3) पश्चिमी धर्म प्रचारक अब चीन में भूमि भी खरीद सकते थे।

(4) 16 बन्दरगाह व्यापार हेतु खुल गये और इससे चीन की एकता, अखण्डता और सम्प्रभुता को खतरा उत्पन्न हो गया।

इस प्रकार प्रथम अफीम युद्ध द्वारा चीनी शोषण के अपूर्ण कार्य को द्वितीय अफीम युद्ध ने पूर्ण कर दिया और अब चीन के रूप में विदेशी शक्तियों को एक ऐसी दुधारू (दूध देने वाली) गाय मिल गयी कि यूरोपीय इसका मनमाना शोषण करते रहे। लगभग सभी प्रमुख शक्तियों ने चीन में अपने–अपने प्रभाव क्षेत्र स्थापित कर चीनी तरबूज का बँटवारा कर लिया।

चीन–जापान युद्ध (1894–95 ई.)

कोरिया चीन का संरक्षित राज्य था। कोरिया की प्राकृतिक सम्पदा, भौगोलिक स्थिति एवं सामरिक महत्व के कारण जापान इसे हस्तगत करना चाहता था। विदेशी शोषण से उजागर, दुर्बलता का लाभ उठाकर चीनी दैत्य को जापानी बौने ने 1894–95 में करारी मात दी और शिमोनेस्की की सन्धि (1895 ई.) द्वारा कोरिया को स्वतन्त्र मान लिया गया। मंचूरिया स्थित लियाओतुंग प्रायद्वीप, फारमोसा (वर्तमान ताइवान) एवं पेस्काडेरस द्वीप जापान को मिले। 20 करोड़ तायल युद्ध क्षतिपूर्ति चीन ने जापान को देना स्वीकार किया। शान्ची, शूचो, हंग चो एवं चुंगकिंग आदि चार बन्दरगाह जापानी व्यापार हेतु खुल गये।

जापान की विजय से चीन की सैन्य दुर्बलता का खोखलापन और अधिक उजागर हो गया। 19वीं शताब्दी में अमेरिका ने अपनी औद्योगिक प्रगति के कारण चीन के बाजार को अपने माल की खपत हेतु उचित पाया। अतः उसने भी अन्य यूरोपीय शक्तियों की तरह ही चीन में लाभ प्राप्त करने के लिए मुक्त द्वार की नीति (Open

Door Policy) प्रतिपादित की। इस नीति के अंतर्गत अमेरिका को सभी यूरोपीय देशों द्वारा चीन में स्थापित अपने प्रभाव क्षेत्रों में अपने व्यापारिक हित साधने का अवसर मिल गया।

इस प्रकार अब चीन की लूट–खसोट में अत्यधिक वृद्धि, हुई, यूरोपीय देशों के साथ–साथ रूस, अमेरिका एवं जापान भी चीन के शोषण में शामिल हो गये।

ताइपिंग विद्रोह (1851–64 ई.)

चीन के इतिहास में ताइपिंग विद्रोह की घटना अत्यन्त महत्वपूर्ण है। मंचू शासन की जड़ों को हिलाकर रख देने वाले इस विद्रोह के निम्नलिखित कारण थे–

(1) चीनियों की यह धारणा थी कि तिएन (स्वर्ग) वांग (सम्राट) को अपना मिंग (आज्ञा–पत्र) देकर पृथ्वी पर भेजता है और इसका पालन न करने वाले को हटा दिया जाना उचित है। उनकी धारणा थी कि तिएन के मिंग वापस लेने का सूचक दुर्भिक्ष, अतिवृष्टि, महामारी आदि प्राकृतिक प्रकोप होते हैं जो चीन में विद्यमान हैं।

(2) मंचू शासक अपनी अयोग्यता और दुर्बलता के कारण न तो विदेशियों को शोषण करने से रोक पा रहे थे और न ही देश की आन्तरिक आर्थिक व्यवस्थाओं को सुधार पा रहे थे।

(3) कम वेतन, प्रशिक्षण आदि के अभाव में सेना में असंतोष था।

(4) युद्ध तथा क्षतिपूर्ति के प्रश्नों ने चीन का खजाना खाली कर दिया था और इसकी पूर्ति के लिए जब कृषकों पर कर लगाये, तब स्थिति और खराब हुई। कृषक अपनी जमीन बेचने को मजबूर हुए।

(5) मंचू शासकों की पाश्चात्य साम्राज्यवादियों के विरुद्ध असफलता और अयोग्यता ने चीनी राष्ट्रवादियों को मंचू शासन का अन्त करने को प्रेरित किया।

(6) चीनियों ने प्राचीन गौरव की पुनः स्थापना के लिए गुप्त समितियों की स्थापना की।

(7) 1849 ई. में क्वांगतुंग में घोर दुर्भिक्ष का पड़ना ताइपिंग विद्रोह का तात्कालिक कारण बना।

विद्रोह और उसका दमन

ताइपिंग विद्रोह हुंग–सियू–चुआन के नेतृत्व में हुआ। नवम्बर, 1850 से फरवरी, 1851 ई. तक चुआन की सेनाओं ने मंचू सेनाओं को पराजित किया। उसने घोषणा की कि तिएन (स्वर्ग, ईश्वर) ने उसे मंचुओं के विनाश एवं ताइपिंग (महान शान्ति) की स्थापना के लिए पृथ्वी पर भेजा है। उसने मंचू सेनाओं को परास्त करने के बाद ताइपिंग–तिएन–कुओ (महान शान्ति का दैवीय साम्राज्य) की घोषणा की एवं वह स्वयं इसका तिएन वांग (ईश्वरीय सम्राट) बना। नानकिंग का नाम उसने तिएन चिंग (ईश्वरीय राजधानी) कर दिया।

ताइपिंग सेनाएँ तीत्सिन तक पहुँच गयीं। विद्रोही सेनाओं की सफलता असाधारण थी, किन्तु शीघ्र ही विदेशियों के बल पर मंचू शासन ने ताइपिंग के विस्तार को रोका, फिर भी दक्षिणी चीन पर ताइपिंग सरकार का अधिकार बना रहा। द्वितीय अफीम

युद्ध के बाद विदेशी शक्तियों ने पुनः मंचू शासक की मदद की। परिणामस्वरूप 1864 ई. तक ताइपिंग सत्ता समाप्त हो गयी।

1853 ई. से 1864 ई. तक ताइपिंग सरकार ने आर्थिक एवं सामाजिक क्षेत्र में अनेक सुधार कार्य किये।

ताइपिंग विद्रोह की असफलता के कारण

(1) विनाके के अनुसार आन्दोलन ने रचनात्मक नेतृत्व का सृजन नहीं किया था।

(2) आन्दोलनकारियों में मतभेद पैदा हो गये थे।

(3) प्रारम्भिक सफलता के बाद आन्दोलनकारियों ने ताइपिंग सिद्धान्त की अवहेलना की।

(4) जनता ने हिंसा और आतंक से परेशान होकर मंचू शासन का समर्थन किया।

अन्ततोगत्वा हम कह सकते हैं कि ताइपिंग विद्रोह ने 1911 ई. की चीनी क्रान्ति का मार्ग प्रशस्त किया।

बॉक्सर विद्रोह

राजमाता त्सू–ह–सी एवं उसके समर्थकों ने सुधारवादी आन्दोलन को दबा दिया, परन्तु चीन में व्याप्त असन्तोष की भावना का दमन नहीं किया जा सका। इस असन्तोष की प्रतिक्रियास्वरूप चीन में एक और विद्रोह हुआ, जिसे बॉक्सर विद्रोह कहा जाता है।

कारण

(1) चीन के लोगों में विदेशी लोगों के प्रति विरोध एवं विद्वेष की भावना थी। मंचू शासन विदेशियों को नियन्त्रित करने में असफल रहा था।

(2) चीनी अधिकारी और जनता ईसाई पादरियों द्वारा शासन में हस्तक्षेप की नीति से असन्तुष्ट थे।

(3) चीनियों में देशी ईसाइयों के प्रति आक्रोश की भावना थी।

(4) ईसाई मिशनरियों के विरुद्ध अफवाहें चीनियों के मन में घृणा फैला रही थीं।

(5) चीन की आर्थिक दीवालियापन की स्थिति ने चीनियों को पश्चिम विरोधी और असन्तुष्ट बन दिया।

(6) राष्ट्रवादी चीनियों ने विदेशी विरोधी संस्थाएँ स्थापित कीं।

(अ) का–लाओ–हुई (बन्धुओं और बुजुर्गों का संगठन),

(ब) ता–लाओ–हुई (बड़ी तलवार वाला संगठन),

(स) ई–हो–छुआंन (पवित्र और व्यवस्थित मुक्केबाजों का संगठन)।

ई–हो–छुआन का नेता चू–हेंग–तिंग था। इस संगठन के सदस्य मुट्ठी बन्द करके शारीरिक बल का प्रयोग करते थे। इसीलिए इन्हें बॉक्सर कहा गया। इनका प्रमुख नारा था ''विदेशियों को चीन से बहिष्कृत करो।'' पहले ये मंचू शासन के भी विरुद्ध थे, परन्तु विद्रोह के विस्तार के साथ ही जब मंचू शासन की सहानूभूति बॉक्सर लोगों के प्रति बढ़ी तो उन्होंने मंचुओं की रक्षा का भी नारा दिया।

विद्रोह और उसका दमन

बॉक्सर विद्रोह 1899 ई. में शान्तुंग प्रांत से प्रारम्भ होकर शान्सी, चेहली और दक्षिण मंचूरिया तक फैल गया। विद्रोहियों ने ईसाई पादरियों, इंजीनियरों और विदेशी दूतावासों को अपना शिकार बनाया तथा तोड़फोड़ की कार्यवाहियाँ की। इन परिस्थितियों में विदेशियों ने एक संयुक्त सेना का गठन किया और बॉक्सर विद्रोह का दमन कर दिया।

असफलता के कारण

बॉक्सर विद्रोह जितनी तेजी से प्रारम्भ हुआ, उतनी ही तेजी से उसका अन्त हो गया। उसके निम्नांकित प्रमुख कारण थे–

(1) जनता ने विद्रोहियों का साथ नहीं दिया।

(2) अनेक उच्च अधिकारी और प्रान्तीय सूबेदार विद्रोहियों के विरोधी थे।

(3) मंचू शासन ने अवसरवादिता का प्रदर्शन किया।

(4) संगठित विदेशी सेनाओं की तुलना में बॉक्सर टिक नहीं सके।

परिणाम

बॉक्सर विद्रोह के दमन के पश्चात् 7 सितम्बर, 1901 को चीन एवं विदेशी शक्तियों ने बॉक्सर प्रोटोकॉल पर हस्ताक्षर किये। उसके अनुसार चीन ने क्षमा याचना करने, विद्रोहियों को दण्डित करने तथा क्षतिपूर्ति चुकाने इत्यादि की अपमानजनक शर्तें स्वीकार कीं। इस विद्रोह से मंचू शासन की प्रतिष्ठा और घटी एवं चीन के राजनीतिक भविष्य पर दूरगामी प्रभाव पड़े।

क्लाइड के अनुसार, ''उससे मंचू वंश की समाप्ति और गणराज्य की स्थापना का समय निकट आया।''

चीन में साम्राज्यवादियों की स्थिति सुदृढ़ हो गयी। बॉक्सर विद्रोह असफलता के बावजूद 1911 ई. की क्रान्ति की प्रगति में एक कदम माना जाता है।

एवस्टीन के अनुसार, ''यह चीन को डाकुओं द्वारा बाँट खाने की योजना से बचाने का उसकी आम जनता का वीरतापूर्ण स्वाभाविक प्रयास था।''

चीनी परीक्षा प्रणाली–1890 के दशक में बड़ी संख्या में चीनी विद्यार्थी पढ़ने जापान गये। 1902 में पीकिंग विश्वविद्यालय की स्थापना हुई। चीन में प्राचीन समय से सत्ता में प्रवेश हेतु परीक्षा प्रणाली अस्तित्व में थी। 3 वर्ष में 2 बार परीक्षा आयोजित की जाती थी। इसी परीक्षा द्वारा डिग्रीधारक सिविल सेवाओं में प्रवेश पाते थे। 1905 में यह परीक्षा प्रणाली समाप्त हो गई।

1911 ई. की चीनी क्रान्ति

बॉक्सर विद्रोह की असफलता के बाद चीन में गणतन्त्र की मांग होने लगी। क्लाइड ने लिखा भी था कि ''बॉक्सर विद्रोह से चीन के राजनीतिक भविष्य पर दूरगामी प्रभाव पड़े। इससे मंचू वंश की समाप्ति एवं गणराज्य की स्थापना का समय निकट आ गया। इस रूप में वह चीन की क्रान्ति की प्रगति में एक महत्वपूर्ण कदम था।'' 1895 ई. के पश्चात् से जो घटनाएँ घटित हुईं अर्थात्– चीन की पराजय, पाश्चात्य देशों द्वारा लूट–खसोट, बॉक्सर विद्रोह की असफलता एवं 1904 ई. में रूस पर जापान की

विजय। इन सबने चीनी जनता पर एक ही प्रभाव डाला कि मंचू सरकार को हटाया जाय तभी चीन को शक्तिशाली बनाया जा सकता है।

क्रान्ति की प्रगति– बुचांग का विद्रोह शीघ्र ही शांतुग, चेहली, शान्सी, कैन्टन आदि स्थानों तक फैल गया। क्रान्तिकारियों ने क्रान्ति परिषद् का गठन किया एवं शंघाई में सैनिक सरकार की स्थापना की।

क्रान्ति के दौरान ही पीकिंग की विधानसभा ने शासन में सुधार के लिए मंचू सम्राट को विवश किया। 30 अक्टूबर, 1911 को मंचू सरकार ने सभी सुधार माँगों को स्वीकार कर लिया। इससे चीनी सम्राट की स्थिति वैधानिक प्रमुख की भाँति हो गयी। विधानसभा द्वारा प्रतिपादित संविधान के सिद्धान्तों को भी स्वीकार किया।सम्राट ने विद्रोह के दमन के लिए युआन–शिह–काई को प्रधानमंत्री निर्वाचित किया।

12 फरवरी, 1912 को युआन–शिह–काई और सन्यात सेन के मध्य समझौता हो गया। उसके अनुसार–

(1) मंचू राजवंश का शासन समाप्त किया गया।

(2) अल्पवयस्क सम्राट ह्युआन तुंग को आजीवन नाममात्र के सम्राट की पदवी का प्रयोग करने की अनुमति दी गयी।

(3) युआन–शिह–काई को अस्थायी राष्ट्रपति निर्वाचित किया गया।

युआन–शिह–काई तथा क्रान्तिकारियों में समझौता

युआन–शिह–काई वैध राजसत्ता की स्थापना का समर्थक था। उसने अपनी शक्ति को बनाये रखते हुए मंचू सेनाओं और क्रान्तिकारियों दोनों की शक्ति को सन्तुलित रखने की कोशिश की। उसी समय, जबकि वह शंघाई की क्रान्तिकारी सरकार से बातचीत कर रहा था, नानकिंग में सन्यात सेन के नेतृत्व में क्रान्तिकारी गणतन्त्रीय सरकार का गठन हो गया। गणतन्त्रवादियों ने युआन–शिह–काई को प्रस्ताव भेजा, कि यदि वह गणतन्त्र को स्वीकार कर लेगा तो उसे राष्ट्रपति स्वीकार कर लिया जायेगा।

12 फरवरी, 1912 को युआन–शिह–काई और सन्यात सेन के मध्य समझौता हो गया। उसके अनुसर–

(1) मंचू राजवंश का शासन समाप्त किया गया।

(2) अल्पवयस्क सम्राट ह्युआन तुंग को आजीवन नाममात्र के सम्राट की पदवी का प्रयोग करने की अनुमति दी गयी।

(3) युआन–शिह–काई को अस्थायी राष्ट्रपति निर्वाचित किया गया।

(4) सन्यात सेन की क्रान्तिकारी परिषद् ने अपनी सरकार को भंग करके युआन–शिह–काई को राष्ट्रपति स्वीकार कर लिया।

सम्राट ह्युआन तुंग (6 वर्ष) की ओर से 12 फरवरी, 1912 को घोषणा की गई कि सम्राट ने अपने अधिकार युआन–शिह–काई को सौंप दिये हैं, ताकि वे गणतन्त्र की स्थापना कर सकें। इस प्रकार चीन के गणतंत्र की स्थापना हुई।

अपनी प्रगति जांचिए

7. प्रथम अफीम युद्ध में किस देश ने चीन पर आक्रमण किया था?
   (क) इंग्लैंड (ख) फ्रांस
   (ग) जापान (घ) अमेरिका
8. चीन में द्वितीय अफीम युद्ध कब आरम्भ हुआ?
   (क) 1839 (ख) 1846
   (ग) 1856 (घ) 1860
9. को हॉग क्या था?
   (क) एक प्रकार का कर (ख) चीनी कमिश्नर
   (ग) 13 व्यापारियों का संघ (घ) एक चीनी बन्दरगाह
10. चीन–जापान युद्ध कब हुआ?
    (क) 1894–95 ई. (ख) 1895–96 ई.
    (ग) 1896–97 ई. (घ) 1897–98 ई.
11. चीन में ताइपिंग विद्रोह का नेतृत्व किसने किया?
    (क) माओ त्से तुंग (ख) चाऊ एन लाई
    (ग) हुंग–सियू–चुआन (घ) युवान शिहकाई
12. चीन में बॉक्सर विद्रोह कब आरम्भ हुआ?
    (क) 1890 (ख) 1899
    (ग) 1801 (घ) 1905

5.5 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर

1. (क)
2. (ख)
3. (क)
4. (ख)
5. (घ)
6. (ग)
7. (क)
8. (ग)
9. (ग)
10. (क)
11. (ग)
12. (ख)

5.6 सारांश

19वीं शताब्दी के अन्त में मध्यपूर्व में तुर्की साम्राज्य की निर्बलता एवं उसके आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप (विदेशी) के कारण तुर्की का युवा वर्ग दुःखी था। यह वर्ग यूरोप में व्याप्त राष्ट्रीय भावनाओं से प्रेरित था और पाश्चात्य शिक्षा एवं विचारधारा से प्रभावित था। इस वर्ग का विचार था कि जब तक तुर्की साम्राज्य में– पाश्चात्य सभ्यता एवं संस्कृति का विकास नहीं होगा। तुर्की शासन प्रणाली एवं सामाजिक व्यवस्था में क्रान्तिकारी परिवर्तन नहीं होगा तब तक तुर्की शक्तिशाली एवं प्रगतिशील राष्ट्र नहीं बन सकता। 1876 में इसी भावना से प्रेरित होकर तुर्की में राजनीतिक क्रान्ति हुई और अब्दुल हमीद गद्दी पर बैठा। परन्तु अब्दुल हमीद ने भी युवा तुर्कों को निराश किया। अतः राष्ट्रवादी युवा तुर्कों को देश के बाहर रह कर राष्ट्रवादी संगठनों की स्थापना करनी पड़ी।

1890 में 'द कमेटी ऑफ यूनियन एण्ड प्रोग्रेस', 1905 में 'वतन' नामक संस्था का गठन, 'फादरलैण्ड एण्ड लिबर्टी' तथा आटोमन सोसाइटी ऑफ लिबर्टी' की स्थापना इसका ही परिणाम था।

अप्रैल 1909 में युवा तुर्कों द्वारा की गयी पुनः क्रान्ति के परिणामस्वरूप अब्दुल हमीद का स्थान मुराद पंचम ने लिया। मुराद पंचम के मंत्रिमण्डल में युवा तुर्कों का प्रभुत्व था। उन्होंने सैनिक अधिनायक तन्त्र की स्थापना की और उग्र राष्ट्रीयता की भावना पर आधारित तुर्कीकरण की नीति का अवलम्बन किया। इसके घातक परिणाम हुये। युवा तुर्क अपने वचनों के प्रति सच्चे शिष्य नहीं हुये। उनकी तुर्कीकरण की नीति के कारण बाल्कन प्रायद्वीप में युद्ध हुये। उन्होंने शासकों की जाति के रूप में अपने आप को सिद्ध करने की कोशिश की। फलतः उन्होंने जैसा बीज बोया वैसा ही फल पाया।

युवा तुर्क आन्दोलन की महत्ता इसमें है कि इसके कारण तुर्क राष्ट्रीयता का उदय हुआ, युवा तुर्क पहली बार संगठित हुये। तुर्की में जनतन्त्रात्मक शासन पद्धति को आरम्भ हुआ। सेना में सुधारवादी प्रगति को जन्म मिला तथा क्रान्तिकारी सुधारों की पृष्ठभूमि तैयार हुई।

बर्लिन सम्मेलन के निर्णायकों ने बाल्कन क्षेत्र के मानचित्र में जो परिवर्तन किये उसमें अनेक दोष थे। बर्लिन सम्मेलन के निर्णायकों का मुख्य उद्देश्य पूर्वी समस्या का स्थायी एवं सन्तोषजनक समाधान खोजना था। परन्तु यह सम्मेलन ऐसा समाधान खोजने में असफल रहा। प्रत्येक बाल्कन राज्य असन्तुष्ट हुआ। डेविड थाम्पसन के अनुसार बर्लिन कांग्रेस के निर्णयों का विशिष्ट परिणाम यह निकला कि प्रत्येक राष्ट्र और अधिक चिन्तित और असन्तुष्ट हो गया।

इस सम्मेलन ने महायुद्ध की ओर कदम बढ़ाया। इसीलिये ब्रिटिश राजदूत लियर्ड ने लिखा है, ''टेबल के आस–पास बैठ कर नक्शे पर किसी साम्राज्य का विभाजन करना सरल है किन्तु उसे कार्यान्वित करना काफी कठिन है।''

इस प्रकार यूरोप के सभी देश बाल्कन राज्यों की मुक्ति का नारा लगाकर अपने स्वार्थों को साधना चाहते थे परन्तु उनके स्वार्थ आपसी प्रतिद्वन्द्विता और टकराव के बिना पूरे नहीं हो सकते थे। इसका परिणाम यह हुआ कि, बाल्कन राज्यों की मुक्ति

के पेचीदा मामले को यूरोपीय महाशक्तियों ने निहित स्वार्थों के वशीभूत और अधिक पेचीदा बना दिया।

तुर्की साम्राज्य के अधीनस्थ मध्यपूर्व का भाग बाल्कन प्रायःद्वीप कहलाता था। बाल्कन प्रायद्वीप में बोस्निया, हर्जगोवीना, सर्बिया, बल्गारिया, यूनान, माल्डेविया, बालेशिया, मोंटेनेग्रो आदि क्षेत्र आते हैं।

बाल्कन प्रायद्वीप के निवासी स्लाव नस्ल के थे, ईसाई धर्म को मानते थे, ग्रीक चर्च के अनुयायी थे। तुर्की सुल्तान ने बाल्कन प्रायद्वीप में निवास करने वाले विभिन्न धर्म एवं जातियां को एकजुट रखने व उनकी भावनाओं को समझने का कभी प्रयास नहीं किया। उनके प्रति उपेक्षा और शत्रुता का व्यवहार किया। इसी कारण 1789 ई. की फ्रांसीसी क्रान्ति से प्रभावित होकर बाल्कन राज्यों ने तुर्की की दासता से मुक्ति हेतु संघर्ष आरम्भ किया। दूसरी ओर यूरोप के बड़े राष्ट्रों ने निहित स्वार्थों के वशीभूत बाल्कन समस्या में रुचि लेना आरम्भ किया।

बाल्कन राज्यों द्वारा तुर्की शासन से मुक्त होने के लिये जो प्रयास आरम्भ किये उसके कारण ही सर्बिया और यूनान को स्वतन्त्रता मिली तथा 1854 से 1856 ई. तक क्रीमिया युद्ध लड़ा गया।

बाल्कन समस्या को सुलझाने के लिये यूरोपीय राष्ट्रों के प्रयासों के बावजूद जब समस्या नहीं सुलझी व तुर्की अत्याचार जारी रहे तब रूस ने बाल्कन राज्यों के पक्ष में तुर्की से 1877–78 का युद्ध लड़ा और उसे सेन स्टीफनों की सन्धि हेतु विवश किया। इस सन्धि से रूस का बाल्कन राज्यों पर प्रभावपूर्ण नियन्त्रण स्थापित हो गया। यूरोपीय राज्यों से रूस की यह सफलता देखी नहीं गयी। अतएव रूस को सेन स्टीफनों की सन्धि पर पुनर्विचार के लिये बर्लिन सम्मेलन में आने पर विवश किया गया।

बर्लिन सम्मेलन भी बाल्कन राज्यों को संतुष्ट नहीं कर पाया बल्कि उससे बाल्कन में नवीन समस्यायें उभर कर सामने आयीं। तुर्की सुल्तान ने भी अपने अधीनस्थ बाल्कन क्षेत्रों पर अत्याचारों का सिलसिला जारी रखा। फलतः बाल्कन राज्यों में उत्पन्न असन्तोष से स्थिति विस्फोटक हो गयी।

युवा तुर्क आन्दोलन ने बाल्कन राज्यों में एक आशा की किरण जगायी थी परन्तु शीघ्र ही उनकी तुर्कीकरण की नीति ने बाल्कन राज्यों को एक होने पर विवश कर दिया।

मेसीडोनिया, आर्मीनिया और अल्बानिया ने अपने ईसाई भाइयों की रक्षा के लिये बाल्कन राज्यों के साथ आपसी मतभेद भुलाते हुये बाल्कन संघ की स्थापना की। परिणामस्वरूप प्रथम बाल्कन युद्ध हुआ। इस युद्ध में तुर्की पराजित हुआ और उसे लन्दन की सन्धि द्वारा अपने अनेक भाग बाल्कन संघ को सौंपने पड़े।

ब्रिटिश द्वीप समूह के समान सुदूर पूर्व में जापान भी अपनी विशिष्ट भौगोलिक स्थिति के कारण पूर्वी एशियायी देश होते हुए भी पूर्वी एशिया से पृथक् रहा। अपनी विशिष्ट भौगोलिक स्थिति के कारण एक लम्बे समय तक जापान शेष विश्व से अलग–थलग रहा। कई विद्वानों का मानना है कि जापान ने एक लम्बे समय तक अपने बन्द द्वार, स्वेच्छा से ही पाश्चात्य विचारों के ग्रहण करने के लिये खोले। जापान एशिया महाद्वीप के पूर्वी किनारे पर प्रशान्त महासागर में चार बड़े एवं अनेक छोटे

(लगभग 3,000 द्वीप) द्वीपों की श्रृंखला से आबद्ध है। अपनी विशिष्ट भौगोलिक स्थिति के कारण ही जापान को सूर्योदय का देश (Land of rising Sun) कहा जाता है।

मेइजी पुनर्स्थापना से जापान में एक नये युग का सूत्रपात हुआ। जापान में सामन्ती प्रथा का अन्त हुआ एवं उसने आधुनिकीकरण की ओर कदम बढ़ाये। अमेरिका के कमोडोर पेरी ने सर्वप्रथम जापान के द्वार अमेरिका के लिये खोले। पश्चिमी देशों के साथ सम्पर्क द्वारा ही जापान ने अत्यन्त तीव्र गति से अपना विकास किया और कम समय में ही एक विकसित राष्ट्र के रूप में पश्चिमी देशों के समकक्ष आ गया। वस्तुतः जापान ने पश्चिमी राष्ट्रों का अन्धानुकरण न कर, अपने पुरातन मूल्य एवं आदर्शों के अनुरूप, पश्चिमी विचारों को ढालकर अपना विकास किया। इस तारतम्य में हैराल्ड एम. विनाके ने भी लिखा है, ''इतने कम वर्षों में जापान का एक आधुनिक शक्ति के रूप में उदय तथा बाद में रूस के साथ हुए युद्ध में उसकी सैनिक सफलता, वास्तव में उसके आधुनिकीकरण या पश्चिमीकरण का फल नहीं था। उसकी ये सफलताएँ सम्भव हुईं, क्योंकि जापान के पश्चिमी सम्पर्क के लिये खुलने के बाद के वर्षों की घटनाओं व परिवर्तनों से जापान में धीरे–धीरे प्राचीन की जगह नई–नई व्यवस्था आती गई। जापान का आधुनीकरण प्राचीन जापान का तर्कसंगत विकसित रूप ही था।'' जापान में चावल यहाँ की बुनियादी फसल है। मछली यहाँ प्रोटीन का प्रमुख स्रोत मानी जाती है। कच्ची मछली साशिमी या–सुशी विश्व भर में प्रसिद्ध है। उन्हें स्वास्थ्य के लिए अत्यधिक उपयोगी माना जाता है।

चीन के इतिहास का आधुनिक काल मंचू राजवंश के आरम्भ से माना जाता है। मिंग वंश (1368–1644ई.) के पश्चात् चीन में लगभग पौने तीन सौ साल (1644 ई. से 1912 ई. तक) मंचू वंश ने शासन किया। नुरहचू नामक वीर योद्धा के पुत्र हॉगताईची ने मिंग वंश का अन्त कर 1644 ई. में मंचू राजवंश का आरम्भ किया। अन्तिम मिंग सम्राट ने पराजय के अपमान से दुःखी होकर आत्महत्या कर ली। चीन के उत्तरी क्षेत्र में मंचू जाति का निवास था, जिसे वर्तमान मे मंचूरिया कहा जाता है। कांग–हसी (1662–1722 ई.) मंचू राजवंश का प्रथम प्रतापी सम्राट था। वह भारत के औरंगजेब, रूस के पीटर महान एवं फ्रांस के लुई चौदहवें का समकालीन था।

1514 ई. में पुर्तगाली सर्वप्रथम चीन पहुँचे। चूँकि पुर्तगाली एशिया वालों को हेय दृष्टि से देखते थे एवं उनके साथ गुलामों के जैसा अमानवीय व्यवहार करते थे, अतः मिंग शासकों ने उन्हें चीन में घुसने नहीं दिया। ये चीन के बाहर कैण्टन के समीप में एक द्वीप पर रहने लगे। 1557 ई. में इन्होंने मकाओ में एक बस्ती बसाई। पुर्तगालियों के पश्चात् अन्य देश भी व्यापार की आशा में चीन आने लगे। 1575 ई. में स्पेन, 1604 ई. में डच, 1637 ई. में अंग्रेज एवं 1774 ई.में अमेरिकी चीन पहुँचे। 1689 ई. में चीन ने रूस के साथ आधुनिक युग की प्रथम सन्धि 'नर्चिस्क की सन्धि' (Teaty of Nerchinsk) सम्पन्न की। उस सन्धि द्वारा चीन व रूस के मध्य सीमा का निर्धारण हुआ।

1685 ई. में मंचू सम्राट कांग–हसी ने यूरोपियों को चीन के तटवर्ती बन्दरगाहों से व्यापार की अनुमति प्रदान की थी, मगर यूरोपीय लोग इस सुविधा का दुरूपयोग कर चीन के आन्तरिक मामलों में दखल करने लगे। उस हस्तक्षेप के कारण मंचू सम्राट चिएन लुंग (1736–1796 ई.) ने 1757 ई. में एक राजाज्ञा जारी कर यूरोपियों

का व्यापार मात्र कैण्टन तक ही सीमित कर दिया। कैण्टन में भी यूरोपियों को वर्षभर रहने की अनुमति नहीं दी। गर्मियों में तथा व्यापार के एक मौसम की समाप्ति तथा दूसरे व्यापारिक मौसम के आरम्भ होने के बीच की अवधि में विदेशी व्यापारियों को मकाओ जाना पड़ता था। मकाओ का पट्टा (लीज) पुर्तगाल को मिला हुआ था। चीनी सरकार नहीं चाहती थी कि यूरोपीय लोग कैण्टन में स्थायी बस्तियाँ बसा सकें। अतः यूरोपीय व्यापार हेतु जब कैण्टन आते थे, तब उन्हें अपना परिवार मकाओ छोड़कर आना पड़ता था।

यूरोपीय लोग समस्त विश्व में अपनी शर्तों पर व्यापार कर रहे थे, मगर चीन ने इन्हें अपनी शर्तों पर व्यापार करने हेतु मजबूर किया। चीन के मंचू राजवंश ने विदेशियों पर कई व्यापारिक प्रतिबन्ध लगा दिये। विदेशी लोग, उन व्यापारिक प्रतिबन्धों के चलते कैण्टन एवं मकाओ की खिड़कियों से झाँक भर सकते थे। केवल व्यापारिक मौसम में ही विदेशी कैण्टन आ सकते थे, बाकी समय उन्हें मकाओ में रहना पड़ता था। व्यापार की समस्त शर्ते चीनियों द्वारा तय की जाती थी।

ईस्ट इण्डिया कम्पनी भारत में बड़े पैमाने पर अफीम की खेती करा रही थी। अतःअंग्रेजों ने चीनियों को तम्बाकू में अफीम मिलाकर देना आरम्भ किया। इससे धीरे–धीरे चीन के लोग विशुद्ध अफीम के आदी हो गये। इस प्रकार अंग्रेजों ने निहित स्वार्थ के वशीभूत चीनियों को बड़े पैमाने पर अफीम का आदी बना दिया। अब अंग्रेजों को चीन से साथ व्यापार में काफी मुनाफा होने लगा। दूसरी ओर, अफीम की खपत से चीन को दो तरह से नुकसान हुआ– चीनी जनता का नैतिक पतन हुआ। चीन की आर्थिक स्थिति बिगड़ने लगी।

अफीम की खपत से चीन में उक्त घातक परिणामों को देखते हुए चीनी सरकार ने 1838 ई. में अफीम के व्यापार के विरुद्ध कठोर कार्यवाही शुरू की। इससे अंग्रेजों को हानि होने लगी और अपने आर्थिक घाटों के कारण अंग्रेज भड़क उठे। इसका परिणाम आंग्ल–चीन युद्ध के रूप में सामने आया।

कोरिया चीन का संरक्षित राज्य था। कोरिया की प्राकृतिक सम्पदा, भौगोलिक स्थिति एवं सामरिक महत्व के कारण जापान इसे हस्तगत करना चाहता था। विदेशी शोषण से उजागर, दुर्बलता का लाभ उठाकर चीनी दैत्य को जापानी बौने ने 1894–95 में करारी मात दी और शिमोनेस्की की सन्धि (1895 ई.) द्वारा कोरिया को स्वतन्त्र मान लिया गया। मंचूरिया स्थित लियाओतुंग प्रायद्वीप, फारमोसा (वर्तमान ताइवान) एवं पेस्काडेरस द्वीप जापान को मिले। 20 करोड़ तायल युद्ध क्षतिपूर्ति चीन ने जापान को देना स्वीकार किया। शान्ची, शूचो, हंग चो एवं चुंगकिंग आदि चार बन्दरगाह जापानी व्यापार हेतु खुल गये।

जापान की विजय से चीन की सैन्य दुर्बलता का खोखलापन और अधिक उजागर हो गया। 19वीं शताब्दी में अमेरिका ने अपनी औद्योगिक प्रगति के कारण चीन के बाजार को अपने माल की खपत हेतु उचित पाया। अतः उसने भी अन्य यूरोपीय शक्तियों की तरह ही चीन में लाभ प्राप्त करने के लिए मुक्त द्वार की नीति (Open Door Policy) प्रतिपादित की। इस नीति के अंतर्गत अमेरिका को सभी यूरोपीय देशों द्वारा चीन में स्थापित अपने प्रभाव क्षेत्रों में अपने व्यापारिक हित साधने का अवसर मिल गया।

इस प्रकार अब चीन की लूट–खसोट में अत्यधिक वृद्धि, हुई, यूरोपीय देशों के साथ–साथ रूस, अमेरिका एवं जापान भी चीन के शोषण में शामिल हो गये।

चीन के इतिहास में ताइपिंग विद्रोह की घटना अत्यन्त महत्वपूर्ण है। मंचू शासन की जड़ों को हिलाकर रख देने वाला ताइपिंग विद्रोह हुंग–सियू–चुआन के नेतृत्व में हुआ। नवम्बर, 1850 से फरवरी, 1851 ई. तक चुआन की सेनाओं ने मंचू सेनाओं को पराजित किया। उसने घोषणा की कि तिएन (स्वर्ग, ईश्वर) ने उसे मंचुओं के विनाश एवं ताइपिंग (महान शान्ति) की स्थापना के लिए पृथ्वी पर भेजा है। उसने मंचू सेनाओं को परास्त करने के बाद ताइपिंग–तिएन–कुओ (महान शान्ति का दैवीय साम्राज्य) की घोषणा की एवं वह स्वयं इसका तिएन वांग (ईश्वरीय सम्राट) बना। नानकिंग का नाम उसने तिएन चिंग (ईश्वरीय राजधानी) कर दिया।

ताइपिंग सेनाएँ तीत्सिन तक पहुँच गयीं। विद्रोही सेनाओं की सफलता असाधारण थी, किन्तु शीघ्र ही विदेशियों के बल पर मंचू शासन ने ताइपिंग के विस्तार को रोका, फिर भी दक्षिणी चीन पर ताइपिंग सरकार का अधिकार बना रहा। द्वितीय अफीम युद्ध के बाद विदेशी शक्तियों ने पुनः मंचू शासक की मदद की। परिणामस्वरूप 1864 ई. तक ताइपिंग सत्ता समाप्त हो गयी।

1853 ई. से 1864 ई. तक ताइपिंग सरकार ने आर्थिक एवं सामाजिक क्षेत्र में अनेक सुधार कार्य किये।

राजमाता त्सू–ह–सी एवं उसके समर्थकों ने सुधारवादी आन्दोलन को दबा दिया, परन्तु चीन में व्याप्त असन्तोष की भावना का दमन नहीं किया जा सका। इस असन्तोष की प्रतिक्रियास्वरूप चीन में एक और विद्रोह हुआ, जिसे बॉक्सर विद्रोह कहा जाता है।

बॉक्सर विद्रोह 1899 ई. में शान्तुंग प्रांत से प्रारम्भ होकर शान्सी, चेहली और दक्षिण मंचूरिया तक फैल गया। विद्रोहियों ने ईसाई पादरियों, इंजीनियरों और विदेशी दूतावासों को अपना शिकार बनाया तथा तोड़फोड़ की कार्यवाहियाँ की। इन परिस्थितियों में विदेशियों ने एक संयुक्त सेना का गठन किया और बॉक्सर विद्रोह का दमन कर दिया।

1890 के दशक में बड़ी संख्या में चीनी विद्यार्थी पढ़ने जापान गये। 1902 में पीकिंग विश्वविद्यालय की स्थापना हुई। चीन में प्राचीन समय से सत्ता में प्रवेश हेतु परीक्षा प्रणाली अस्तित्व में थी। 3 वर्ष में 2 बार परीक्षा आयोजित की जाती थी। इसी परीक्षा द्वारा डिग्रीधारक सिविल सेवाओं में प्रवेश पाते थे। 1905 में यह परीक्षा प्रणाली समाप्त हो गई।

बॉक्सर विद्रोह की असफलता के बाद चीन में गणतन्त्र की मांग होने लगी। क्लाइड ने लिखा भी था कि ''बॉक्सर विद्रोह से चीन के राजनीति भविष्य पर दूरगामी प्रभाव पड़े। इससे मंचू वंश की समाप्ति एवं गणराज्य की स्थापना का समय निकट आ गया। इस रूप में वह चीन की क्रान्ति की प्रगति में एक महत्वपूर्ण कदम था।'' 1895 ई. के पश्चात् से जो घटनाएँ घटित हुईं अर्थात्– चीन की पराजय, पाश्चात्य देशों द्वारा लूट–खसोट, बॉक्सर विद्रोह की असफलता एवं 1904 ई. में रूस पर जापान की विजय। इन सबने चीनी जनता पर एक ही प्रभाव डाला कि मंचू सरकार को हटाया जाय तभी चीन को शक्तिशाली बनाया जा सकता है।

बुचांग का विद्रोह शीघ्र ही शांतुग, चेहली, शान्सी, कैन्टन आदि स्थानों तक फैल गया। क्रान्तिकारियों ने क्रान्ति परिषद् का गठन किया एवं शंघाई में सैनिक सरकार की स्थापना की।

क्रान्ति के दौरान ही पीकिंग की विधानसभा ने शासन में सुधार के लिए मंचू सम्राट को विवश किया। 30 अक्टूबर, 1911 को मंचू सरकार ने सभी सुधार माँगों को स्वीकार कर लिया। इससे चीनी सम्राट की स्थिति वैधानिक प्रमुख की भाँति हो गयी। विधानसभा द्वारा प्रतिपादित संविधान के सिद्धान्तों को भी स्वीकार किया।सम्राट ने विद्रोह के दमन के लिए युआन–शिह–काई को प्रधानमंत्री निर्वाचित किया।

5.7 मुख्य शब्दावली

- **मध्यपूर्व** – तुर्की से उत्तरी अफ्रीका तथा पूर्व की ओर ईरान तक का पूर्वी भूमध्य सागर के आस–पास का क्षेत्र
- **युवा तुर्क** – ऐसा व्यक्ति या ऐसे लोगों का समूह जिसकी सोच क्रांतिकारी और प्रगतिशील हो
- **सम्मेलन** – किसी विशेष उद्देश्य या विषय पर विचार करने हेतु एकत्र होने वाले व्यक्तियों का समूह
- **बाल्कन प्रायद्वीप** – दक्षिण पूर्वी यूरोप में संपूर्ण अल्बानिया, यूनान, बुल्गारिया, यूगोस्लाविया और रोमानिया के कुछ भाग को बाल्कन प्रायद्वीप कहा जाता है।
- **साम्राज्यवाद** – वह दृष्टिकोण जिसके अनुसार कोई महत्वाकांक्षी राष्ट्र अपनी शक्ति और गौरव को बढ़ाने हेतु अन्य देशों के प्राकृतिक और मानवीय संसाधनों पर अपना नियंत्रण स्थापित कर लेता है।

5.8 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास

लघु–उत्तरीय प्रश्न

1. मध्यपूर्व के महत्व को रेखांकित करने वाला कोई एक प्रमुख बिंदु बताइए।
2. मध्यपूर्व में महत्वाकांक्षा एवं प्रतिद्वंद्विता रखने वाले प्रमुख यूरोपियन राष्ट्रों के नाम बताइए।
3. बाल्कन क्षेत्र के देशों के नाम बताइए।
4. बाल्कन युद्धों के 3 प्रमुख परिणाम बताइए।
5. जापान का कच्ची मछली से बना व्यंजन किस नाम से प्रसिद्ध है?
6. कनागावा संधि के 3 प्रमुख बिंदु बताइए।
7. अमेरिका की जापान की ओर आकर्षित होने के 2 कारण बताइए।
8. जापान के आधुनिकीकरण के प्रमुख परिणाम बताइए।
9. अठारहवीं शदी में चीन में विदेशियों पर व्यापारिक प्रतिबंधो का उल्लेख कीजिए।

10. प्रथम अफीम युद्ध का तात्कालिक कारण बताइए।
11. को हॉग माध्यम से आप क्या समझते हैं?
12. द्वितीय अफीम युद्ध का तात्कालिक कारण क्या था?
13. चीन–जापान युद्ध के कारण बताइए।
14. ताइपिंग विद्रोह पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।
15. बॉक्सर विद्रोह की असफलता के कारण लिखिए।

दीर्घ–उत्तरीय प्रश्न

1. मध्यपूर्व के महत्व का वर्णन कीजिए।
2. मध्यपूर्व में यूरोपीय शक्तियों की महत्वाकांक्षाएं एवं प्रतिद्वंद्विता पर प्रकाश डालिए।
3. बाल्कन युद्धों को प्रथम विश्व युद्ध की पृष्ठभूमि क्यों कहा जाता है?
4. युवा तुर्क आन्दोलन की विवेचना कीजिये।
5. बाल्कन समस्या का विश्लेषण कीजिए।
6. बोस्निया संकट से क्या अभिप्राय है? स्पष्ट कीजिए।
7. कमोडोर पेरी के जापान अभियान पर प्रकाश डालिए।
8. जापान में अमेरिका के स्वार्थो पर पर प्रकाश डालिए।
9. मेइजी पुनर्स्थापना से आप क्या समझते हैं?
10. जापान के आधुनिकीकरण का मूल्यांकन कीजिए।
11. प्रथम चीन–जापान युद्ध 1894–95 की विवेचना कीजिए।
12. प्रथम अफीम युद्ध के कारण एवं परिणामों का वर्णन कीजिए।
13. प्रथम आंग्ल–चीन युद्ध के कारणों एवं परिणामों की व्याख्या कीजिए। इसे अफीम युद्ध कहना कहाँ तक उचित है?
14. चीन एवं इंग्लैंड के मध्य युद्ध का बनावटी कारण अफीम निषेध की समस्या थी, परन्तु वातस्व में यह पश्चिमी एवं पूर्वी संस्कृतियों के मध्य संघर्ष था। ली चिएन तुंग के इस कथन का परीक्षण कीजिए।
15. "नानकिंग सन्धि ने अंग्रेज व्यापारियों की दिली इच्छा को पूर्ण कर दिया।" एम. ग्रीनबर्ग के इस कथन की विवेचना कीजिए।
16. ताइपिंग विद्रोह की प्रकृति की विवेचना कीजिये। इसकी असफलता के कारण क्या थे? इस विद्रोह के प्रभावों की व्याख्या कीजिए।
17. बॉक्सर आन्दोलन का स्वरूप क्या था? इसकी असफलता के क्या कारण थे? क्या यह वास्तव में एक राष्ट्रीय आन्दोलन था? विश्लेषण कीजिए।

5.9 सहायक पाठ्य सामग्री

- ए. डब्लू. वार्ड (सं), दि कैम्ब्रिज मॉडर्न हिस्ट्री, जिल्द 1 से 10, 1902
- सी.डी.एम. कैटलबी, ए हिस्ट्री ऑफ मॉडर्न टाइम्स, 1964
- सी.डी.हैजन, मॉडर्न यूरोपियन हिस्ट्री, 1938
- सी.एच. फाइप, ए हिस्ट्री ऑफ मॉडर्न यूरोप, 1880
- एच.ए.एल. फिशर, ए हिस्ट्री ऑफ यूरोप, 1939
- पार्थ सारथी गुप्ता, आधुनिक पश्चिम का उदय, 1992
- डेविड थामसन, डेमोक्रेसी इन फ्रांस : दि थर्ड रिपब्लिक, 1946
- जे. पी. टी. बरी, फ्रांस (1814–1940), 1949
- जे. एच. क्लेपहेम, इकॉनॉमिक डवलपमेण्ट ऑफ फ्रांस एण्ड जर्मनी (1815–1914), 1928
- एल. एल. स्माइडर , फ्रॉम बिस्मार्क टू हिटलर, 1935
- पार्थ सारथी गुप्ता, यूरोप का इतिहास, 1987
- जे.एच. हेज, पॉलिटिकल एण्ड कल्चरल हिस्ट्री ऑफ मॉडर्न भाग–1 और 2, 1936
- सी.जी. राबर्टसन, बिस्मार्क, 1947
- आर.डब्ल्यू. सेटन वाटसन, डिजरेली, ग्लेडस्टन एण्ड दि इस्टर्न क्वेश्चन, 1935, राइज ऑफ नेशनलिटी न बाल्कन, 1917
- वी.जे. परियार, इंग्लैंड रशा एण्ड दि स्टेट्स क्वेशन (1844–56), 1931
- वर्मा, दीनानाथ, आधुनिक एशिया का इतिहास, 1993 एवं अंतर्राष्ट्रीय संबंध, 1985
- हेतु सिंह बघेला, आधुनिक एशिया का इतिहास, 1996
- जी.पी. गूच, ए हिस्ट्री ऑफ यूरोप, 1946 एवं जर्मनी, 1925
- अहमद मनाजिर एवं सभ्रवाल एस.पी., आधुनिक यूरोप का इतिहास (1789–1950), विशाल पब्लिकेशन, दिल्ली, 1996
- एरख आयक, बिस्मार्क एण्ड द जर्मन एम्पायर, 1928
- ए.जे.पी. टेलर, बिस्मार्क दि मेन स्टेट्समैन, 1965
- पांडेय, वी.सी.–यूरोप का इतिहास, केदारनाथ रामनाथ, मेरठ, 1976
- शर्मा, एम.एल–यूरोप का इतिहास, कालिज बुक डिपो, जयपुर
- Grant at temperaley - Europe in the 19th-20th Century
- Lipson - Europe in the 19th, 20th Century
- Hazen, C.D - Modern Europe up to 1945
- Ketelbey, C.D.M - A history of modern Europe

- Ludwig, Email - Bismark
- राहुल सांकृत्यायन, मध्य एशिया का इतिहास, खण्ड–1, 1956
- राहुल सांकृत्यायन, मध्य एशिया का इतिहास, खण्ड–2, 1957
- बुद्ध प्रकाश, एशिया के सामाजिक और सांस्कृतिक इतिहास की रूपरेखा, हिंदी समिति, लखनऊ, 1971
- वर्मा दीनानाथ, एशिया का आधुनिक इतिहास, भारती भवन, पटना, 1988
- शर्मा अम्बिका प्रसाद, एशिया का इतिहास, ज्ञानदा प्रकाशन, नई दिल्ली, 1995
- शर्मा मथुरालाल, अमेरिका का इतिहास, रिसर्च पब्लिकेशन, जयपुर, 2002
- श्रीवास्तव ब्रजेश कुमार, विश्व इतिहास की विषयवस्तु, SBPD पब्लिकेशन हाउस, आगरा, 2007
- श्रीवास्तव ब्रजेश कुमार, चीन एवं जापान का इतिहास, SBPD, आगरा, 2007